RNI Number : MPHIN/2016/70609

ISSN NUMBER : 2455-9814

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

Dhingra Family Foundation USA

वर्ष : 3, अंक : 12

जनवरी-मार्च 2019

मूल्य 50 रुपये

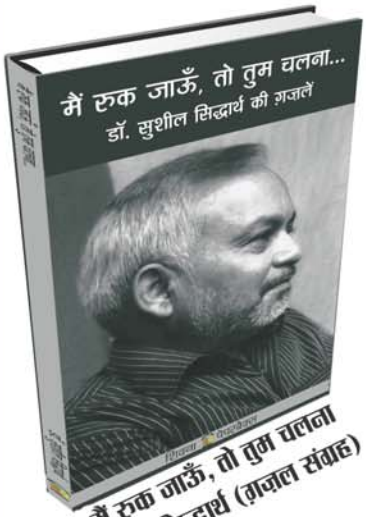

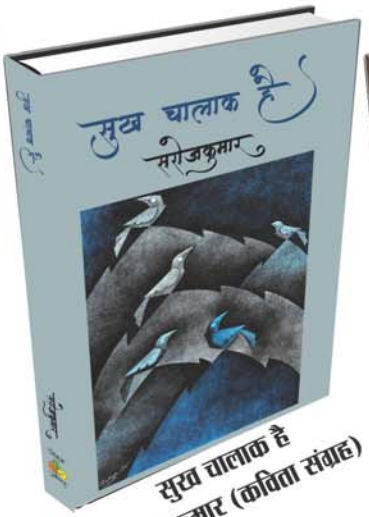

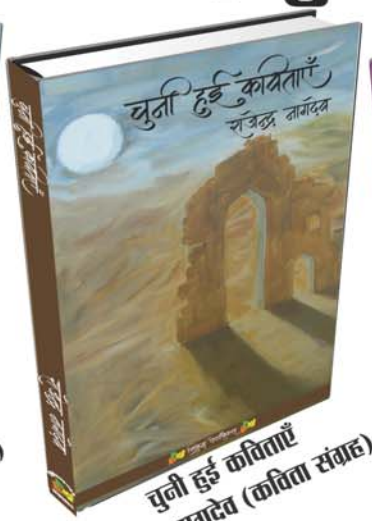

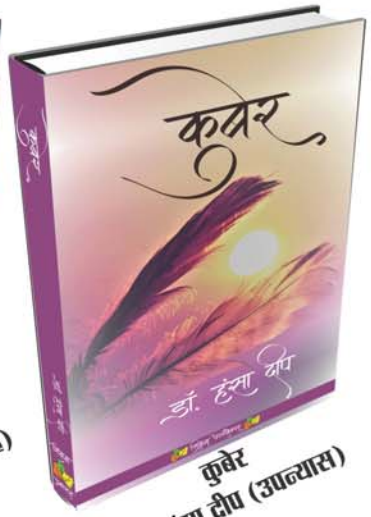

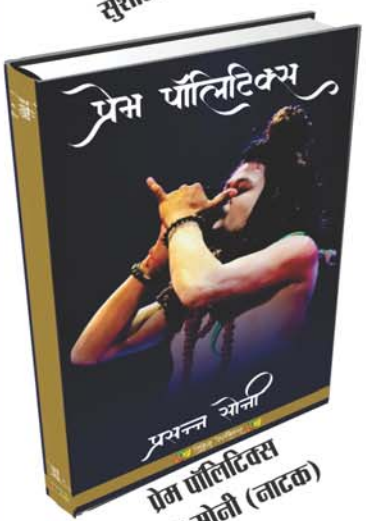

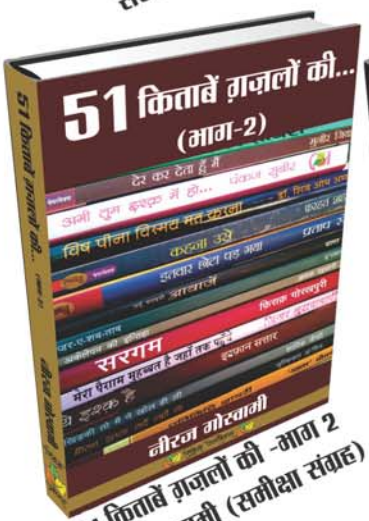

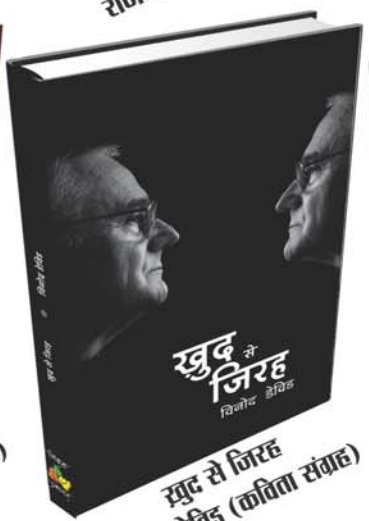

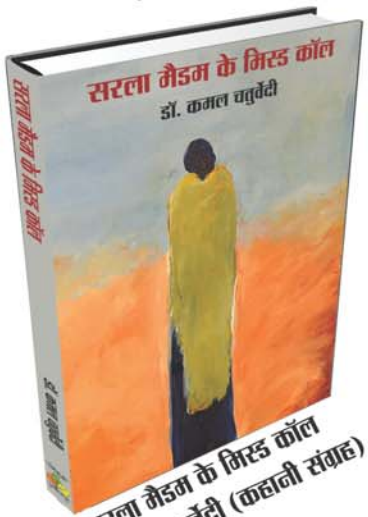

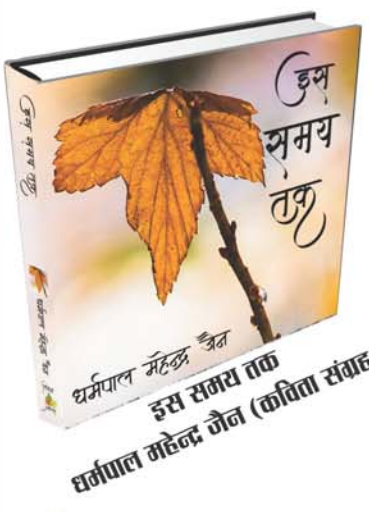

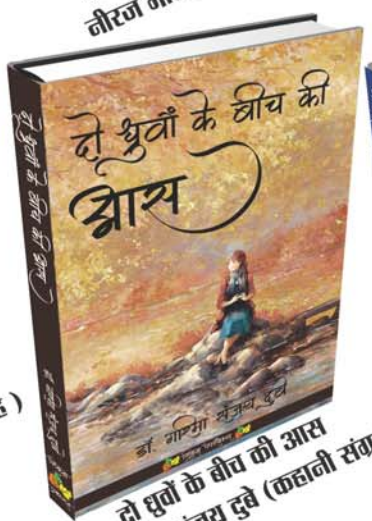

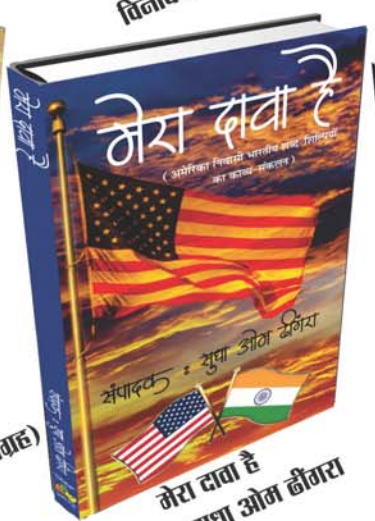

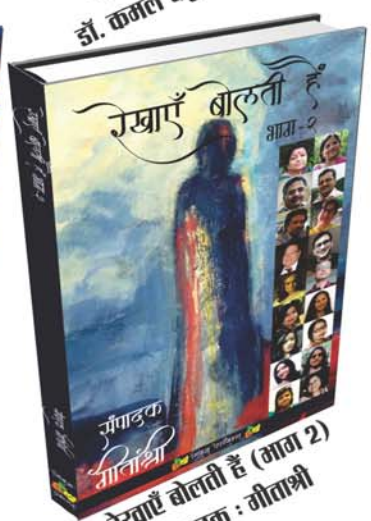

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें
मैं रुक जाऊँ, तो तुम चलना...
डॉ. सुशील सिद्धार्थ की ग़ज़लें
मैं रुक जाऊँ, तो तुम चलना
सुशील सिद्धार्थ (ग़ज़ल संग्रह)
सुख चालाक है
सरोजकुमार
सुख चालाक है
सरोजकुमार (कविता संग्रह)
चुनी हुई कविताएँ
राजेन्द्र नागदेव
चुनी हुई कविताएँ
राजेन्द्र नागदेव (कविता संग्रह)
कुबेर
डॉ. हंसा दीप
कुबेर
डॉ. हंसा दीप (उपन्यास)
प्रेम पॉलिटिक्स
प्रसन्न सोनी
प्रेम पॉलिटिक्स
प्रसन्न सोनी (नाटक)
51 किताबें ग़ज़लों की...
(भाग-2)
नीरज गोस्वामी
51 किताबें ग़ज़लों की -भाग 2
नीरज गोस्वामी (समीक्षा संग्रह)
ख़ुद से जिरह
विनोद डेविड
ख़ुद से जिरह
विनोद डेविड (कविता संग्रह)
सरला मैडम के मिस्ड कॉल
डॉ. कमल चतुर्वेदी
सरला मैडम के मिस्ड कॉल
डॉ. कमल चतुर्वेदी (कहानी संग्रह)
इस समय तक
धर्मपाल महेन्द्र जैन
इस समय तक
धर्मपाल महेन्द्र जैन (कविता संग्रह)
दो ध्रुवों के बीच की आस
डॉ. गरिमा संजय दुबे
दो ध्रुवों के बीच की आस
डॉ. गरिमा संजय दुबे (कहानी संग्रह)
मेरा दावा है
(अमेरिका निवासी भारतीय मूल के कवियों का काव्य-संकलन)
संपादक : सुधा ओम ढींगरा
मेरा दावा है
संपादक : सुधा ओम ढींगरा
रेखाएँ बोलती हैं
भाग-2
संपादक गीताश्री
रेखाएँ बोलती हैं (भाग 2)
संपादक : गीताश्री
शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर
amazon
http://www.amazon.in
flipkart.com
http://www.flipkart.com
Paytm
https://www.paytm.com
ebay
http://www.ebay.in
दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर' :
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
http://vibhomswar.blogspot.in
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar
एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)
विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)
शिखा वार्ष्णेय (लंदन, यू के)
नीरा त्यागी (लीड्स, यू के)
अनिल शर्मा (बैंगकॉक)
क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील सूर्यवंशी
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह

संपादन, प्रकाशन, संचालन एवं सभी सदस्य पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

Dhingra Family Foundation USA

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 3, अंक : 12, त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2019
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

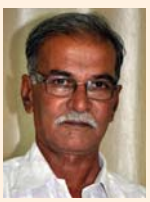

आवरण चित्र
राजेंद्र शर्मा बब्बल गुरु

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

वर्ष : 3, अंक : 12

संपादकीय 5

मित्रनामा 7

साक्षात्कार

अभिनव शुक्ल के साथ सुधा ओम ढींगरा की बातचीत 10

कथा कहानी

ऑरेंज कलर के भूत
पारुल सिंह 12

चोर
महेश शर्मा 22

किस्स और बीफ
डॉ. हेमलता यादव 25

आबे रवाँ –''चौबीस घण्टे रनिंग वाटर''
नकुल गौतम 30

दो क़ैदी
शहादत ख़ान 32

पीटू
संजय कुमार अविनाश 36

बड़ा आदमी
गोपाल प्रसाद 'निर्दोष' 39

काश ! ऐसा न होता.....
निशान्त सक्सेना 41

लघुकथाएँ

अपना –पराया
देवेंन्द्र सोनी 12

जानवर
राजेन्द्र वामन काटदरे 21

माँ
सुधा गोयल 24

समिधा बनने से पहले
संगीता कुजारा टाक 29

थोड़ी सी ईमानदारी
ज्ञानदेव मुकेश 31

वायरल वीडियो का सच
मार्टिन जॉन 52

एक नई आशा
मुकेश कुमार ऋषि वर्मा 70

व्यंग्य

विश यू स्पीडी रिकवरी
मदन गुप्ता सपाटू 46

खिसियानी बिल्ली जूता नोचे
धर्मपाल महेंद्र जैन 47

नकल: परमो धर्म:
अशोक गौतम 49

दृष्टिकोण

हिंदी साहित्य : परम्परा और युवा रचनाशीलता
राहुल देव 51

आलेख

पारसी थियेटर: बॉलीवुड के पूर्वज
डॉ. अफ़रोज़ ताज 53

ग़ज़लें

सोनिया वर्मा 48
गौतम राजऋषि 60, 69

कविताएँ

प्रियंका भारद्वाज 61
मुकेश पोपली 61
डॉ. शुभदर्शन 63
अर्चना गौतम मीरा 64
प्रणव प्रियदर्शी 65
प्रभात सरसिज 66
आरती तिवारी 67

नवगीत

जयप्रकाश श्रीवास्तव 68
कृष्ण भारतीय 68

नव पल्लव

यूथिका चौहान 70

समाचार सार

ज्योति जैन की दो पुस्तकों का विमोचन 71
आर्य स्मृति साहित्य सम्मान 71
विक्रम सिंह गोहिल को सृजन सम्मान 72
काव्य संग्रह का विमोचन 72
गाँधी जयंती पर संगोष्ठी का आयोजन 72
ज्योति जैन को कर्मभूमि सम्मान 72
क्षितिज साहित्य मंच रचना पाठ संगोष्ठी 72
हिंदी विश्वकोश का गणित खंड भेंट 72
डॉ. अनिल प्रभा कुमार सम्मानित 73
सदाशिव कौतुक को ब्रह्मगीर सम्मान 73
व्यंग्य महोत्सव 73
लहरों पर कविता 73
''बापू से सीखें'' का विमोचन 73
विनोद बब्बर को सौहार्द सम्मान 73

आख़िरी पन्ना

पंकज सुबीर 74

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष), 1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है : Name of Account : **Vibhom Swar**, Account Number : **30010200000312**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero") (विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)
सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम :— — — — — — — — — — — — — — — — — **डाक का पता :**— — — — — — — — — — — — — — — — — —

— — — — — — — — — — — — — — **सदस्यता शुल्क :**— — — — — — — **चैक / ड्राफ़्ट नंबर :**— — — — — — — — —

ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र किया है) :— — — — — — **दिनांक :** — — — — — — — — — — — — — — —

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

राष्ट्रवाद की आड़ में सरकारें स्वार्थी हो रही हैं

सभ्यताओं के विकास के साथ ही साथ पूरे विश्व के सामाजिक और आर्थिक ढाँचे में एक सी समानताएँ और असमानताएँ पैदा हुईं; जो बाद में उभर कर सबके सामने आईं। तभी अमीर और ग़रीब का एक ऐसा भेदभाव शुरू हुआ; जिसने बाद में कई विषमताओं को जन्म दिया। राजा-महाराजाओं और प्रजा की प्रणाली भी एक विकट स्थिति थी और उसका जब अंत हुआ तो सत्ता का एक नया युग आरम्भ हो गया। यह दौर पूँजीवादियों की सत्ता का है। परोक्ष कारण अमीर का बेइंतिहा अमीर होते चले जाना और ग़रीब को उसकी ग़रीबी से उभरने न देना सत्ता का एक नया खेल शुरू हुआ है; जो विकास और प्रगतिशीलता के नाम पर पूरे विश्व में खेला जा रहा है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमीरी-ग़रीबी की खाई को रूस और चीन ने मिटाने की कोशिश की थी। कम्युनिज़म को अपनाया था पर आज उसका स्वरूप भी बदल गया है, वहाँ भी सत्ता अमीरों के हाथ में है विकास और परिवर्तन से लाभ पैसेवालों को हो रहा है। हर देश में यही हो रहा है। राष्ट्रवाद की आड़ में सरकारें स्वार्थी हो रही हैं। आमजन की तरक्की के नाम पर पैसा पूँजीवादी कमा रहे हैं। दु:ख इस बात का है कि जनता दो वक्त की रोटी में इतनी उलझी रहती है कि स्वयं के अधिकारों के लिए लड़ने का उनके पास न समय होता है और न ऊर्जा। इसी का लाभ हर देश के सत्ताधारी उठाते हैं।

पश्चिमी देशों में अगर कोई ग़रीब है तो उसे सरकारी सहायता मिलती है और अगर पेशेवर कम कमाता है तो उस पेशेवर ग़रीब को खुद ही अपनी मदद करनी होती है। पेरिस में पिछले दिनों ऐसे ही वर्ग ने 'येल्लो बास्कट' पहन कर बहुत बड़ा आंदोलन किया; जो सरकार के चुप रहने से हिंसात्मक रूप धारण कर गया। हालाँकि अपरोक्ष कारण पैट्रोल पर टैक्स बढ़ना था पर परोक्ष में अमीरी और ग़रीबी की बढ़ रही खाई है। फ्राँस के प्रेज़िडेट एम्मुल मैक्रोन को पूँजीवादियों का हिमायती कहा जाता है, जिसका कामकाजी लोगों से कोई वास्ता नहीं और वह उनकी समस्याओं को समझता भी नहीं है। फ्रांस में भी अमीर बेहद अमीर हो रहे हैं और आम लोगों को बहुत संघर्ष करना पड़ता है। आम कर्मचारी बहुत कम कमा पाता है और रोज़मर्रा की चीज़ों पर टैक्स बढ़ा दिए गए हैं और ऐयाशी की चीज़ों पर टैक्स कम है और पेरिस तो फैशन और ऐयाशी की चीज़ों का गढ़ है।

यही भारत में हो रहा है। विकास, प्रगति पूँजीवादियों की हो रही है, आम जनता तो टैक्स देने में ही उलझ गई है। इन प्रतिकूल परिस्थितिओं से ध्यान भटकाने के लिए कोई मसला खड़ा कर दिया जाता है। 'राष्ट्रवाद' की धारणा तो इस समय पूरे विश्व में कई

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल्ल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल : +1-919-801-0672
ईमेल sudhadrishti@gmail.com

संपादकीय

सरकारों ने खड़ी कर दी है। अमेरिका में इसके साथ ही रंगभेद की भावना को उकसाया जा रहा है ताकि जनता इसमें उलझी रहे और पूँजीवादी अपनी तिजोरियाँ भरते रहें। एक लम्बे गृहयुद्ध के बाद इस रंगभेद को समाप्त किया गया था। इससे प्रेम, सद्भावना और मानवता को बढ़ावा मिला था। कभी अमेरिकी सरकार ने जापान, फिलीपाइन और दक्षिण कोरिया की उनके संकट के दिनों में मदद की थी। जबसे अपना देश और अपनी नस्ल बचाओ की भावना प्रबल हुई है, दुनिया के शोषितों, दलितों, पीड़ितों की पुकार किसी के कानों तक नहीं पहुँचती। सीरिया के लोगों का दर्द कोई सरकार सुनना नहीं चाहती, सुनेगी भी नहीं। इस समय पूरे विश्व में एक ही मानसिकता की आँधी चल रही है, वह है पूँजीवादियों की सत्ता का आधिपत्य। वे वहाँ ध्यान देना चाहते हैं, जहाँ निवेश है, बाज़ार है।

अमेरिका में एक लंबे समय से हूँ, काफी विश्व घूम चुकी हूँ। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को निष्पक्ष देखना आदत में शुमार हो गया है। हर देश की जनता बहुत भोली होती है, बेहतर जीवन के सपने देखती है और ज्योंही कोई उन्हें वह सपने दिखाता है, बड़ी जल्दी बहकावे में आ जाती है। पूरे विश्व में अर्थ प्राप्ति की जो मानसिकता व्याप्त हो गई है, उसमें जीवन मूल्यों के ह्रास का पुट भी मिलता है, यह मानवता को विनाश के कगार पर ले जा रहा है और त्रासदी यह है कि कोई इसे समझना नहीं चाहता और हर देश का राजनीतिज्ञ इस परिस्थिति का लाभ उठा रहा है; क्योंकि वह जानता है कि अंत में पिसेगी तो भोली-भाली जनता, किसी नेता को कभी कोई नुक्सान नहीं हुआ।

विभोम-स्वर पत्रिका जब आपके हाथों में पहुँचेगी तो 2018 का वर्ष विदा ले चुका होगा और 2019 का वर्ष आपके जीवन में प्रवेश कर चुका होगा। मैं बस यही कामना करती हूँ कि नया वर्ष वैश्विक स्तर पर बिगड़ रही परिस्थितिओं को सुधारे और हरेक को सुख-शांति प्रदान करे। साहित्यिक जगत् को भी साहित्यकार नई-नई उपलब्धियों से समृद्ध करें।

विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की टीम की ओर से आप सबको नव वर्ष की ढेरों शुभकामनाएँ!!! नया वर्ष आप सबकी मनोकामनाओं को पूरा करे।

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

सुधा ओम ढींगरा

वरिष्ठ कथाकार-उपन्यासकार चित्रा मुद्गल जी को साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा वरिष्ठ कथाकार-उपन्यासकार ममता कालिया जी को व्यास सम्मान हेतु बहुत-बहुत बधाई।

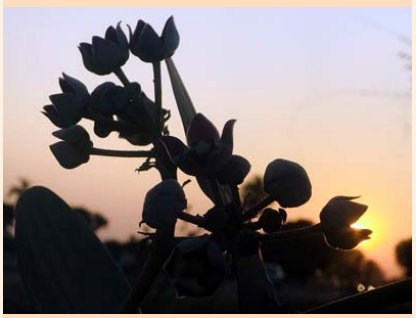

एक और नया वर्ष सामने आ गया है। बदलता कुछ भी नहीं है, बस हम अपने अंदर उस नए को अनुभूत कर कुछ अतिरिक्त ऊर्जा महसूस करने लगते हैं। यह ऊर्जा ही महत्त्वपूर्ण होती है। ठीक उसी प्रकार जैसे हम हर सुबह उसी सूरज के आने पर अपने अंदर उसकी ऊर्जा को महसूस करते हैं।

मित्रनामा

मन को झंकृत कर दिया

आज पूरा विश्व प्राकृतिक प्रकोप का शिकार है ! कहीं हरिकेन, टॉरनेडो और साईक्लोन आते हैं, तो कहीं भूकम्प के अत्यन्त तेज़ और विनाशकारी झटके। कहीं बाढ़ से जीवन अस्त- व्यस्त है, तो कहीं सूखे का प्रचण्ड ताण्डव। प्रकृति आज अनेक रूपों में तबाही मचा रही है, लेकिन इस तबाही के लिए मनुष्य स्वयं ही दोषी है। अपने लोभ और स्वार्थ ने मनुष्य को इस कदर अंधा कर दिया, कि उसे अपना हित - अहित सूझना बन्द हो गया और भौतिक समृद्धि के लिए उसने प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन शुरू कर दिया। बड़े - बड़े कारखाने, चौड़ी सड़कें और गगनचुम्बी अट्टालिकाओं के जंगल तो हमने खड़े कर लिए, पर प्रकृति के असंतुलन को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया। लेकिन आज प्रकृति के असंतुलन और क्रोध ने हमें चेतावनी देना शुरू कर दिया है कि अगर हम समय रहते चेत नहीं गए, तो हमारा अस्तित्व ही काल-कवलित हो जाएगा। इस समय पूरे विश्व को एकजुट होकर और निजी स्वार्थों को भुलाकर पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण के उपाय करने होंगे, ताकि सभ्यताओं और संस्कृतियों के साथ-साथ इस पृथ्वी पर जीवन बचा रह सके। सहिष्णुता, सद्भावना और मानवता के रक्षार्थ हमें पुरातनपंथी और दकियानूस सोच को त्यागकर पर्यावरण को बचाना होगा। सोशल साइट्स के इस युग में हम दुनियाँ भर से तो जुड़ गए हैं पर हमारे पारिवारिक और सामाजिक रिश्तों की गर्माहट और संवेदना छीजती जा रही है। सामाजिकता के स्थान पर व्यक्तिवादिता का प्रचलन बढ़ रहा है। व्यक्ति अपने सुख और स्वार्थ के लिए प्रकृति और पर्यावरण को प्रदूषित कर रहा है। आपने सही कहा है कि वैश्विक स्तर पर कुछ हो इससे पहले हमें व्यक्तिगत स्तर पर प्रदूषण को रोकने की पहल करनी चाहिए। संपादकीय पुन: विचारोत्तेजक लगा।

कवयित्री, कहानीकार एवं कई कलाओं में पारंगत रेखा राजवंशी भारत के विरोधाभास के सम्बन्ध में क्या कह रही हैं सुधा ओम ढींगरा से अपनी बातचीत में यह जानने की जिज्ञासा हुई और आह्लाद एवं उत्साह के साथ मैं साक्षात्कार के शब्दों में उतर गया। मात्र सात - आठ साल की अवस्था में पहली कविता लिखने वाली रेखा राजवंशी की इक - इक बात गौर करने लायक है। विदेशी परिवेश में रहते हुए भी हिन्दी में लिखना अपने आप में बहुत ही विलक्षण है। आज तो अपने देश के नौजवानों तक पर अंग्रेज़ी का प्रेत सवार है और चारों ओर अंग्रेज़ी का ही बोलबाला है और ऐसे में हिन्दी - लेखन से पूर्ण लगाव से जुड़ी रेखा जी का व्यक्तित्व अनुकरणीय है। आज हिन्दी समाज में साहित्यानुरागियों की संख्या तेज़ी से घट रही है और विदेशी धरती पर काव्य - पाठ का आयोजन किया जा रहा है तथा अनेकानेक संस्थाओं के द्वारा हिन्दी का प्रसार किया जा रहा है। हिन्दी समाज एक पिछड़ा हुआ समाज है जहाँ के लोग न अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं और न कर्तव्यों के प्रति ईमानदार। यह समाज आज भी कई सवालों और समस्याओं से जूझ रहा एक अर्धविकसित समाज है। यहाँ संस्कृति और परम्पराओं के नाम पर स्त्रियों का खुलेआम शोषण होता है तो मासूम बच्चियाँ दरिन्दों के हवश का शिकार हो रही हैं और न्यायव्यवस्था पंगु है। इस देश में महिलाओं ने बहुत उन्नति की है और इस देश का परचम पूरे विश्व में फहराया है, लेकिन आज भी इस देश में बेटी समस्याओं की जड़ है या समझी जाती है और उसे आज भी येन - केन - प्रकारेण प्रताड़ित ही किया जा रहा है। साहित्य में बड़ी - बड़ी बातें लिखने वाले भी भीतर से दकियानूस सोच लिए बैठे हैं और मौका-मुनासिब बेख़बर भी हो जाते हैं, क्योंकि पितृसत्तात्मक कंडिशनिंग जब - तब हमारे विवेक का हरण करके हमसे अविवेकपूर्ण कृत्य करवा ही लेती है, पर विदेशी धरती पर स्त्री- पुरुष में कोई भेदभाव या असमानता नहीं है। बातचीत बहुत संक्षिप्त पर सारगर्भित है।

अरसे बाद उर्मिला शिरीष की कहानी 'नाच - गान' देखकर और पढ़कर जो आनन्द आया वो शब्दातीत है। भाषाई सौष्ठव और कथा के उतार -चढ़ाव में जो एक नैसर्गिक नज़ाकत है उसे नज़रंदाज़ नहीं किया जा सकता है। समय जिस तेज़ी से बदल रहा है और लोगों को बदल रहा है वो चिन्तनीय है। आज जैसे रासलीला ही जीवन का चरम लक्ष्य बन गया है और कई मायनों में हमारी युवा पीढ़ी बेशर्मी की हदें पार कर चुकी हैं। लेकिन सबकी अपनी आज़ादी है किसी को समाज की ठेकेदारी नहीं है, कि किसी की आज़ादी में कोई दख़ल दे। आज परम्परा की रक्षा के नाम पर स्त्रियों की उत्सवधर्मिता की पहरेदारी की जा रही है उनकी भावनाओं और ख़ूबसूरत ख़्वाबों को कुचला जा रहा है। किसी के पर्सनल लाईफ़ में ताकझाँक या हस्तक्षेप करना एक संगीन ज़ुर्म है, लेकिन मज़हब और जाति के दलदल में फँसा समाज झूठी इज़्ज़त और मान - मर्यादा की ख़ातिर किसी मासूम की हत्या करने से भी नहीं हिचकता है। एक तरफ हमारा समाज आधुनिक युग की तरफ कदम बढ़ा रहा है तो दूसरी तरफ हम आधुनिकता की झोंक में सामाजिक पाखण्ड को चुनौती देने वाली स्त्रियों से भयभीत भी है। लिव इन रिलेशनशिप के इस दौर में स्त्री अपनी आज़ादी के प्रति कुछ ज़्यादा ही सजग हो गई है और कोई भी कम्युनल कूपमंडूकता अब बर्दाश्त नहीं की जा सकती है। लेकिन जो भी हो अंत में धर्म और रवायतों के आगे हार प्रेम की ही होती है। बेहतरीन कहानी के लिए कथाकार को धन्यवाद।

डॉ. पुष्पा सक्सेना के 'बर्फ़ के आँसू' ने मन को झंकृत कर दिया। विदेश जाकर ऊँची शिक्षा और आकर्षक जॉब पाने का ख़्वाब तो हर प्रतिभाशाली छात्र का ख़्वाब होता है, पर संसाधनों की कमी के कारण बहुत सारे छात्र इस सौभाग्य से वंचित रह जाते हैं। आर्थिक रूप से कमज़ोर लोगों के लिए तो यह असंभव सा ही ख़्वाब है,लेकिन कुछ नौजवान इस क़दर अपने धुन के पक्के होते हैं कि अपने लक्ष्य को पाकर ही दम लेते हैं और कुछ अपने लक्ष्य को पाने के संघर्ष में अपनी जान तक गँवा बैठते हैं। सुविधा भोगी व्यक्ति को जो चीज़ बहुत आसानी से उपलब्ध हो जाती है उसके लिए गरीब को क्या - क्या पापड़ बेलने पड़ जाते हैं और कैसे- कैसे समझौते करने पड़ते हैं। ऐसे ही एक गरीब पर खुद्दार और कर्तव्यनिष्ठ छात्र की कहानी पढ़ते हुए हृदय जैसे किसी भयंकर तूफ़ान में घिर गया और आत्मा पर

'बर्फ़ के आँसू' झड़ते रहे।

आज सुबह आँख खुलते ही विभोम-स्वर लेकर पढ़ना शुरू किया और सबसे पहले डॉ. रमाकांत शर्मा की कहानी पढ़ी। आज के भागम-भाग और तनावपूर्ण जीवन में अगर थोड़ा विश्राम और थोड़ी तन्हाई मिलती है तो मैं साहित्य में ही डूब जाता हूँ सबकुछ भूलकर। अगर कोई हमें नज़रंदाज़ करता है और नज़रें चुराता है तो मन यह जानने को उद्विग्न हो उठता है कि आख़िर क्या माजरा है। कहानी में भी कुछ ऐसी ही स्थिति देखकर मेरी जिज्ञासा बढ़ती चली गई। अमर की रुखाई ने उसमें मेरी दिलचस्पी बढ़ा दी और मैं उसकी बीती ज़िन्दगी के बारे में सबकुछ जानने को उतावला हो उठा और इक - इक शब्द बहुत गौर से पढ़ने लगा और अंत तक पहुँचते पहुँचते मेरी आँखों से दो बूँद ढुलक पड़े।

शशि पाधा अपने 'चिन्तन के पल' में क्या चिन्तन कर रही हैं, यह देखने के लिए ज्यों ही आलेख को पढ़ना शुरू किया, तो लगा कि इस प्रदूषित समय में 'ऑरगैनिक के महत्त्व को समझना बेहद ज़रूरी है। आज हवा, पानी और भोजन सब प्रदूषित हैं। क्योंकि हमने रासायनिक कीटनाशकों और खाद के प्रयोग से अपनी उपज बढ़ाई और पर्यावरण को प्रदूषित कर दिया तो उसके दुष्परिणाम भोग रहे हैं और कम उम्र में ही अनेकानेक बिमारियों को निमंत्रण मिल रहा है। खेती के पारंपरिक ढाँचे को नष्ट-भ्रष्ट करके हमने रासायनिक खेती अपनाई और ऑरगैनिक की बजाय रासायनिक कृषि उत्पादों पर आश्रित हो गए, तो खेती के पुराने नुस्ख़े भी अप्रासंगिक और अनुपयोगी सिद्ध हो गए। हमारे खान पान ही नहीं बदले,बल्कि हमारा आचार-व्यवहार भी बदल गया, हमारी संस्कृति, जीवन मूल्य और पारिवारिक - सामाजिक सरोकार भी बदल गए। एक समय था जब संयुक्त परिवार का ज़माना था और तनावपूर्ण जीवन अपवाद था। फिर रिश्तों में बनावट/मिलावट का दौर आरम्भ हुआ और संयुक्त परिवार बिखर कर एकल परिवारों में बदल गया और भौतिक आकर्षणों में खो गए लोग बस स्वयं में ही सिमट कर रह गए। संस्कृति और परम्पराओं को बकवास समझने का ही परिणाम है कि अगली पीढ़ी वैचारिक रूप से कुन्द और कुंठित है और पिछली पीढ़ी स्मृतियों के सहारे ख़ुद को दिलासा देने में लगी है। प्रकृति के असंतुलन के साथ - साथ हम मनुष्यों ने अपने जीवन को भी असंतुलित कर लिया है। किसी हरे-भरे पेड़ को काटने या कटवाने में हमारी आत्मा नहीं सिहरती है, क्योंकि हमें एक सुविकसित इन्फ्रास्ट्रकचर चाहिए, चाहे इसके लिए बड़े - बड़े जंगलों का सफाया हो जाए या हज़ारों वन्य प्राणी नष्ट / विलुप्त हो जाएँ।

चीड़ के पेड़ों का ज़िक्र देखा तो 'तुरपाई' को पढ़ना शुरू कर दिया और वीणा जी की भाषा के सौन्दर्य नें अभिभूत कर दिया लेकिन शब्दों में जो दर्द था उससे जैसे कलेजा छिल गया। पुरुष समाज का क्रूर यथार्थ यही है कि वह औरत को भोग्या समझता है और इसलिए औरत का रक्षक ही उसका भक्षक हो जाता है ! हाय रे स्त्री जीवन...!!

-नवनीत कुमार झा, दरभंगा
2rambharos@gmail.com

* * *

बेहद संग्रहणीय

वैश्विक हिंदी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका विभोम-स्वर जुलाई-सितम्बर 2018 गत दिनों प्राप्त हुई।

वरिष्ठ साहित्यकार सुधा ओम ढींगरा के संरक्षण और प्रमुख संपादकीय तथा पंकज सुबीर के सशक्त संपादन में पत्रिका अपने आकर्षक मुख्य पृष्ठ और स्तरीय पठनीय सामग्री के चलते बेहद संग्रहणीय बन पड़ी है।

सुधा ओम ढींगरा जी ने अपने संपादकीय में वैश्विक राजनीति में सहिष्णुता, सद्भावना और मानवता की समाप्ति पर चिंता व्यक्त करते हुए लिखा 'ऐसा लगता है पूरे विश्व की राजनीति पुराने समय और इतिहास को दोहराने जा रही है। शायद मानव जाति का स्मृतिकोष और उसकी अवधि अधिक लंबी नहीं होती। हम अपनी गलतियाँ और उससे जुड़े परिणाम अक्सर भूल जाते हैं। प्रथम द्वितीय विश्व युद्ध से हुए विनाश और उस से हुई क्षति को अभी तक कई पीढ़ियाँ भुगत रही है। देश के अधिकतर बुद्धिजीवी विदुर बन गए हैं और कुछ स्वार्थ सिद्धि के लिए द्रोणाचार्य और कुछ भीष्म पितामह की तरह मुँह फेरे हैं।

सशक्त युवा रचनाकार राहुल शिवाय की लघुकथा कट्टरपंथी की संवेदना मानवीय संवेदना भीतर तक आंदोलित करती है। वर्तमान दौर की हमारी आपसी मनुष्यता पर अविश्वास के परंपरा पर करारी चोट करती है यह लघु कथा।

अमरेंद्र मिश्र की लघुकथा खिलौना की रिश्तों की विद्रूपता और सामाजिक व्यवस्था की विसंगति खिलौना खरीदने वाले दंपति का दूर तक पीछा करती है।

सुरेश सौरभ की लघु कथा मूर्तिकार भी वर्तमान संदर्भों में महत्त्वपूर्ण प्रश्न चिह्न में छोड़ जाती है।

ग़ज़लकार सुभाष पाठक जियाजी आँखों में जलन कुल पाँचों ग़ज़लें प्रभावित करती हैं। एक बानगी देखें-

वो लिए बैसाखियाँ चढ़ता गया सब चोटियाँ,
और क्या शर्मिंदगी हो पाँव वालों के लिए।

वरिष्ठ रचनाकार विज्ञान व्रत की तीनों ग़ज़लें सदैव की भाँति बेहद प्रभावशाली रही। छोटी बहर में बड़ी बात कहना कोई विज्ञान व्रत से सीखे।

इस अंक में कुल छह कहानियों का गुलदस्ता है सारी की सारी एक से बढ़कर एक और छह ही लघुकथाएँ भी है एक से एक बेजोड़।

डॉ. कविता विकास की कहानी 'मास्साब' की संवेदना हमें भीतर तक आंदोलित कर देती है। पिता का जमीनी जुड़ाव पुत्र का विदेश मोह। पिता का आत्मीय लगाव और पुत्र का उपेक्षित भाव यानी सब कुछ संवेदना का ऐसा एक गुलदस्ता डॉक्टर कविता विकास हमारे सम्मुख रखते हैं इसे पढ़कर कोई भी पाठक संबंधों का अंकगणित बेहद आसानी से समझ सकता है।

खोखले आदर्शवाद की विद्रूपता पर तीखा प्रहार करते हुए वरिष्ठ व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय जी द्वारा लिखा गया आलेख 'टर गए हरीशचंद्र' बेहद प्रासंगिक साबित होता है।

जनरेशन गैप के दौर में पीढ़ीगत संस्कार

और शिष्टाचार के खोखलेपन को बेहद करीने से रेखांकित करती है राजेश झरपुरे की सशक्त कहानी 'नंबर प्लेट'।

समृद्ध लेखन के धनी प्राण शर्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व पर केंद्रित, उषा राजे सक्सेना द्वारा लिखा गया आलेख बेहद जीवंत और प्रभावी है।

कैनेडा के सुप्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार सुमन घई से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत एक संग्रहणीय दस्तावेज है। मुद्रित पत्रिकाओं के बारे में पूछे गए सवाल के जवाब में उन्होंने कहा इंटरनेट एक बहुत शक्तिशाली माध्यम है। साहित्य को वैश्विक स्तर पर उपलब्ध कराने का इससे कारगर और सस्ता माध्यम कोई नहीं। इस कारण से मुद्रित पत्रिकाएँ सीमित तो हो जाएँगी परंतु बंद नहीं हो सकतीं। क्योंकि अतीत से जुड़े रहने का रोमांस एक शक्तिशाली अनुभूति होती है। मुद्रित पत्रिकाएँ इसी रोमांस का भाग बनी रहेंगी। यह बात पश्चिमी देशों में पत्रिकाओं के प्रकाशन की अवस्था और परिस्थिति को देखते हुए यह कह रहा हूँ कि ई रीडर या टैबलेट पर मुद्रित पत्रिकाओं के संस्करण मुद्रित संस्करणों के समांतर प्रकाशित होते रहेंगे और बिकते रहेंगे।

आख़िरी पन्ना कॉलम में वरिष्ठ कलमकार पंकज सुबीर वर्तमान लेखन,पठन पाठन और पुस्तक आदान प्रदान का बड़ा रोचक दृश्य खींचा है। वो लिखते हैं कि ''लेखक अ जब लेखक ब को अपनी पुस्तक भेजता है पढ़ने हेतु तो वह यह भूल जाता है कि लेखक ब ने भी उसे अपनी पुस्तक भेजी थी कभी। वास्तव में हिंदी का लेखक इन दिनों बहुत डरा हुआ है उसे लग रहा है कि वह और उस की रचनाएँ कहीं अपठित न जाए। इसीलिए दिन-रात लिख रहा है कि कहीं ना कहीं, कोई ना कोई कुछ न कुछ तो पढ़ेगा ही उसका लिखा हुआ। इसी दिन रात लिखने के चक्कर में लेखक के पास समय ही कहाँ बचता है कि दूसरों का लिखा पढ़े और यह भी तो है कि दूसरे आख़िर लिख ही क्यों रहे हैं? वह लिख तो रहा है सभी के हिस्से का।''

वे आगे लिखते हैं - ''अपने पूर्व के लेखकों और साथ के लिए पढ़ने का समय नहीं, अपने बाद वालों को पढ़ना और उन्हें हौंसला देना यह तो बड़ा मुश्किल काम है भाई। अंतिम सत्य यह है कि हिंदी लेखन में मेंटोर नहीं होते, यहाँ तो मठ होते हैं। और हर मठाधीश चाहता है कि सारे नए लोग केवल और केवल बस इसी बात पर विमर्श करें कि उसने क्या लिखा।''

कुल मिलाकर हिंदी साहित्य की तमाम विधाओं को अपने अंतस में संजोए बेहतरीन त्रैमासिक पत्रिका 'विभोम-स्वर' नई पीढ़ी के कलमकारों पाठकों के समक्ष मील का पत्थर साबित होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरी तमाम शुभकामनाएँ पत्रिका परिवार को संप्रेषित है।

***

उच्चस्तरीय एवं सराहनीय

आपने ''विभोम स्वर'' में मेरी रचनाओं को स्थान दिया एवं डाक द्वारा मुझे पत्रिका प्रेषित की, इसके लिए आपकी हृदय से आभारी हूँ। हिन्दी को वैश्विक मंच प्रदान करने की दिशा में आपका और आपकी पत्रिका का प्रयास निस्संदेह उच्चस्तरीय एवं सराहनीय है। आशा है भविष्य में भी आपका प्रोत्साहन यूँ ही मिलता रहेगा।

-प्रीति पांडेय

***

सृजनात्मक सफलतम प्रयास

शिवना साहित्यिकी अक्टूबर, दिसंबर, 18 अंक प्राप्त हुआ। मुखपृष्ठ पर परवीन शाकिर की रचना, प्रभावी रचना, आँख नम कर गई। आपका सम्पादकीय आज के खोखले आदर्श वालों पर करारा तमाचा है। पुस्तक समीक्षाओं को प्रकाशित कर आपने ग़ज़ब कार्य कर दिया है, हर युग के मनुष्य और उसके सरोकारों को समझना ही साहित्य है और आपका यह अंक (समीक्षा अंक) साहित्य की परीक्षा परम्परा को कायम रखने का, रचनाकारों को आईना दिखाने का सृजनात्मक सफलतम प्रयास है। मनुष्य और उसके संबंधों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त करती इन कृतियों को आकलित करता, उनका सही मूल्यांकन करता, यह अंक चिर संग्रहणीय बन पड़ा है। हार्दिक बधाइयाँ।

-संतोष सुपेकर उज्जैन (म.प्र.)

***

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

सोशल साइट्स का सबसे बड़ा योगदान यह है कि इन्होंने सबको हीरो बना दिया है

(अभिवनव शुक्ल से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत)

अभिनव शुक्ल

संप्रति: गुणवत्ता विभाग में निदेशक।

शिक्षा: बिट्स पिलानी में सॉफ्टवेयर सिस्टम्स में स्नातकोत्तर, रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय से वैद्युत अभियांत्रिकी में स्नातक।

प्रकाशित कृतियाँ: हास्य दर्शन -काव्य एलबम, अभिनव अनुभूतियाँ -काव्य संग्रह), हास्य दर्शन दो-काव्य एलबम), पत्नी चालीसा-हास्य कविता संग्रह, हम भी वापस जाएँगे-काव्य संग्रह)

रचनात्मक सहयोग: विश्व हिन्दी सम्मलेन, न्यू यॉर्क 2006, उत्तरी अमेरिका के हिन्दी साहित्यकार, प्रवासी साहित्य: जोहान्सबर्ग के आगे, वागर्थ, गर्भनाल, हिन्दी चेतना, स्वतंत्र चेतना, राजस्थान पत्रिका, हिन्दी जगत्, विज्ञान प्रकाश, दक्षिण समाचार, दक्षिण भारत, दक्षिण ध्वज, विश्व विवेक, अनुभूति, अभिव्यक्ति, हिन्दी नेस्ट, वेब दुनिया, साहित्य कुंज, कलायान पत्रिका, कृत्या समेत देश-विदेश से प्रकाशित होने वाली अनेक पत्र पत्रिकाओं एवं संकलनों में कविताओं का प्रकाशन। 'निनाद गाथा' (ब्लॉग) वर्ष 2006 से अब तक निरंतर। 'हिन्दी चेतना' (त्रैमासिक) (2006 से 2015) के सह संपादक रहे हैं।

उल्लेखनीय गतिविधियाँ/ उपलब्धियाँ/ प्रतिभागिता: आपने अनेकानेक सम्मेलनों/ कार्यशालाओं में सक्रिय रूप से भाग लिया है। अनेक टीवी तथा रेडियो चैनलों पर काव्य पाठ एवं साक्षात्कारों का प्रसारण। सियैटल में 'झिलमिल - हिन्दी कवि सम्मलेन' का पिछले पाँच वर्षों से नियमित आयोजन एवं सञ्चालन। अमेरिका तथा कैनेडा में होने वाले कवि सम्मेलनों और मुशायरों में काव्य पाठ हेतु समय समय पर यात्राएँ । दो बार (2005 -2012) अमेरिका के दस से अधिक नगरों में वृहद् काव्य यात्राओं में आमंत्रित। डालस से प्रसारित होने वाले हिन्दी कविता के कार्यक्रम 'कवितांजलि' की दस कड़ियों का सञ्चालन।

मान्यता/ पुरस्कार/ सम्मान: बदायूँ (2015), पिलखुआ (2010) एवं बैंगलोर (2008) में साहित्यिक संस्थाओं द्वारा नागरिक अभिनन्दन। भारत, अमेरिका और कैनेडा की अनेक संस्थाओं द्वारा, 'काव्य श्री', 'साहित्य गौरव', 'हिन्दी काव्य रत्न', 'हास्य कविराज' आदि सम्मानों से विभूषित।

संपर्क:
ईमेल: shukla_abhinav@yahoo.com

अमेरिका की अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति हर वर्ष बीस से बाईस कवि सम्मलेन पूरे अमेरिका और कैनेडा में करवाती है। मैं कवि सम्मेलनों की राष्ट्रीय संयोजक थी। इन कवि सम्मेलनों से एकत्रित धन को हिन्दी के प्रचार-प्रसार में प्रयोग किया जाता है। अमेरिका की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि यह देश बहुत फैला हुआ है। हिन्दी भाषी भी फैले हए हैं। कवि सम्मेलनों के बहाने वे एक छत तले इकट्ठे होते हैं और भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए साथ और सहयोग देते हैं।

एक वर्ष भारत से सोम ठाकुर, डॉ. उदय प्रताप सिंह और अभिनव शुक्ल कवि सम्मेलनों के लिए बुलाए गए थे। मैं अभिनव से उसी समय मिली थी। ऊर्जा से भरपूर दुनिया को बदलने की इच्छा रखने वाले, पढ़ने, बहस करने के शौकीन, संस्कारों से लबालब, विनम्र और आकर्षक व्यक्तित्व वाले नौजवान से मिल कर अत्यंत प्रसन्नता हुई थी। अभिनव कवि के साथ-साथ एक बेहतरीन इंसान भी है। उसके कुछ समय बाद अभिनव अमेरिका आ गए। यहीं रच बस गए। बातचीत और मुलाकातों का सिलसिला बढ़ गया। अभिनव शुक्ल से बात करके जो कुछ इकट्ठा किया, लिख रही हूँ-

प्रश्न : अभिनव, पहले पहल क्या लिखा गद्य या पद्य, और लेखन का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ? यानि आपके प्रेरणा स्रोत क्या थे?

उत्तर : पहले कविता ही प्रगट हुई। मैं केंद्रीय विद्यालय में पढ़ता था। विद्यालय में काव्य पाठ प्रतियोगिताएँ होती थीं; जिसमें छात्र दिनकर जी, बच्चन जी और मैथलीशरण गुप्त जी आदि की रचनाएँ सुनाते थे। मैंने सोचा क्यों न मैं अपनी स्वयं की

रचना पढ़ूँ और इस प्रकार पहली रचना लिखी गई। मैं ग्यारहवीं में पढ़ता था तब की बात है। बाद में जब कालेज पढ़ने गया तो डॉ. बृजेन्द्र अवस्थी और डॉ. उर्मिलेश जैसे काव्य के शिखरों से मिलने और उनके सानिध्य में रहने का अवसर मिला तथा ये काव्य धारा आगे बह निकली। बाद में उदय प्रताप सिंह जी का आशीर्वाद मिला और कविता के नए आयाम से परिचित होने का भी अवसर मिला। तब से अब तक सीखने और पढ़ने की एक निरंतर प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जो शायद जीवन भर चलेगी।

प्रश्न : महादेवी, पंत, निराला, हरिवंश राय बच्चन और फिर भवानी प्रसाद मिश्र के समय की मंचीय परम्परा और कविताओं तथा आज की मंचीय कविताओं के स्तर में बहुत अंतर आ चुका है। मंचों पर आज हास्य और व्यंग्य के साथ-साथ चुटकलों की भरमार होती है। आपकी इस तरफ़ रुचि कैसे और क्यों हुई?

उत्तर : मुझे लोगों को हँसते और मुस्कुराते हुए देखना बहुत पसंद है। और ऐसे में जब श्रोता मेरे काव्य पाठ को सुन कर प्रसन्न होते हैं तो मुझे एक आत्मिक सुख की अनुभूति होती है। मंच पर कल जो होता था वो आज नहीं है और आज जो होता है वो कल नहीं होगा, आज चुटकुलों का दौर है; जिससे कोई मंचीय कवि अछूता नहीं है पर वाट्स अप के प्रसार के बाद अब सिर्फ चुटकुलों वाले कवियों के हूट होने का दौर भी आ रहा है।

प्रश्न : प्रवास आपकी रचनाशीलता में क्या स्थान रखता है? प्रवासवास ने आपको और आपकी सृजनात्मकता को कितना प्रभावित किया है।

उत्तर : प्रवास ने बहुत प्रभावित किया है। एक नए समाज से परिचित होने का अवसर मिला, अमेरिका की विशेषताओं को निकट से देखने को मिला, यहाँ बसने वाले अंग्रेज़ी कवियों से वाद विवाद भी हुए और इनकी जीवन शैली से प्रभावित भी बहुत हुआ। कर्म योग का जो सहज स्वरुप मुझे अनेक अमेरिकी लोगों में देखने को मिला; उसने भी प्रभावित किया। मेरी अनेक कविताएँ यहीं के परिवेश से सीधे-सीधे उठाई हुई हैं।

एक ये रचना देखिए:

आज शाम को यूँ ही जाकर खड़ा हो गया अपनी बालकनी पर, / बारिश बिलकुल वैसे ही हो रही थी जैसे सियैटल में होती है, / नीचे एक लड़की पिज़्ज़ा डिलीवर करने जा रही थी, / कार से नहीं पैदल, / कभी एक हाथ में पिज़्ज़ा का बड़ा थैला पकड़ती, / कभी दूसरे में, / हाथ थक रहा था, / उसनें मुझे देखा तो मैंने इशारे से उसे थैला सर पर रखने को कहा, / उसनें झट वो थैला सर पर रखा, / बिलकुल वैसे जैसे अपने यहाँ मज़दूरनियाँ सर पर उठा लेती हैं, / पूरी की पूरी ईमारत की ईंटें, / आगे के मोड़ पर जाकर, / उसनें धन्यवाद में हाथ हिलाया, / और ज़ोर से 'मेरी क्रिसमस' की आवाज़ लगाई।

प्रश्न : अमेरिका में रहते हुए आप मंचों पर किस तरह अपनी उपस्थिति दर्ज करवाते हैं; जबकि यहाँ कवि सम्मलेन बहुत कम होते हैं।

उत्तर : कवि सम्मेलनों में जाना तो कम हुआ है। वैसे तो यहाँ अब खूब कवि सम्मलेन होते हैं, पर उनमें से अधिकतर में भारत से बुलाए गए कवियों को प्रधानता दी जाती है। और यह सही भी है। पर जो सबसे बढ़िया बात हुई है कि इससे यहाँ स्वाध्याय के लिए बहुत बढ़िया समय मिल जाता है।

प्रश्न : विदेशों की बहुत सी संस्थाएँ भारत से कवियों को बुलाती हैं और कवि सम्मलेन करवाए जाते हैं, क्या भारत वाले भी यहाँ के मंचीय कवियों को वहाँ बुलाते हैं।

उत्तर : मेरे पास कई बार भारत से आयोजकों का फ़ोन आया है, उनकी इच्छा रही है कि मैं उनके कार्यक्रमों में काव्य पाठ करूँ, पर यहाँ से भारत का किराया और उसपर मानदेय आदि इतना हो जाता है कि ये बातें अभी तक तो सिर्फ बातें ही रह गई हैं। हाँ जब मैं वर्ष दो वर्ष में भारत जाता हूँ तो वहाँ अनेक कवि सम्मेलनों में भाग लेता हूँ। भरत में युवा कवियों की जो पीढ़ी आ रही है उसकी ऊर्जा और उमंग देख कर मन बहुत प्रसन्न होता है।

प्रश्न : आज की हिन्दी कविता के बारे में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर : आज हिन्दी कविता का स्वर्णिम दौर है। इंटरनेट और अन्य तकनीकी संसाधनों के प्रयोग के चलते लाखों लोग अपनी रचनाएँ एक दूसरे तक पहुँचा पा रहे हैं और अनेक लोग रोज़ कविता के प्रति आकर्षित हो रहे हैं। आज जितनी प्रकार की कविता हिन्दी भाषा में लिखी जा रही है; वह अपने आप में उत्साहित करती है। एक और प्रगतिशील कवि है जो कविता को आंदोलन से जोड़ रहे हैं, दूसरी ओर मंचीय रचनाकार हैं जो अपनी कविता को बहुत सहज और सम्प्रेषणीय बना रहे हैं, तो वहीं एक ओर अनेक एकांत साधक है जो निरंतर कुछ न कुछ लिख रहे हैं। कविता खूब लिखी जा रहे है और खूब बढ़िया-बढ़िया भी लिखी जा रही है।

प्रश्न : भारत से दूर हुओं को भारतीय संस्कृति, अपनों का प्यार या मिट्टी की खुशबू, इनमें से कौन और कैसे बाँध कर रखता है?

उत्तर : भारत से दूर हुए लोगों में भारत को यहाँ बसाने की एक तीव्र उत्कंठा रहती है। आपके इस प्रश्न के उत्तर में मैं अपनी एक कविता उद्धृत करना चाहूँगा।

आबादी से दूर, घने सन्नाटे में, / निर्जन वन के पीछे वाली, ऊँची एक पहाड़ी पर, / एक सुनहरी सी गौरैया, अपने पंखों को फैलाकर, / गुमसुम बैठी सोच रही थी, कल फिर मैं उड़ जाऊँगी,/ पार करूँगी इस जंगल को, वहाँ दूर जो महके जल की, / शीतल एक तलैया है, उसका थोड़ा पानी पीकर, / पश्चिम को मुड़ जाऊँगी, फिर वापस ना आऊँगी, / लेकिन पर्वत यहीं रहेगा, मेरे सारे संगी साथी, / पत्ते शाखें और गिलहरी, मिट्टी की यह सोंधी खुशबू, / छोड़ जाऊँगी अपने पीछे ...., / क्यों न इस ऊँचे पर्वत को, अपने साथ उड़ा ले जाऊँ, / और चोंच में मिट्टी भरकर, थोड़ी दूर उड़ी फिर वापस, / आ टीले पर बैठ गई .....। / हम भी उड़ने की चाहत में, कितना कुछ तज आए हैं, / यादों की मिट्टी से आख़िर, कब तक दिल बहलाएँगे, / वह दिन आएगा जब वापस, फिर पर्वत को जाएँगे, / आबादी से दूर, घने सन्नाटे में।

प्रश्न : अभिनव, कहा यह जाता है कि बाज़ारवाद ने हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है। इस पर आप क्या सोचते हैं? आप की राय जानना चाहती हूँ।

उत्तर : बाज़ारवाद ने सब कुछ प्रभावित

किया है तो साहित्य कैसे अछूता रह सकता है। बाज़ार का सच ही अंतिम सच बन कर उभर रहा है और जो इसके विरुद्ध जाता है उसे कीमत चुकानी पड़ रही है। बाज़ारवाद के कारण साहित्य अपनी उन्मुक्तता और आनंद खो रहा है, साहित्य स्वतंत्र होना चाहिए, अपितु कोई भी कला तब ही पनपती है जब कलाकार स्वतंत्र हो। बाज़ार इस स्वतंत्रता को छीन रहा है। इसके चलते लेखक परेशान है, मन की बात लिखने में डर रहा है और लिख भी रहा है तो उसके दाम चुका रहा है। मेरी कामना है की बाज़ारवाद व्यवसाय की हदों में रहे और कला इससे पूरी तरह दूर रह कर अपनी साधना करे।

प्रश्न : आप सोशल साइट्स से जुड़े हुए हैं। हिन्दी के प्रचार-प्रसार और साहित्य के लिए ये कितने सहायक हैं।

उत्तर : सोशल साइट्स का सबसे बड़ा योगदान ये है कि इन्होंने सबको हीरो बना दिया है। अपने फेसबुक पेज पर और अपने ब्लॉग पर, अपनी वेबसाइट पर मैं हीरो हूँ। कोई यदि वहाँ जाता है तो उसे मेरी बढ़िया तसवीरें, मेरे बारे में अच्छी बातें और मेरी कविताएँ पढ़ने को मिलेंगी। इसके चलते एक अहम् तुष्टि का भाव लोगों के मन में आया है और कहीं-कहीं ये आत्ममुग्धता में भी परिवर्तित हुआ है। आपने भी तो अपने एक व्यंग्य में इसपर चुटकी ली है। जहाँ तक हिन्दी की बात है, इससे हिन्दी को भी एक नए स्पेस में हीरो बनने का अवसर मिला है, अनेक लोग हिन्दी में लिख रहे हैं और खूब लिख रहे हैं। दूसरी चीज़ है कि अब लेखक संपादकों का गुलाम नहीं रह गया है, मैंने जो लिखा अपने फेसबुक पर डाल दिया, ब्लॉग पर पोस्ट कर दिया। कुल मिलकर मैं इस माध्यम के खुलने से बहुत खुश हूँ और मुझे लगता है इससे हिन्दी को कई नए लेखक और कवि मिले हैं और आगे भी मिलते रहेंगे।

अभिनव आप जैसे हैं वैसे ही सरल, सादा बने रहें। विनम्रता ही मनुष्य को आगे लेकर जाती है। आपकी जल्दी-जल्दी और पुस्तकें आएँ और आप कवि सम्मेलनों की शोभा बढ़ाते रहें। हृदय से शुभकामनाएँ!

***

लघु कथा

अपना -पराया

देवेंद्र सोनी

अचानक सर चकराया और ज़मीन पर धड़ाम से गिरे रमानाथ बेहोश से हो गए। काफी देर बाद जब थोड़ा सम्हले तो धीरे - धीरे उठे और रसोई में जाकर पानी पिया, कुछ दवा ली और आकर बिस्तर पर लेट गए। ऐसा पहली बार नही हुआ था, कई बार हो चुका था। इलाज़ चल रहा था पर एकाकी जीवन में दवाएँ भी कितना असर करती। चिंता और परेशानी का सबब अब उनसे सहन नहीं हो रहा था और वे रोज़ ही ईश्वर से मुक्ति की प्रार्थना करते पर जितनी साँसें मिली थी उन्हें पूरा तो होना ही था।

बिस्तर पर पड़े-पड़े उनकी आँखें जब नम हो आईं तो बरबस ही रमानाथ अपने अच्छे बिताए दिनों को याद करने लगे। अब ये यादें ही उन्हें थोड़ी राहत देती थीं। रमानाथ को याद आया - कैसा छोटा सा संसार था उनका। इकलौता पुत्र और पत्नी। बस यही उनकी ज़िंदगी थी। सरकारी नौकरी में खुद का मकान बना भी लिया था। ऊपर किरायेदार की चहल पहल और नीचे उनका खुशहाल परिवार। समय को कब पंख लग गए पता ही नहीं चला। बेटा अपनी पढ़ाई कर विदेश चला गया और वहीं शादी कर बस गया। रह गए रमानाथ और उनकी पत्नी अकेले। देखते ही देखते रमानाथ भी सेवा निवृत्त हो गए। बेटे के हाल चाल फ़ोन पर मिल जाता। उसी से संतोष कर लेते। समय बीतता गया और एक दिन उनकी धर्मपत्नी भी उन्हें अकेला छोड़ हृदयाघात से चल बसी। ऐसे समय में भी जब बेटा - बहू स्वदेश न लौट सके तो उन्हें अपना जीवन निरर्थक लगने लगा। कई बार उन्होंने अपने बेटे को वापस बुलाना चाहा पर सफलता नहीं मिली। थक हार कर अब वे अपना निराश जीवन व्यतीत करने लगे। बढ़ती उम्र में बीमारियों से घिर गए और चिकित्सकों ने टिफिन के खाने पर पाबंदी लगा दी तो ऐसे समय में उनके किरायेदार ही काम आए। अब उन्हीं के घर से दोनों समय का खाना और चाय मिलने लगी। रमानाथ ने भी कोई विकल्प न देख इस व्यवस्था को स्वीकार लिया। अब उन्हें अपने -पराए का अंतर भी महसूस हो रहा था। खुद की औलाद को उनकी कोई फ़िक्र न थी और पराए उनकी सेवा कर रहे थे।

यही सब सोचकर उनकी आँखें भर आई। अस्सी की उम्र में अब उन्हें यह चिन्ता सता रही थी कि यदि उन्हें भी उनका पुत्र मुखाग्नि देने नहीं आया तो फिर कौन इस कर्म को करेगा ? कई दिनों से उनके मन में चल रही इस कश्मकश का हल तो उन्हें निकालना ही था। भरे मन से वे बिस्तर से उठे और उन्होंने अपने किरायेदार के बेटे को यह अधिकार देने का फैसला फ़ोन पर अपने वकील को सुना दिया। शाम को अपनी वसीयत पर हस्ताक्षर करते हुए उनका चेहरा दमक रहा था। लगता था जैसे उन्हें अब अपने पराए की पहचान हो चुकी थी।

***

संपर्क: प्रधान सम्पादक ''युवा प्रवर्तक''
इटारसी। मोबाइल:9111460478

ऑरेंज कलर के भूत

पारुल सिंह

आम सा मार्च का दिने खास से दिल्ली के रास्ते। खास से रास्ते कैसे? नाम खास है इनके। अकबर रोड, सफदरजंग रोड, महात्मा गाँधी मार्ग। खास मर कर भी खास होते हैं, जो इन से जुड़ जाता है वो और खास हो जाता है। आम जीते जी आम सा कुछ होते हैं। मर कर कुछ भी नहीं होते। खैर! आम सा मार्च का दिन, खास से दिल्ली के रास्ते। रास्ते पर ऑटो। ऑटो में मैं और मेरी चार साल की डिसएब्ल बेटी। डिसएब्ल पहले ही बता दिया। क्या है कि छिपाए जाने के आरोप लगते हैं हम पर। वैसे भी आगे की सारी बातें इस डिस्एब्लिटी से शुरू होती हैं। इसी पर खत्म होती हैं या नहीं क्या पता। देखते हैं।

ऑटो रुका एक बड़े दालान में। जिस के फ़र्श पर ईंटों का खड़ंजा था। और चारों तरफ दो से तीन मंज़िलों वाली रिहायशी इमारतें थीं। दालान मे कई ऑफ़िस थे शायद। दालान का एक दरवाज़ा एक और दालान में खुलता है। जिसके अन्दर एन आई एम एच का ऑफ़िस है। इसी दरवाज़े से बेटी का हाथ पकड़े मैं अन्दर गई तो बाँई ओर एक कमरा था जिसके अन्दर भी एक और कमरा था। दरवाज़े के दाँई ओर रैम्प था वी के शेप में। जो पहली मजिंल पर जा रहा था। डिसएब्लिटी से जुड़ा ऑफ़िस हैं, यहाँ तो रैम्प बनता है। वरना तो हमारे देश में सार्वजनिक स्थल व इमारतें कितना डिस्एब्लिटी फ्रेंडली हैं हम भी जानते है। दालान की दीवारों पर उबड़ खाबड़ सीमेंट का पलस्तर था। उन यूँ ही सी लिपी पुती दिवारों पर धूप आधी दीवार तक उतर आई थी। बहुत वीरान से दरो दीवार थे, जैसे अभी चील कौएं मंडराने लगेगें चारों और। ऐसे जैसे..... कह दूँ क्या? आप नाटकीयता का आरोप तो ना लगा देंगे? फिर आरोप का डर? हाँ साहब क्या थोड़ा? बहुत,बहुत डर लगता है आरोपों से। हम पर लगते भी खूब हैं। हम खूब डरते हैं इसलिए लगते हैं आरोप या आरोप लगते हैं इसलिए डर लगता हैं। ये बता पाना मुश्किल है।

बहरहाल ये तो पक्का है कि हम डरते हैं, और आरोप लगते हैं। हम यानि स्पेशल पैरेन्टस यानि स्पेशल बच्चों के पैरेन्टस। अरे असल में विकलांग बच्चों के माता-पिता। क्या सोच रहे हैं? इस हिसाब से होना चाहिए था विकलांग माता-पिता। है ना ? पर ऐसा है नहीं। समाज के कुछ सुधी बुद्धिजीवियों ने ये स्पेशल नाम दे दिया है विकलांग जनों व उनके माता-पिता को। अब तो विकलांग का विकल्प अंग्रेज़ी में भी बोलने की आवश्यकता नहीं होगी। अब तो हुकुमत ने सब को दिव्यांग नाम दिया है, जिनके कुछ अंग सही से काम भी न कर पाए वो दिव्यांग। वाह। क्या है कि इस से समाज भी थोड़ा अनईजी फील नहीं करेगा बोलने में। विकलांग के बजाए स्पेशल ज़्यादा सभ्य व सुंस्कृत लगता है और हम स्पेशल पैरेन्टस को भी हीनभावना की जगह खुशफहमी रहती है। क्या है कि हमें खुशफहमियाँ ही ज़्यादा रहती है। पर इस से भी हम 'फील गुड' ही होते हैं।

आपके ग़ालिब़ जी ने भी तो कहा है ''दिल के बहलाने को ग़ालिब़ ख्याल अच्छा है''। आपके ग़ालिब़ कहा मैंने ? जी हाँ,हम तो स्पेशल पैरेन्टस है ना बकौल आपके। हमें ये आम सी शेरों शायरी कैसे पसन्द हो सकती है ? हमारी पसन्द तो स्पेशल चीज़े होनी चाहिए।

अपने ब्लॉग के साथ ही पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ व समीक्षात्मक आलेख प्रकाशित। कविता संग्रह 'चाहने की आदत है' प्रकाशित। त्रैमासिक पत्रिका शिवना साहित्यिकी की सह सम्पादक।
संपर्क: डब्ल्यू-903, अमरपाली ज़ोडिएक, सेक्टर 120, नोएडा, उप्र 201301
मोबाइल : 9871761845
ईमेल: psingh0888@gmail.com

जैसे की डिसएब्लिटी पर मेडिकल साईन्स की नई-नई खोजें,जरनलस,पैपरस और साईटस। जिसे ये सब जानकारी नहीं वो आपकी क्या हमारी बिरादरी में भी अच्छा स्पेशल पैरेन्ट नहीं माना जाता। हमारी बिरादरी? हाँ जी हम स्पेशल पैरेन्टस की बिरादरी। मानते नहीं क्या आप हम सब को अलग?न स्वीकारिए मानते तो हैं।

माफ करें बहुत दूर ले आई आपको असल में कहानीकार नहीं हूँ ना, विषय से भटक जाती हूँ। विषय तो शायद वही है, मुद्दा दूसरा हो गया। चलिए उसी मुद्द। पर चलते हैं।

..... सफेद रंग की यूँ ही सी लिपी पुती दिवारों पर धूप आधी दीवार तक उतर आई थी। बहुत वीरान से दरो दीवार ऐसे जैसे अभी चील कौएं मंडराने लगगें। ऐसे जैसे..... कह दूँ क्या? ऐसे, जैसे कोई मर गया हो। कोई चहल पहल नही थी। मुझे उम्मीद थी चहल पहल की। क्योंकि आज खास दिन था। आज अपाइन्टमेन्टस ले ले कर बहुत सारे चक्कर ऑफ़िस के लगा कर डिसएब्लिटी सर्टिफिकेट प्राप्त करने की बजाए एक ही दिन में सभी आवश्यक कार्यवाहियाँ निबटा कर सर्टिफिकेट प्राप्त करने का सुनहरा मौका विभाग की तरफ से दिया गया था।

वैसे किस बात का सुनहरा मौका मेरे भाई? कि आप ये लिख कर देंगे कि हमारा बच्चा किस-किस काम के काबिल नहीं है।

मज़ाक नहीं कर रही। ये बात कोई कह दे तो हम मुँह नोच ले उसका। मैं भी नोच लेती। पर अब नहीं नोच सकती,क्यूँकि ये ही सच भी तो है।

स्कूल से एक शिकायत भरा रेड नोट आ जाए तो हम बौखला जाते हैं। पहले बच्चे पर फिर अध्यापक पर। और फिर अध्यापक पर ही गुस्साए रहते हैं। इतने बच्चे ले रखे हैं एक एक क्लास में। ध्यान तो दे नहीं पाता अध्यापक सब पर। जब सही करता है बच्चा कुछ तब तो दिखता नहीं। अबकी पैरेन्टस टीचर मीटिंग में देखते हैं टीचर को। और फिर पैरेन्टस टीचर मीटिंग में देख भी लेते हैं। ये भारी भरकम इंग्लिश बोल कर और बच्चे के लिए ''इसे तो खैर मैं समझाऊँगा ही/ समझाऊँगी ही'' जैसे एक दो वाक्यों की ढाल के पीछे टीचर पर नेट से समेटा सारा ज्ञान उलट दिया जाता है। और बातों बातों में समझा भी दिया जाता है कि औकात में रहियो टीचर से ही कुछ हो बसे

स्कूल की हिम्मत नहीं किसी बच्चे को स्कूल छोड़ते वक्त कैरेक्टर सर्टीफिकेट में आचरण की कोई कमी लिख कर दे तो।

कोई बात होती भी है तो मुँहज़ुबानी जो सज़ा दे लें। लिख कर देने में स्कूल भी हिचकिचाता है। सोचते है लिखे की ताकत बड़ी होती है। बच्चे के भविष्य की बात है। और किसी रेअरेस्ट रेअर केस में कैरेक्टर सर्टीफिकेट में कुछ ऊँच-नीच करने पर उतर ही आए स्कूल तो ऊँची-ऊँची पहुँच का इस्तेमाल कर वो ऊँच-नीच ऊँच करा ली जाती है। ऊँची पहुँच अपने बच्चे के लिए नीचे से नीचे वाला भी निकाल लाता है।

वो ही बच्चे के भविष्य का सवाल जो ठहरा।

हाँ बिटिया के भविष्य का सवाल जो ठहरा। उसे जीवन में कुछ अच्छी सुविधाएँ मिलेगीं। क्या -क्या मिलेगी अभी सही नहीं पता। एक हमें इनकम टैक्स में रियायत मिलेगी ये पता है।

इन्हीं सुविधाओं के लिए मैं ये लिखित में लेने को तैयार हूँ कि मेरा बच्चा किस किस लायक नहीं है। जो है सो है। पर बहुत मुश्किल है होने में और हुए को लिखा हुआ देखने में। और उससे भी ज़्यादा मुश्किल है उस लिखे को जगह-जगह औरों को दिखाने में। बहुत मुश्किल होता है अपनी बर्बादी झेलना। और ज़्यादा मुश्किल होता है उसके बारे में लिखा जाना। और जानलेवा होता है उस लिखे को औरों द्वारा पढ़ा जाना।

लिखतम के आगे बकतम की बिसात नहीं। यूँ तो बच्ची की मेडिकल रिपोर्ट में भी ये बात लिखी हुई है। पर मेडिकल टर्मस में। वो ही सभ्य भाषा वाली बात और दूसरा वो रिपोर्ट तो छुपा कर रख दी अलमारी में, किसी को रोज़-रोज़ दिखानी थोड़े पड़ती है। पर ये सर्टीफिकेट तो हर उस जगह दिखाना होगा जहाँ से सुविधा लेनी हो। दिल बड़ा बेईमान है साहब। ये सब लिखित में लेने को इतना जल्दी कोई भी स्पेशल पैरेन्टस तैयार नहीं होते। वे एक दूसरे को और शुभचिन्तकों को आराम से ये कहते मिल जाएँगे ''यार इसकी क्या ज़रूरत है। वजह सरकारी दफ्तर के चक्कर से डर नहीं। दिल होता है। हर पड़ाव पर हकीकत को झुठलाने की दिल की कोशिश। क्योंकि हकीकत बड़ी कड़वी है। सो दिल खूब फड़फड़ाता है सच मानने से पहले। जैसे चिड़िया खूब फड़फड़ाती है पिंजरे में डाले जाने से पहले। मगर अंजाम दिल का भी होता वही है, जो चिड़िया का होता है। पता नहीं सुविधाओं के लिए डिसएब्लिटी सर्टीफिकेट लेना सही है या दिल को और कुछ नहीं तो कम से कम इस हकीकत को लिखित में लेने के ज़ुल्म से बचा लेना सही है। ना लो सर्टीफिकेट। ना लेना सुविधाएँ। मर गए क्या? ना मिले रेलवे और हवाई यात्रा के किराए मे रियायते

चार जगह अपने बच्चे की कमज़ोरी की नुमाइश से तो बच जाएँगे यारो। पर ये क्या बिल्ली को देखकर कबूतर के आँख बंद कर लेने जैसा नहीं ? बी प्रैक्टिकल। जो है सो है। जो बदल नहीं सकते उस पर हाय तौबा मचाने से अच्छा तो जो अब सही कर सकते हो वो करना है।

वैसे भी हमारे पास कोई ऊँची पहुँच भी नहीं क्योंकि ये सारा किया धरा ही उस सबसे ऊँची पहुँच का ही है। सो मैं यहाँ थी। सफ़ेद रंग की यूँ ही सी लिपी पुती दिवारों पर धूप आधी दीवार तक उतर आई थी। बहुत वीरान से दरो दीवार ऐसे जैसे अभी चील कौए मंडराने लगगें। ऐसे जैसे..... कह दूँ क्या? ऐसे जैसे.. जैसे कोई मर गया हो। कोई चहल पहल नहीं थी। बाँई ओर एक छोटा सा कमरा था। वैसा ही था जैसे सरकारी दफ्तरों के कमरे होते है। आदमकद शेल्फ थी। उन में फाइलें थीं, दो मेज़ थीं, दो कुर्सी थीं। कुर्सियाँ खाली थीं। पर एक कुर्सी वाली वहीं खडी होकर शेल्फ में फाइलें जमा रही थी। बहुत सलीकेदार थी शायद। क्योंकि दोनों मेजें बिल्कुल साफ थी इतनी साफ की उन पर कुछ नहीं रखा था। पैन भी नहीं। ऐसी साफ जैसे लाइब्रेरी की मेजें होती हैं। उनके हिस्से में किताबें तभी तक हैं जब तक किताबें पढ़ने वाला है। पढ़ने वाला साफ, किताबें साफ, मेज़ भी साफ।

क्या पता ये इन लोगों की लाइब्रेरी ही हो। इन्हें भी जानकारी रखनी पडती होगी नई-नई खोजों, जर्नलस..... हाय बेचारे

कितने अच्छे हैं, ये ही हैं हमारे सबसे बड़े हितेषी। यूँ ही दिल छोटा कर रही थी मैं। कोई तो है। फिलहाल इन सलीकेदार मैडम से पुछूँ क्या?क्या करना होगा सर्टिफिकेट बनवाने को।

''जी डिस्एब्लिटी सर्टिफिकेट बनवाना था।''

बिना किसी सम्बोधन के बोल तो गई फिर अजीब लगा। वो धीरे से पलटी। बस आधी ही पलटकर मतलब पैर वहीं रहे थोड़ी सी कमर और गर्दन मोड़ कर बोली। नेक्सट रूम। फिर बिटिया पर नज़र डाली। मुस्कुराई। क्यूँ मुस्कुराई पता नहीं। सोच रही होगी एक और आ गई.....। ऐसी लगी तो नहीं। कितने अच्छे से तो बताया। नेक्सट रूम। हाथ से इशारा भी किया। तू ना हर वक्त नेगेटिव ही सोचा कर। अगले कमरे की तरफ बढ़ गई मैं भी मुस्कुरा कर। कमरा काफी बड़ा था। पर सरकारी दफ्तर सा नहीं। किसी कॉलेज के कामॅन रूम का नज़ारा था वहाँ तो। आठ दस लड़के -लड़कियाँ थे। कुछ कुर्सियों पर बैठे थे, कुछ खड़े थे। कुछ लड़कियाँ मेज़ पर बेटी पैर हिला रही थी। सभी गप्पों में व्यस्त थे। एक दो जो काम सा करते नज़र आ रहे थे वो कुछ कागज़ लेकर कमरे के एक हिस्से में पड़े परदों के पीछे आ जा रहे थे। .....

''एक्सक्यूज मी, डिस्एब्लिटी सर्टीफिकेट.....'' पूछा तो मेरी बात पूरी होने से पहले ही उनमें से एक लड़की बोली,''मैम ये फार्म फिल कर लीजिए। फिर बाहर विंडो काउंटर से रसीद ले लीजिए।''

फार्म लेकर मैं बाहर आई। एक बैंच पड़ी थी इसी बड़े से कमरे की दीवार से सटी। वहीं बैठ कर फार्म भरा। डिसएब्ल पर्सन की ऐज केयर टेकर के डिटेल ये ही सब जानकारी भरनी थी उस में।

फॉर्म भर मैंने फिर अन्दर जाकर उस लड़की से पूछा कि किस विंडो से रसीद मिलेगी। उसने मेरे साथ बाहर तक आकर बैंच से ज़रा आगे एक थोड़ी ऊँची सी विंडो की तरफ इशारा किया। विंडो क्या वो रेलवे का टिकट काउंटर सा था।

मैंने वहाँ जाकर रसीद देने को बोला फॉर्म दिखा कर तो वहाँ बैठे व्यक्ति ने बड़ी बेपरवाही से फॉर्म देखा और बोला,''अरे मैम पहले ये फॉर्म पर डॉक्टर के साइन तो लाइए।''

''डॉक्टर कहाँ मिलेंगे?''

''ये इधर से ऊपर जाइए''। उसने दाईं तरफ ऊपर जाने वाले उसी रैम्प की तरफ इशारा किया जो मैंने अन्दर आते वक्त देखा था।

मैं मिट्ठू को गोद में लेकर ऊपर गई।

लम्बा सा कॉरीडोर और कमरे ही कमरे। भाई मेरे तूने रूम नम्बर भी तो बताया होता। मैं देख ही रही थी कि किस से पता करूँ, तभी एक गॉर्ड आता दिखाई दिया। गॉर्ड कहना ग़लत होगा वो पूरी सरकारी वर्दी पहने, टोपी लगाए एकदम ठस्के के साथ पियॉन था। उसने मुझे डॉक्टर के रूम तक पहुँचाया। पहले से ही दो तीन लोग डॉक्टर को घेरे खड़े थे। और कुछ बैठ कर इंतज़ार कर रहे थे। मैं भी एक बैंच पर वहीं बैठ गई।

उन सभी को निपटाते ना निपटाते डॉक्टर साहिबा को एक घंटा लग गया। मैं पहुँची उनके पास तो वह साइन करके बोलीं, मैंने तो साइन कर दिया पर अब जो होगा वह लंच के बाद होगा। मैं मिट्ठू को लेकर रैंप से नीचे उतर आई उसी ऑफिस के रूम के बाहर बनी हुई वह विंडो बंद हो चुकी थी यानि कि हर तरफ लंच आवर शुरू। विंडो के पास बेंच पर मेरी नज़र पड़ी तो एक महिला बैठी थी वहाँ, दस से ग्यारह साल का एक लड़का था उसके साथे जो अपनी ही उँगलियों से खेल रहा था। उस महिला को देखकर मेरी निगाहें उसके सर के ऊपर चिपकी रह गई जैसे। उसके सारे बाल सफेद थे, बालों में बीच की माँग में उसने कम से कम 50 ग्राम सिंदूर भरा हुआ था वह भी चमकदार ऑरेंज कलर का। जो मेरी आँखों को खींच रहा था अपनी तरफ। कैसी बुत तरह बगैर हिले डुले बैठी थी यह महिला। एक सीधी लकीर में सामने देखती हुई। पूरा दालान खाली था उस ट्रेन के टिकट काउंटर की सी खिड़की के बाएँ तरफ की जगह खाली थी। बड़े-बड़े पेड़ लगे हुए थे दूर तक।

कमरे में से अब उन लड़के-लड़कियों की आवाज़ें भी नहीं आ रही थीं। चटक धूप और कभी-कभी पेड़ों पर चीं चीं करते पंछी। अजीब सी मनहूसियत थी। दोपहर भी इतनी डरावनी और सुनसान हो जाया करती हैं मैं जानती हूँ पर वह जंगल में, खेतों में, गाँवों में, यहाँ तो नहीं होती ऐसी दोपहर। मेरी नज़र फिर उस महिला पर पड़ी तो वह अब मुझे ही देख रही थी अपलक। गोल मोटी-मोटी आँखों से। कुछ गुनगुनाता हुआ ऊपर मिला पियून मेरे पास से गुज़रा। मैंने पूछा पानी कहाँ मिलेगा तो उसने बताया खाली जगह में जो पेड़ है, उनके दाएँ तरफ मुड़ कर कैंटीन है मैं वहीं जा रहा हूँ। मैं झट से पियून के साथ कदम मिलाते हुए वहाँ से चल दी।

कैंटीन के अंदर जाकर मैं सामने खाली पड़ी एक टेबल पर बैठ गई। कैंटीन शांत नहीं था वह जो लड़के लड़कियाँ थे; जिन्होंने मुझे फार्म दिया था वह अपने-अपने ग्रुप बनाए बैठे थे। और खाने व हँसने-बतियाने में मशगूल थे। मैंने एक कुर्सी पर मिट्ठू को बैठाया और एक पर खुद बैठ गई। बैग से सिपर निकाल कर मिट्ठू को दे दिया पानी पीने के लिए यह नया नया माइलस्टोन मिट्ठू ने कवर किया था। अभी कुछ दिनों पहले सिपर से पानी पीना और अब हम दोनों ही इसे इंजॉय कर रहे थे। मैं मेरी एक ड्यूटी कम होने को और मिट्ठू अपना एक काम खुद करना सीखने को। कैंटीन में आधे हॉल मे, हॉल क्या ये एक बड़ा सा कमरा ही था। कमरे के आधे हिस्से में मेज़ कुर्सी थी और दूसरे हिस्से के दो हिस्से थे एक में किचन और एक तरफ घर का सारा सामान इकट्ठे किए बिस्तर कुछ कपड़े वगैरा रखे थे बीचो-बीच दीवार पर एक छोटा टीवी लगा हुआ था। किचन में एक औरत काम कर रही थी जिसकी सहायता एक आदमी कर रहा था दोनों पैंतीस से चालीस की उम्र के होंगे शायद। वह आदमी ही मेज़ कुर्सी पर बैठे लोगों को ऑर्डर भी ला ला कर दे रहा था लड़के लड़कियों के अलावा भी कुछ लोग यहाँ और थे।

ऑर्डर लेने देने वाला आदमी दो बार मुझे देख कर मुस्कुरा चुका था और गर्दन से इशारा भी कर रहा था कि आ रहा हूँ तभी मेरी नज़र किचन के सामने दीवार से सटी एक व्हीलचेयर पर बैठी लड़की पर पड़ी, जो व्हीलचेयर भी नहीं स्पेशल उसके लिए बनाई एक लकड़ी की गाड़ी सी मालूम होती थी; जिसे खिसकाया जा सकता था।

उसी में छोटा सा बिस्तर लगा था और वह लड़की टीवी देख रही थी। उसके सामने एक लकड़ी का फट्टा भी लगा था, जैसे सामने कॉफी टेबल लगी होती है। यह फट्टा उसकी ढलकती देह को इधर उधर गिरने से भी बचा रहा था और बैठे रहने के लिए समुचित सहारा भी दे रहा था। खुद की देह को वह दस ग्यारह साल की लड़की खूब सँभालने की कोशिश कर रही थी। उसे देखते ही मेरे मुँह से निकला सी पी और बस होठों पर ही बुदबुदा कर रह गई। आख़िर डिसेएबिलिटी के फील्ड में इतने सालों का तो मेरा अनुभव हो गया था कि मैं देखकर अंदाज़ा लगा सकती थी क्या डिसेएबिलिटी है। एकदम से कैंटीन वाले महाशय आए आधे से ज़्यादा झुके और मिट्ठू से बोले ''क्या लोगी मेरी रानी बिटिया, जूस, कोल्ड्रिंक क्या लाऊँ आपके लिए? मिट्ठू के लिए ये टेम्प्टिंग वर्ड्स थे। उसने मिट्ठू को गोद में उठाया और बात करने लगा। मैंने एक इडली और मिट्ठू के लिए जूस का आर्डर दिया। आर्डर लेकर जब वह बंदा आया तो मैं लकड़ी की गाड़ी में बैठी उस लड़की को देख रही थी।

''मेरी बेटी है मैम।''

''सी पी है ना। चलना फिरना कुछ नहीं कर पाती खुद से।''

सी पी यानि सेरेब्रल फालिसी। जिसमें आपकी मसल्स, नर्वस पर आपका कंट्रोल नहीं होता। हर किसी की शरीर के अलग-अलग हिस्से की नर्वस पर इस में असर हो सकता है। अगर दिमाग की नर्वस पर असर नहीं हो ज़्यादा तो सी पी से प्रभावित व्यक्ति सामान्य व्यक्ति के या उस से ज़्यादा प्रतिभावान् हो सकता है। वो बात अलग हैं कि उसका बाकी शरीर उसका कहा न माने।

''हमारी अकेली औलाद है यह। मैं और मेरी बीवी मिलकर ही कैंटीन चलाते हैं। साहब को दिखाने आए थेबच्ची को। हमारे हालात भी सही न थे। साहब ने हमें ही दे दिया कैंटीन चलाने को।

यूँ तो टेंडर छुटता है इस कैंटीन का। देखो कब तक है यहाँ हम। वैसे सब समझती है मेरी बेटी। लड़की मुस्कुरा रही थी हमें देखकर। रसोई में मोटा सा सिंदूर और बड़ी सी बिंदी लगाए वह महिला काम में लगी हुई थी, बेशक उसकी एक निगाह लड़की पर थी। मुँह से टपकती लार साफ करने को वह लड़की को बार-बार बोलती रहती थी और लड़की गले में बंधे हुए नैपकिन से बामुश्किल तमाम जितना लार को साफ कर सकती थी, करती थी।

मैंने खाना आधा ही छोड़ा पैसे दिए और वहाँ से निकल गई। मुझे उबकाई आने को हो रही थी वहाँ। पर क्यों, यह नहीं मालूम। हाँ खाने में, रसोई की सफाई में कोई कमी नहीं थी इतना मालूम था।

धीरे-धीरे मैं पेड़ के नीचे से उसी टिकट विंडो पर पहुँच गई। वह बुढ़िया अभी भी वैसे ही सामने एक टक देखते हुए बेंच पर बैठी थी, और उसके साथ का लड़का भी वैसे ही उँगलियों को आड़ी-तिरछी कर के दबा दबा कर खेल रहा था। मेरा मन कुछ अजीब से माहौल से भाग जाने का हो रहा था।

मार्च की धूप जानलेवा तो नहीं थी पर अच्छी खासी दुपहरी भरी हुई थी और पूरा माहौल बोझिल हो रखा था। कोई इक्का-दुक्का इंसान आता-जाता दिख भी रहा था तो लगता था इंसान नहीं रोबोट है। भावहीन चेहरे, वही सीधी सामने देखती निगाहें। सन्नाटा साँय साँय कर रहा था मेरे कानों में। हर आवाज़ बहुत दूर से,बहुत हल्की सी आती प्रतीत हो रही थी। मेरा मन हुआ मैं यहाँ से अभी भाग जाऊँ। नहीं बनवाना मुझे सर्टिफिकेट।

बुढ़िया के बहुत करीब आने पर भी वह हमें नहीं देख रही थी। हम उसकी नज़रों के दायरे में थे तो भी नहीं। बुढ़िया बिल्कुल भूतिया से तरीके से किसी अंधे सी एकटक सामने देख रही थी। आस-पास कोई नही था।

कहीं यह भूत तो नहीं ? पियॉन जब इसके पास से गुज़रा था तो उसने भी ऐसे देखा हो,मुझे याद नही पड़ता।

आसपास कोई नही था। मैं डर गई, और बहुत डर गई। तेज़ी से उसके सामने से मिट्ठू का हाथ पकड़े निकली। मिट्ठू ने एकदम हाथ झटककर मुझे रोका।

बुढ़िया मिट्ठू का दूसरा हाथ पकड़े हुए थी।

मैंने ज़ोर से झटककर उसका हाथ छुड़ाया।

पहली बार बुढ़िया ने मेरी ओर देखा और बोली, ''अभी खिड़की खुलने में टाइम है। यहाँ बैठ जाओ बहू जी।''

भूत नहीं है, बोलती है, मैंने छुआ है हाथ भी इसका, यह भूत नहीं है, मैंने खुद को आश्वास्त किया। बगल वाले कमरे का दरवाज़ा बंद था। और बुढ़िया भूत नहीं यह आश्वासन मुझे मिल चुका था।

मैं उस लड़के की बगल में मिट्ठू को गोद में लेकर बैठ गई। बुढ़िया ने और कोई दिलचस्पी मुझ में या मिट्ठू में नहीं दिखाई।

बुढ़िया सुंदर रही होगी किसी वक़्त। गोरी थी, मोटी आँखें थी। ललाट पर कुमकुम की लाल बिंदी यह बड़ी सी। पर सिंदूर ऑरेंज कलर का था, वही पचास ग्राम कम से कम। पूरे माथे और सिर के सामने के बीच के हिस्से में माँग के चारों तरफ फैलकर लसपसा सा रहा था। मैंने ही बुढ़िया से बात करने को बच्चे की तरफ इशारा करके पूछा,''यह आपका .....?''

''पोता रहा हमार बहू जी इ। माँ -बाप तो है नहीं। खत्म हो गए दोनों। इकलौता बेटा रहा हमार, इसका बाप। मोटरसाइकिल से एक्सीडेंट में दोनों मरद वीर खत्म हो गए। एक साथे''

यह ''एक साथ'' बुढ़िया ने कुछ थम कर, कुछ धीमे से, दूर अनंत मे देखते हुए बोला जैसे।

उसी मोटरसाइकिल पर दूध बेचत रहा हमार बिटवा। बुढ़िया चुप हो गई। पर यह सब उसने ऐसे कह दिया जैसे रोज़ का काम हो ये बोलना उसका। ना कोई भावना, ना दुख, ना मेरी नज़रों में सहानुभूति खोजी।

दर्द ने इसे ऐसा पत्थर कर दिया था या इस बच्चे की तीमारदारी का बोझ है ऐसे बता रही थी जैसे मोटरसाइकिल गिरी और दूध बिखर गया बस इतनी खबर हो। याकी माँ को फिर कभी दिन ना चढ़े। यही है उनका भी एक।

किसी से कहीओ मती बहू जी हमारा पोता पढ़े-लिखे हैं जमके। स्कूल जाबे है। या के बाबा भी खूब पढ़ावे या कू। स्कूल से आते ही नीम नीचे चारपाई लगा कर बैठ जावे वा तो। जे अपने सबरे काम खुद ही करे हैं। बोले थोड़ा कमी है, पर बोलना जाने है। यूँ तो याह को बाप भी कम ही बोला करी था। जै कोई ऐब थोड़े हुआ।

कहकर बुढ़िया ने एक बार आकाश को

देखा और पल्लू की गाँठ से तंबाकू निकाल निचले होंठ और दाँतों के बीच रख लिया। मैंने लड़के को देखा वह आड़ी-तिरछी कर उँगलियाँ चटकाने के अलावा नॉर्मल ही लग रहा था हावभाव से भी। जब सब कर लेता है, पढ़ता है, तो बुढ़िया मुझे क्यों कह रही है किसी को ना बताने को।

यह तो अच्छी बात है। मैं तो किसी को क्यों हीं बताती। तभी विंडो के खुलने की आवाज़ आई। मैंने उठकर अपना फॉर्म दिया तो बुढ़िया ने झपटकर अपना फॉर्म आगे कर दिया। तीन रुपये की रसीद ले वह उसी लड़के-लड़कियों वाले कमरे में चली गई अपने पोते को वही बेंच पर बैठा छोड़। जाते हुए बोली के हिलिए मति यहाँ से।

जब मैं अपनी रसीद ले कर कमरे में गई तो सामने मेज़ के पीछे बैठी लड़की से बुढ़िया कह रही थी, ''रे बीबी चल पाता तो हम यहाँ कहाँ आते, मारे-मारे फिरने को। बाहर बैठा है नसीब का मारा। तुम वही चल कर देख लेओ। हाँ हाँ देख लो अपनी आँखों से हम कोन मन करी। सुस्त भूत जैसी बुढ़िया में अब चंडी जैसी फुर्ती थी।

और वह झूठ पर झूठ बोले चली जा रही थी। जो भी वह लड़की उसके पोते के बारे में पूछ रही थी, बुढ़िया सब बातों के लिए मना कर रही थी कि नहीं यह भी नहीं करता, यह भी नहीं करता। मैं एक टक बुढ़िया को देखे जा रही थी। अभी बाहर तो कह रही थी,'' यह भी कर लेता है, यह भी कर लेता है। और यहाँ कह रही है यह भी नहीं करता, यह भी नहीं करता। बुढ़िया में कुछ तो कमी थी जो मैं पकड़ नहीं पा रही थी और जो उसे इंसानों से अलग कर रही थी। मिट्ठू अपनी ठुमक-ठुमक चाल से चलकर बाकी के लड़कों के पास जाकर दोस्ती कर रही थी। बुढ़िया लड़की को पोता दिखा कर ले आई थी।

''माताजी पैर तो नॉर्मल हैं बच्चे के।''

''अरे बिटिया नॉर्मल दिखने भर को है सत एकदम नाही पैरों में।''

''वह चलता होता तो सबसे ज़्यादा खुशी हमें ही होती मानोगे नी मानोगे।''

''हाँ माताजी।''

''चल ही तो नहीं पात बिचारा बिन माँ-बाप का। नसीब ही खराब रहा बिटिया। लड़की अब बुढ़िया की और सुनने में रुचि नहीं ले रही थी वह उसके फार्म पर लिखने में जुटी थी।

''लो माताजी ऊपर चले जाओ। बच्चे को लेकर जाना। डॉक्टर साहब के रूम के बाहर वेट करना। उनका साइन हो गया तो बन गया आपका सर्टिफिकेट।

फ़ोटो लगा देना बच्चे का। बच्चे को देख कर फ़ोटो आज खुद ही वेरीफाई कर देंगे सर। अच्छा है आज आए हो आप एक दिन में सब काम हो जाएगा आपका।

बुढ़िया ने फॉर्म लेते हुए लड़की से पूछा- ''वह बिटिया तीसरी मंजिल से नीचे हुई ना गिनती मारे छोरा की।''

''हाँ जी पिचहत्तर से कम ही है।''

''बस बस यही जानना चाह रही थी।'' बोल कर बुढ़िया कमरे से बाहर चली गई।

यस मैम आप आए प्लीज़, प्लीज़!! मैं सरकारी दफ्तर में हूँ अपने देश के और यह प्लीज़ बोल रही है!! थोड़ी देर मिट्ठू से बातें करने की कोशिश की लड़की ने और उसकी बातों का जो रिस्पॉन्स मिट्ठू दे रही थी उस पर वह हाऊ क्यूट, सो क्यूट, ओ माय गॉड, शी इज़ सच अ ब्यूटीफुल डॉल, वेरी प्रीटी।

मैंम यह अपने डेली नीड्स कार्य खुद कर लेती है? जैसे ब्रश कर लेती है या नहीं? टॉयलेट ट्रेंड है या नही? मैं बताए जा रही थी कि हाँ ये भी कर लेती है वो भी। अब तो ये बताने लगी है शुशु भी। मैं खुशी में बताए जा रही थी जैसे ओलंपिक के लिए क्वालीफाई कर लेगी मिट्ठू आज ही। चल लेती है मैम? हाँ हाँ अठारह महीने की थी तभी से चलना स्टार्ट कर दिया था इस ने। अभी बैलेंस थोड़ा कम है बसे पंद्रह मिनट तक वह सवाल कर रही थी और मैं जवाब दे रही थी। मैम लैंग्वेज, अभी कितने वर्ड्स है इसकी वोकेलब्यूरी में?

सेवेंटी होंगे? लड़की ने गर्दन उठा कर देखा। मैंने बोला फिफ्टी तो होंगे। फिफ्टी तो होंगे। फिफ्टी ओके। उसने ये भी फार्म पर लिख लिया। वैसे थर्टी वर्ड्स भी नहीं थे मिट्ठू के पासे

मैम ये फाइव इयर्स से कम है ना, तो इसका फिज़िकल एग्ज़ामिनेशन यही होगा। अब आप इधर ले जाइए..... उसने पर्दे की तरफ इशारा किया। मैं उठ कर पर्दे की तरफ़ चली तो वो बोली,''मैम आपने एड्रेस तो लिखा नहीं। बताइए प्लीज़, फिर प्लीज!!

मैंने उसे बताया तो बोली वसुंधरा गाजियाबाद वाला या दिल्ली वाला वसुंधरा मैम? गाजियाबाद, गाजियाबाद वाला।'' शिखा, लड़की ने आवाज़ लगाई तो पर्दे के पीछे से सिर्फ गर्दन निकालकर शिखा बोली, ''यस'' मैम तेरी ही प्लेस से हैं। मैं इंदिरापुरम में रहती हूँ, आप मैम? इंदिरापुरम रहती हैं आप भी? ''अरे वसुंधरा'' पहले वाली लड़की ने तुरंत खुद उत्तर दे दिया।

''ओ अच्छा पास ही तो है मैम।''

मैंने भी खुशी में कहा यस प्रिटी क्लोज़। मिट्ठू की जाँच कर रही थी पर्दे के पीछे शिखा और मुझसे गप्पे लगा रही थी।

''मैम मैं वही इंदिरापुरम में रहती हूँ, शाम में एक क्लीनिक पर बैठती हूँ, एक स्पीच थैरेपिस्ट है वहाँ मेरा दोस्त। हम दोनों ही शाम को बैठते हैं वहाँ। बैठते क्या मतलब क्लीनिक उसका है मैम मैं तो बस चली जाती हूँ,अभी इंटर्न हूँ ना यहाँ। हम सब इंटरन हैं। और डॉक्टर ?

''अच्छा सर, अभी ऊपर गए हुए हैं किसी काम से।''

मैं चुप रही। देख रही थी वह काम सुबह से ऊपर ही चल रहा है डॉक्टर का। यहाँ तो नहीं दिखा कोई डॉक्टर एक बार भी।

''मैम यह मेरा कार्ड है। आपको इसकी स्पीच थेरेपी या और ओ टी (ऑक्यूपेशनल थेरेपी) पी टी (फिजियोथैरेपी) करानी हो। मैं ही करती हूँ मैम, अभी नीड है इसे स्पीच एंड और ओ टी पी टी की।''

''आई मस्ट से शी इज़ वेरी प्रिटी एंड एक्टिव, बहुत जल्दी पिकअप कर लेगी। मैंने मन ही मन सोचा फार्म दो जल्दी। क्यों प्रिटी लग रही है मैं समझ रही हूँ। थोड़ा और बिजनेस बढ़े तुम्हारे इवनिंग क्लिनिक का।

''पर है तो मिट्ठू अडोरेबल।''

''मैम अभी आई चेक होंगे या आप ही बता दीजिए क्या नंबर है।''

''माइनस सिक्सटीन लेफ्ट आइ एंड माइनस सेवेंटिन राइट।''

''ओ माय गॉड, बहुत ज़्यादा है। मैंने बस 'हुँ' कहा। फार्म हाथ में ले मिट्ठू को गोद में लेकर मैं रैंप पर चढ़ रही थी ऊपर जाने के लिए। मैंने मेन गेट से सूट सलवार पहने कंधे पर पर्स टाँगे और खुद से भी लंबे

और हट्टे-कट्टे लड़के को कमर पर लादे एक औरत को अंदर घुसते देखा। उसकी नज़र मुझ पर पड़ी, वह रुकी, हल्का सा मुस्कुराई कमर झुकाए-झुकाए। और उसी कमरे की ओर चल दी जिससे मैं आ रही थी।

मैं खड़ी ही रह गई, देखती ही रह गई, गर्दन मोड़े उसे देखते -देखते मैं धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रही थी। सामने से कोई मुझसे टकराया और मैं उसी का सहारा लेकर सँभली। शुक्र है गिरी नहीं। गिर जाती तो मिट्ठू को बहुत चोट लगती। ''बहु जी गिर जाती आप'' आवाज़ आई तो मैंने ऊपर देखा। वह चेहरा और उस पर पसीने से बह आया वह ऑरेंज सिंदूर, मुझे सब धुँधला दिख रहा था। सब साँवला, बस वह सिंदूर का धब्बा बड़ा होता जा रहा था बड़ा और बड़ा, मेरे भी चारों तरफ ऑरेंज रंग, ऑरेंज रंग का घेरा से बनता जा रहा था।

''बहूजी पानी लोगी?'' मैंने देखा बुढ़िया मुझे दीवार से सटा कर पकड़े खड़ी थी और कुछ बोल रही थी। उसका सिंदूर पूरा उसके चेहरे पर फैल गया था फिर गर्दन तक। याद नहीं मैं कब ऊपर की मंज़िल के बरामदे में पहुँची।

जिस कमरे की तरफ इशारा किया पियॉन ने, मैं चली गई उसमें। वहाँ बैठी महिला ने फार्म लिया फटाफट, इधर-उधर पलटा, मेरी तरफ देखा भी नहीं। बोली ''यह सब क्या है ? आई साइट लिखा है हमने तो चेक नहीं किया, और आज होगा भी नहीं, अजीब जबर्दस्ती है सब। एक दिन में कैसे हो जाएगा। यह नहीं हो सकता। वह पियॉन की ओर देखकर बोली। ''क्यों महेंद्र जी, आप भी यह क्या ले आते हैं आपको तो सब मालूम है।''

''अब क्या कहें मैम, देख लीजिए, कुछ कर दीजिए, वह मेज़ के पास आता हुआ बोला। मैं अब निश्चित हुई कि हाँ एक सरकारी दफ्तर में हूँ मैं।

मैं पूरी तरह रुआँसी हो गई थी, आँसू अब निकले बस निकले वाला हाल था। मुझे नहीं आदत कि मिट्ठू के लिए ऐसा कुछ भी सुनने की।

''महेंद्र जी देख रहें हैं आप। बच्ची के ग्लासेस, हाई नंबर है बहुते ये कहकर उसने मिट्ठू के क्लासेस उतारे, मिट्ठू ने उतनी ही तेज़ी से ग्लासेज़ वापस छीन लिए। मैडम चिढ़ कर रह गई। और मिट्ठू की माँ बलराज साहनी बनी सामने खड़ी थी। वह भी दो बीघा ज़मीन का बलराज साहनी। मिट्ठू ने चश्मा वापस पहना और खड़े-खड़े ही उस औरत को बोला,''नो, मेया हे।'' यानि मेरा है। माँ भले न बोले अपनी पैरवी करना मिट्ठू को आता है। हमें नहीं दिखाई देता चश्मे के बिना तो हम क्यूँ छीनने देंगे आपको हमारा चश्मा। सिंपल फंडा। मिठ्ठू के लिए लाइफ में कोई कॉम्प्लिकेशंज़ थी ही नहीं।

जो भी हो मिट्ठू माहौल के भारीपन को समझ गई थी और आकर मेरे पैरों से चिपक गई। मैं उसके सर को सहलाने लगी। ''डॉक्टर साहब देख लिजिए, मैम बेचारी सुबह से भटक रही हैं यहाँ। मैं देख रहा हूँ जब से तो।'' महेंद्र बोला।

मुझे मेरा दर्द याद दिला कर रोने को मजबूर किया जा रहा था। बेचारगी की अवस्था में आँखों में आँसू आ जाते हैं। और बेचारगी का बखान कोई और करें तो और ज़्यादा रोना आता है। चाहे बेचारगी इतनी ना हो पर कोई बखान करेगा तो रोएँगे।

महेंद्र फिर बोला,''ऊपर से तिवारी भी जानते-बूझते पाँच मिनट पहले निकल गया था खिड़की बंद कर के।''

''हाँ तिवारी का राज है भई, तुम क्या जानते नहीं, उसके सर पर कौन है?'' मैडम कहती जा रही थी और साइन करती जा रही थीं। सही जगह पर तीर मारा था महेंद्र ने तिवारी के नाम का। फॉर्म मेरी तरफ बढ़ा कर मोहतरमा ने दोनों हाथों की उँगलियाँ एक दूसरे में फँसाई और उन पर ठुड्डी रख मेरी तरफ देखने लगी।

मैंने जो थैंक्यू बोला वह तो शायद गले में ही कहीं अटक कर रह गया। मैं वहाँ से निकली तो महेंद्र ने मुझे मेन ऑफिस के सामने रुकने को बोला। मुझे वेट करने को कह कर वह फार्म लेकर अंदर चला गया, वापस आया। और बेंच की तरफ इशारा कर बोला, बैठ जाइए वेट करना होगा। हमेशा की तरह मेरे बाए हाथ के कंधे में दर्द शुरू हो गया था और बढ़ता ही जा रहा था। हर जगह मिट्ठू को गोद में उठा कर जाने से मुझे अब यह प्रॉब्लम रहने लगी थी। थोड़ी देर बाद महेंद्र को अंदर बुलाया गया वह मेरा फॉर्म लेकर बाहर आया। बोला कोई काम नहीं आता इन्हें। मानते ही नहीं हमारी तो, हम यहाँ कितने साल से हैं। क्या होता है, चार अक्षर पढ़ने से कोई डॉक्टर थोड़ी बन जानता है। हम रह रहे हैं यहाँ सालों से। हमें पता है। मैंम ये आई क्यू लेवल और लिखवा कर लाओ उनसे। और दोबारा साइन भी करा लीजिएगा। फिजियोथैरेपिस्ट के, करेक्शन पर। बच्चे को यहीं रहने दो मेरे पास, मैं हूँ यहाँ। कैसे छोड़ दूँ इसके पास बेटी को यह लेकर भाग गया तो?

''कोई बात नहीं मैं लाती हूँ करा कर।''

आप परेशान हो रही है ना इतने घंटों से तो मैं तो इसलिए कह रहा हूँ।

''थैंक्यू भैया तुमने वैसे ही कितनी मदद की है।''

''हम तो ऐसा ही हूँ।''

इंसान इंसान का दुख समझे वह इंसान बाकी तो सब भरा जहाने

ये क्या था। उसकी अपनी बनाई कोई कहावत लग रही थी।

ये टिप के लालच में मदद कर रहा है या है ही ऐसे स्वभाव का। जो भी हो पर ये बात तो इसने सही कही सरकारी विभाग के पियॉन को अफसरों से ज़्यादा ज्ञान होता है दफ़्तर की कार्यप्रणाली का।

मैं नीचे उतर रही थी तो इस बार वह बुढ़िया मेन गेट के बाहर अपने पोते को कमर से उतार रही थी। लड़का बड़े आराम से खड़ा हो गया। उस लड़की को अपने पोते के पैरों में जो सत बुढ़िया कह रही थी कि नहीं है वह अब अचानक आ गया।

वह अपने पोते की उँगली पकड़कर जा रही थी, मुझे नीचे आते देख पोते को वहीं खड़ा छोड़ वह मेरी तरफ आने लगी॥ क्यों आ रही है, मुझे उसे देखकर फिर मितली सी आने लगी। उसका ऑरेंज कलर का सिंदूर उसके पूरे चेहरे और गर्दन तक फैला था।

मेरे सामने आकर बोलने लगी, ''यह तीसरी मंज़िल वाला कार्ड बन जाता है ना बहू जी, तो बहुत सुविधा हो जाती है। ट्रेन में भी ज़्यादा रुपए की छूट होती है, और एक इसके बाबा की या मेरी टिकट में भी रियायत मिलती है। और सब जगह भी फायदा ज़्यादा है तो मैं तो यही बनवाती हूँ। कई सालों से बना रहे हैं। नया कराने को आई थी आज।

मुझे उसकी शक़्ल कभी इतनी बड़ी

दिखती कभी छोटी। बुढ़िया पहली बार अजीब सी मुस्कुराई मुझे देखकर। फिर वह हाथ पकड़कर जा रही थी उस लड़के का और मेरा हाथ हवा में लहरा रहा था। यह क्या है यह कैसी दुनिया है, मैं क्या कर रही हूँ यहाँ। यह सब ऑफिस वाले जो भी लोग हैं क्या यह समझ पा रहे हैं कि मेरे साथ क्या हो रहा है? अभी-अभी भी स्टाफ के कई लोग बुढ़िया के पास से निकल कर गए। पर किसी ने भी इसे और इसके इस ऑरेंज कलर में नहाए चेहरे को नहीं देखा, हद है।

क्या इन्हें ये बुढ़िया नहीं दिखाई देती ? या जैसी मुझे ऑरेंज कलर में भीगी दिखती है वैसी नहीं दिखती। ऊपर से लेकर नीचे तक ऑरेंज कलर के सिंदूर से लिपि पुती बुढ़िया कभी कहीं से कभी कहीं से निकल आती है। इन लोगों को कुछ भी नहीं मालूम पड़ रहा ? यह सब मेरे साथ हो रहा है ? या यहाँ रोज़ होता है?

और इन लोगों को आदत पड़ गई है? ये भी हो सकता है कि यह बुढ़िया यहाँ किसी पेड़ पर रहने वाला भूत होगी ज़रूर। और मुझे दिख रही है बसे मीठा खाकर आई हूँ ना घर से इसलिए।

मैं वापस उसी कमरे में घुसी तो कुर्सी पर वही लड़का बैठा था जिसे औरत पीठ पर लाद कर लाई थी। वह उसके पास खड़े होकर उसके दोनों हाथ मजबूती से थामे फॉर्म भरने वाली लड़की को उसके सवालों के जवाब दे रही थी, और लड़का अपने हाथों की आज़ादी की कोशिशें कर रहा था साथ में मोटी आवाज़ में चिल्ला भी रहा था।

पोटी बेड पर करता है? बता कर करता है? आप करवाती हो?क्या निकल जाती है आई मीन बिस्तर खराब करता है?

मुझे फिर मितली आ रही थी और ज़ोर से आ रही थी। मैंने मिट्ठू को गोद में सँभाला और जल्दी से बताया उस लड़की को कि आई क्यू मेंशन नहीं किया। फिजियो के साइन भी दोबारा होंगे।

लड़की मेरी तरफ देखे बिना ही चिल्लाई, ''ओहो प्रशांत, तुमने आई क्यों नहीं लिखा?''

''अरे यार मुझे कहती तो लिखता।''

''बस हो गया तेरा? यार सारे माइल स्टोन्स नोट किए हुए हैं मैंने, तू उन्हें कैलक्यूलेट भी नहीं कर सकता?''

उस औरत के साथ आया वह लड़का पर्दे के पीछे ले जाया जा चुका था। अब फिजियो(फिजियोथेरेपिस्ट) वहाँ ही बिज़ी थी। मुझे वेट करना था उसके फ्री होने का। वह लड़का बहुत ज़ोर-ज़ोर की आवाज़ें कर रहा था चेकअप कराने में। मिट्ठू तेज़ आवाज़ों से डरती है। वह गोद में मेरे कंधे पर सर रख मुझसे चिपक गई थी। फिर उस तरफ देखती फिर मेरे कंधे पर सर रख कर आँखें ज़ोर से बंद कर लेती थी। तभी उस लड़के ने अपनी माँ के हाथ में काट लिया। माँ ने किसी दर्द का इज़हार नहीं किया। शिकन तक नहीं आई माथे पर। दर्द की इतनी आदत हो गई है इसे? लड़की ने उसे उसका फार्म दिया और कहा ऊपर चली जाइए। वह लेडी कुछ असमंजस में हो गई फिर दरवाज़े तक आकर रैंप को देखा फिर लड़के के पास चली गई।

मेरी नज़र दीवार पर लगे एक चार्ट पर पड़ी तो मैं उसकी तरफ मुड़ गई, मिठ्ठू को गोद में लिए हुए। चार्ट में आई क्यू लेवल के अनुसार डिसेबल पर्सन्स को मिलने वाली सुविधाओं की लिस्ट थी। जैसे 25 प्रतिशत या उस से कम आई क्यू मेन्टल रिटार्डेशन में गिना जाएगा। जो कि कम्पलीट डिसेबिलिटी मानी जाती है। कम्पलीट डिसएबिलिटी यानि कि सबसे ज़्यादा सुविधाएँ। जैसे तरह-तरह के किरायों मे ज़्यादा रियायत,और ज़रुरत के मुताबिक़ शारीरिक विकलांगता के लिए उपकरण मुहैया कराना। आई क्यू का निर्धारण साइकोलोजिस्ट करता है उन आँकड़ो के आधार पर जो वो, ऑक्यूपेशनल थेरेपिस्ट और फिजियोथेरेपिस्ट के साथ मिल कर निर्धारित करता है कि विकलांग व्यक्ति क्या-क्या कार्य कर सकता है और क्या-क्या नहीं। जैसे अपनी दैनिक चर्या से जुड़े कार्य नहाना ब्रश करना खाना खाना आदि।

फिर 50 प्रतिशत लिखा था और उसके सामने उस में मिलने वाली सुविधाएँ। और 75 प्रतिशत व उसके सामने उस में मिलने वाली सुविधाएँ।

फिजियो ने फार्म पर कुछ लिखा, साइन किए,और फॉर्म मुझे मिल गया।

मिट्ठू का आई क्यू 72 था। बॉर्डर लाइन रिटार्डेशन यह निश्चित ही मेरे लिए खुशी की बात थी। हाँ सुविधाएँ नाम मात्र की थी। अपने बच्चे के स्वस्थ होने से बड़ी कोई सुविधा नही।

पर यह क्या पॉलिसी हुई सरकार की। डिसेएबल है तो डिसेएबल हैं। मेंटली भी और फिजिकली भी। जो सुविधाएँ देनी है सबको दो।

यहाँ भी परसेंटेज देख रहे हो हद है।

भगवान् ने तो मारा ही है इनको, तुम भी मारो। कितने परसेंट लोग होंगे चलो बताओ? कितने पर्सेंट लोग होंगे इंडिया जो मेंटली या फिजिकली चैलेंज होंगे। चलो बताओ? कितना पैसा लग जाएगा इन सबको ज़रूरी सुख सुविधाएँ देने में? कितनी जगहों पर,चीज़ों पर फालतू में पैसा बहाया जाता है देश का। मगर यहाँ नहीं देंगे, इन्हें नहीं देंगे। परसेंटेज पूछेंगे, कि कितना घाटा हुआ तुम्हारा? भगवान् ने क्या-क्या रख लिया तुम्हारा? चलो कुछ हम देंगे। स्कूल-कॉलेजों में तो बच्चों की परसेंटेज तुमने लगा ही रखी है। यहाँ भी तुम्हें पर्सेंटेज ही चाहिए। अरे यहाँ तो ऊपर वाले ने पहले ही डंडी मार रखी है। आप और क्या चाहते हो। हमारा माल तो ऊपर वाले ने ही कम करके तोला है। जो तोले-तोले मासे-मासे का फर्क रखता है।

मैं वहाँ से चलने को मुड़ी तो वह लेडी अपने बेटे को गोद में लेकर जाने की कोशिश कर रही थी। सब इंटरन फिर खाली थे, और खाली पड़ी उनकी बेंचो पर बैठकर गप्पे मार रहे थे।

मैंने उस औरत से बोला,''आप जाइए बच्चे के पास में रुकती हूँ।''

लेडी हँस कर बोली, ''अरे नहीं यह आपको परेशान कर देगा।''

मैंने कहा,''कुछ नहीं करेगा जाइए आप करा लाईए फार्म पर साइने''

मैंने पास पड़ी कुर्सी पर मिट्ठू को बैठाया और उसके हाथ में उसका सिपर थमा दिया।

अब वह कम डिस्ट्रैक्ट हो रही थी उस लड़के की आवाज़ों से।

बहुत खुश हो गई वह लेडी और झट से अपना दुपट्टा उतार लड़के को कुर्सी से बाँध दिया।

मुझे बोली, ''बस आप इसका इतना ख़्याल रखिएगा कि कुर्सी से न गिरे। और हँसना मत इसके साथ, डाँट कर रखना। मैं

दौड़कर जाती हूँ।''

मैं लड़के के पास खड़ी हो गई उसने कुर्सी से उतरने की कोशिश शुरू कर दी, मैंने ज़ोर से 'नो' बोला तो वो थोड़ा चुप हो गया।

फिर अपने ही हाथ पर काटने लगा। मैंने उसके दोनों हाथ पकड़ लिए उसने अपने दोनों हाथों के पंजों से मेरा एक हाथ पकड़ लिया और फिर सहलाने लगा हाथ को। मैंने घूरकर उसकी तरफ देखा। उसने तिरछी गर्दन से मुस्करा कर मुझे देखा। उसका छूने का तरीका एक बच्चे का बिल्कुल नहीं था.... बिल्कुल भी नहीं।

उसकी उम्र क्या होगी, मैं सोचने लगी। 16 या 17 का तो होगा। तभी वह लेडी आ गई और दौड़कर उसने मेरे हाथ छुड़ाए।

''इसने आप को छुआ होगा ना मैम क्यों आई आप इसके पास।''

मैंने कहा, ''कोई बात नहीं।''

वह मेरी आँखों में देखकर बोली,''मैं जानती हूँ मैम यह क्या करता है,और क्या कर सकता है।''

मैं मिट्ठू को गोद में ले कर चल दी। आई क्यू के चार्ट को पढ़ कर अब मुझे बुढ़िया की तीसरी मंज़िल, शम्मी कपूर की तीसरी मंज़िल नहीं थी यह समझ आ गया था।

पर मैं खुश थी बॉर्डर लाइन रिपोर्ट से मिट्ठू की। और मेहनत करूँगी और अच्छा हो जाएगा इसका रिज़ल्ट।

मैं ऊपर पहुँची, डॉक्टर ने रूम में अंदर बुलाया।

वॉल टू वॉल कार्पेट लगा एसी रूम बड़ा सा। सुंदर फर्नीचर, पर्दे लगे थे।

एक और दंपत्ति एक तरफ बैठे थे। डॉक्टर ने मिट्ठू का सर्टिफिकेट अपने सामने रखा और मिट्ठू को देख कर मुस्कराए। फिर सर्टिफिकेट उठाकर मिट्ठू को दिखाया जिसमें मिट्ठू की फोटो थी।

''इस दिस यू ? बोलो इस दिस यू?''

मिट्ठू तो चल दी जी ठुमक-ठुमक अपनी पिक देखने।

डॉक्टर ने पूछा,''इस दिस यू ?''

''मय, मय इतु।'' मिट्ठू जितना बोल सकती थी उतना बोल कर उसने अपने मिट्ठू होने की हामी भरी।

डॉक्टर ने मेरी तरफ देखा मैंने बोला, ''घर में उसे मिट्ठू कहते है वैसे चाँदनी।''

''मिट्ठू, आप मिठू हो यस यू आर डेफिनेटली माय चाइल्ड यू आर रियली स्वीट। यू हैव टू ब्यूटीफुल नेम्स। योर मदर गिफ्टस यू सो ब्यूटीफुल नेम्स।''

डॉक्टर मुस्कुराते हुए बोले,''इतने प्यारे नाम जेंट्स तो सोच ही नहीं सकते ना, दिस इज ओनली मदर्स...'' मैं सिर्फ मुस्करा दी। बात और लंबी खिंचती ये बताने से कि मिट्ठू नाम इसके नाना ने रखा है। और मेरे लिए अब खड़े रहना भी मुश्किल हो रहा था।

अब डॉक्टर ने झट से साइन किए स्टैंप लगाया और सर्टिफिकेट मिट्ठू की तरफ बढ़ा दिया। तो मैंने आगे बढ़ सर्टिफिकेट ले लिया। मिट्ठू तो जो करती उसका मुझे मालूम था।

''वेयर डू यू लिव गाजियाबाद?''

''यस''

डॉक्टर बोला,''आर यू कमिंग सट्रेट फ्रॉम देअर।''

''जी।''

''ओके, ओके।''

मैंने थेंक्स बोला और मिट्ठू को गोद में लेकर रूम से बाहर निकल गई।

इस वक्त मेरी हालत बिल्कुल अच्छी नहीं थी। थकान और मितली ने मुझे निढ़ाल कर दिया था। वह लड़का, बुढ़िया, वो लेडी कमर पर लड़के को उठाए सब कुछ मेरे दिमाग में फ्लैश कार्ड की तरह आ जा रहा था।

मैं नीचे आ रही थी तो रैम्प पर फिर से वो लेडी मिली, ऊपर आ रही थी।

बोली,''फिर से सनम को एग्ज़ामन करने को कह रहे हैं। डॉक्टर से बात करने जा रही हूँ दीदी। निश्चित ही मैं उसकी दीदी नहीं थी फिर भी इग्नोर किया। और बोली,'' अरे तुम अपना नंबर तो दो क्या नाम है तुम्हारा ? जब से मैं इस्मत से नंबर लेना भूली हूँ, तब से सतर्क रहती हूँ। (इस्मत कहानी का जिक्र है ये) किसी का भी नंबर लेने में देर नहीं करती।

''नंबर ले लो दीदी, रानी हूँ मैं।'' मैंने उसकी तरफ देखा।

वो बोली,''बस नाम की रानी हूँ जी। सनम चल नहीं पाता न दीदी। बचपन से ही नहीं चल पाता इसके पापा इसके पीछे बहुत मेहनत करते थे। कहते थे, ये अपने आप को खुद सँभाल ले ऐसा तो बनाऊँगा इसे। अपने लायक तो करके छोड़ूँगा देखना एक दिन। फिर एक दिन वह भी खत्म हो गए। दौरा आ गया दिल का, काम पर ही ड्राइवर थे विदेश मंत्रालय में।'' मेरे मुँह से बस ''ओह'' निकला। ''उनके साहब लोग भले लोग हैं। बोले सरकारी नौकरी मिल जाएगी मुझे उनकी जगह। वो सब सहायता कर देंगे। मेरा एक भाई था मर गया। भाभी अपने चार बच्चे ही जाने कैसे पालती है। मेरा देवर आ कर नहीं झाँका कभी पहले ही। जब से ये पैदा हुआ। अब तो क्या आएगा। सो यहाँ सर्टिफिकेट बनवाने आई हूँ। उसे किसी हॉस्टल में छोड़ने के लिए चाहिए सर्टिफिकेट दीदी। ऐसे लोगों के आश्रय गृह हैं दिल्ली में कई।''

''इसे खुद से दूर करोगी?''

''क्या करूँ दीदी नौकरी पर जाऊँगी पूरा दिन, तो किसके पास रहेगा, नौकरी करनी है तो इसे छोड़ना ही पड़ेगा। वैसे मिलने जाया करुँगी। इसी के लिए तो कर रही हूँ ये सब।''

इतनी मजबूरियाँ एक ही ज़िन्दगी के साथ? जितना कुछ बुरा हो सकता है वह एक ही इंसान के साथ क्यों? एक वो बूढ़े बुढ़िया भी कब तक होंगे उस पोते के साथ रहेंगे? कौन पढ़ाएगा,पालेगा उसे, रखेगा ही कौन ? और ये रानी मर गई तो रानी का बेटा उम्र भर इंतजार ही करता रहेगा हॉस्टल में कि माँ आएगी। और जब रानी उससे मिलने कभी भी नहीं जा पाएगी तो वह कभी भी नहीं समझ पाएगा कि माँ क्यों नहीं आई। जितनी समझ है उसे, यह तो पता है कि उसकी माँ को ही करना होता है उसके लिए सब। खाना, पीना, उठाना, बिठाना उसे कोई दुख नहीं उसके लिए, उसका जीवन ऐसा ही है पहले दिन से ही। जब तुलना करने को कोई विकल्प ना हो तो अपनी परिस्थिति सहज स्वीकार्य होती हैं मनुष्य को। माँ नहीं आएगी तब उसे दुख होगा, ऐसा दुख जो शब्द भी नहीं होंगे उसके पास व्यक्त करने को। माँ नहीं आएगी तो वो कभी भी नहीं समझ पाएगा कि माँ क्यों नही आई। कितना बड़ा विश्वास टूट जाएगा उसका माँ पर से। विश्वास का टूटना पिछली बिताई हुई ज़िन्दगी को भी झूठ साबित कर देता है।

मेरे लिए वहाँ रुकना मुश्किल हो रहा था। मेरे पैर काँप रहे थे और घुटने जवाब दे

चुके थे। रोना फूट रहा था,पर गला पूरी तरह चॉक हो गया था। मैं बिना कुछ बोले नीच। उतर आई। मिट्टू पानी माँग रही थी, रानी ऊपर चली गई और मैं मेन गेट के पास उस कमरे की दो कुर्सियों में से एक पर बैठ गई जिसमें मेरे आने के वक़्त एक महिला फाईल लगा रही थी। मिट्टू को पानी दिया खुद भी पिया।

रानी नीचे उतरी मुझे देखकर मुस्कुरा दी।

मिट्टू के स्कूल में आते हैं बच्चे। गाड़ियों, कैब से उतरते ही जो नहीं चल पाते अटेंडेंट व्हीलचेयर पर उन्हें बैठाते हैं। और बैग,बोतल, निहायत खूबसूरत बैक बोतल होते हैं। उन्हें उनकी व्हीलचेयर के हैंडल पर टाँग कर उनकी व्हीलचेयर ठेलती हुई या हाथ पकड़ कर पर्सनल अटेंडेंट उन्हें गेट तक छोड़ती हैं। वहाँ से मुस्कुराती स्कूल की अटेंडेंट उन्हें स्कूल के अंदर ले के चल देती है। परफ्यूम उड़ाते बच्चे और माएँ। या तो मर्सिडीज नहीं तो कम से कम होंडा सीटी से उतरते पिता रैवेन को आँखों से हटाकर बाय बोलते हैं किस करते हैं और चल पड़ते हैं वापस।

रानी मुस्कुराई और मुझे देखते हुए ऊपर चली गई। मैंने देखा अचानक रानी की शक़्ल मौसमी चटर्जी के जैसी हो गई थी। असल में एक मूवी आई थी। 'हम कौन हैं' जिसमें डिंपल कपाड़िया अपने दो बच्चों के साथ एक फार्म हाउस के बड़े से घर में रहती है। पति कहीं बाहर गया है और बच्चे डिंपल के साथ कहीं घर में छुपे रहते हैं, क्योंकि वह रोशनी से डरते हैं। वह सारे पर्दे दिनभर बंद रखती और रात को निकल कर वह बच्चे खेलते थे। असल में डिंपल और उसके बच्चे भूत थे। डिंपल ने कभी बहुत पहले बच्चों को मार कर आत्महत्या कर ली थी। पर उसे इसका अफ़सोस इतना था कि वो मरने के बाद भी ये मानने को तैयार नहीं थी कि वे लोग मर चुके हैं। उस घर को खरीद लिया एक परिवार ने। वो आकर रहने लगे तो डिंपल उन्हें भूत समझती थी। रोज़ रात को मौसमी चटर्जी जो खुद भूत थी, दो और भूतों के साथ डिंपल का दरवाज़ा खटखटा कर समझाती थी उसे, की यहाँ से हमारे साथ चलो..... तुम भी हमारी तरह भूत हो इंसानों में नहीं रह सकती।

फिर एक दिन डिंपल रात को घर के बाहर आती है तो मौसमी चटर्जी उसे उसके और बच्चों के नाम की कब्रें घर के आँगन में दिखाती है। तब कहीं जाकर उसे अपने भूत होने का एहसास होता है। और वह अपने बच्चों को लेकर भूतों में शामिल हो जाती है। और मौसमी चटर्जी उसे रहस्यमयी मुस्कान के साथ देखती है। ठीक वैसे ही रानी मुझे देख कर मुस्कुरा रही थी।

और उसके माथे से ऑरेंज कलर का सिंदूर बह कर उसके चेहरे पर आने लगा था। यह कैसे सिंदूर लगा सकती है, वैसे भी विधवा है। अभी तो वहाँ कोई भी नहीं था यह फिर कैसे आ गई ? और रानी के पीछे वह बुढ़िया भी आकर खड़ी हो गई थी अपने पोते की उँगली पकड़े। और रानी अपनी पीठ पर अपने बेटे को लादे है पूरी की पूरी ऑरेंज कलर से नहाई हुई और वह बुढ़िया भी ऑरेंज कलर से नहाई हुई।

और मुझे लगा, ये मुझे भी इस ऑरेंज रंग में लपेटना चाहती हैं। रानी फिर मुस्कुरा रही थी। सिंदूर उसके चेहरे पर कीचड़ की तरह बह चल था। गर्दन पर और फिर नीचे,और नीचे,और नीचे। यह बच्चे जिसके यहाँ पैदा होते हैं वह तो उसी दिन मर जाता है। ऑरेंज कलर का भूत हो जाता है। और यह भूत फिर उम्र भर अपनी ही लाश कंधे पर उठाए घूमते रहते हैं। इनकी मुक्ति नहीं हो सकती जब तक की इनकी लाश का दाहसंस्कार ना हो जाए। इसलिए ये मजबूर होते हैं अपनी ही लाश उठाए फिरने के लिए। अपनी लाश के ब्रेन डेड होने का इंतज़ार कर रहे होते हैं; क्योंकि इंसानों की बस्ती में हुकूमत ने मौत सिद्ध होने का यही क्राइटेरिया बना रखा है। इन लोगों का मर कर भूत हो जाना भी मरना नहीं है। मरे हुए ज़िंदा को मरने तक यहाँ रोज़ मरना है।

मैं एक कदम पीछे हटी, मिट्टू को गोद में उठाया और बाहर भाग आई। फिर उस बड़े से दालान से निकल रोड पर आई, ऑटो लिया,ऑटो ने रफ्तार पकड़ी तो मेरी साँस में साँस आई। ऑटो की छत से कुछ पानी सा मेरे सर पर टपका मैंने ऊपर ऑटो को देखा तो कुछ नहीं था। मैंने हाथ से अपना गीला सर छुआ तो मेरा हाथ पूरा ऑरेंज कलर से सना हुआ था।

***

लघु कथा

जानवर

राजेन्द्र वामन काटदरे

पुत्र – ''पापा मैं बाहर खेलने कब जाऊँगा ?''

पिता – ''जब दंगे खत्म हो जाएँगे।''

पुत्र – ''पापा, दंगे क्या होते हैं ?''

पिता – ''बेटा दो जाती वालों के बड़े झगडे को दंगा कहते है।''

पुत्र – ''पापा जाती वाले मतलब ? मतलब, कौन करता है दंगे ?''

पिता – ''अब तुझे कैसे समझाऊँ। बस इतना समझ ले कि जब तक दंगे जारी हैं तुम खेलने बाहर नहीं जा सकते। बाहर ज़बरदस्त मार-काट मची हुई है।''

पुत्र – (कुछ सोचते हुए) ''मैं समझ गया, पापा, जैसे गली में जब साँड या कुत्ते लड़ते हैं तब हम उनके बीच नहीं जाते क्योंकि वो हमें मार सकते हैं या काट सकते हैं।''

''साँड – कुत्ते....'' पिता एकबारगी चौंक गया फिर गहरी साँस भर के बोला ''हाँ बेटा, आख़िर जानवरों की तरह लड़ने वालों को इंसान भी किस तरह कहूँ।''

***

संपर्क: 202, सी-3, स्वास्तिक पार्क, आज़ाद नगर, कोलशेत, ठाणे वेस्ट 400607
ईमेल: katdare_rajendra@hotmail.com
मोबाइल: 96992 69849

चोर

महेश शर्मा

कई बार जीवन में ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं जो आपको झकझोर देती हैं, आपके स्मृति पटल पर हमेशा के लिए अंकित हो जाती हैं, जीवन मूल्यों के बारे में आपको सोचने पर मजबूर कर देती हैं। अब प्रायवेट डिटेक्टिव का पेशा चुना है तो ऐसे अनेक अनुभवों से दो-चार होना ही पड़ेगा। कहीं किसी पत्नी को अपने पति के कारनामों की जानकारी चाहिए तो कहीं किसी पति को अपनी पत्नी के संपर्कों की पड़ताल ज़रूरी लगती है। कोई अपनी बेटी के लिए उचित वर की तलाश में किसी युवा को टटोलना चाहता है तो कोई अपनी कंपनी में विश्वस्त सहायक पाने की चाह में किसी की कुंडली निकलवाना चाहता है। जिस घटना का जिक्र मैं यहाँ करने जा रहा हूँ वह इन घटनाओं की तरह नहीं है, बल्कि कहना चाहिए कि वह अति सामान्य घटना है लेकिन वह आपको हतप्रभ ज़रूर कर देती है।

वह जाती हुई सर्दी के मौसम का सामान्य-सा एक रविवार था। ऑफ़िस से घर पहुँचते ही एकाएक टी टेबल पर रखे एक कार्ड पर नज़र पड़ी तो याद आया कि डीएसपी महेन्द्र सिंह ठाकुर के बेटे की शादी का आमंत्रण है। पेशेगत संबंधों का तकाजा था कि शादी में जाया जाए और फिर शहर के बेहतरीन गार्डन में आयोजन होने का मतलब यह कि 'क्लास जेन्ट्री' की मौजूदगी ! अपने संभावित क्लाइंट्स से मिलने का मौका छोड़ना समझदारी नहीं थी, इसलिए अपने असिस्टेंट राजेश को फ़ोन कर तैयार रहने को कहा और मैं भी फटाफट तैयार होने लगा। जैसा कि इन दिनों चलन है ठाकुर साहब ने वधू पक्ष को अपने शहर में ही बुलवा लिया था और दोनों ही पक्ष राजमार्ग पर स्थित शहर के सबसे मंहगे गार्डन में ठहरे थे। इसमें बने कमरों को देखकर कह सकते हैं कि गार्डन क्या अच्छा खासा थ्री स्टार होटल था। गार्डन के ही एक गेट से बारात निकलकर सर्विस रोड पर घूमकर गार्डन के दूसरे गेट पर पहुँचनी थी। डीजे और बैंड की तेज़ ध्वनि गूँज रही थी, युवक 'काला कौआ काट जाएगा' पर थिरक रहे थे तो युवतियों का समूह कुछ पीछे 'मेरा पिया घर आया ओ रामजी' की धुन पर मटक रहा था। परंपरागत ठाकुर परिवार की बारात जिसमें बुज़ुर्ग पर्याप्त रूप से यह ध्यान रख रहे थे कि दूल्हे के दोस्तों का समूह आगे डीजे पर अलग ही नाचता रहे और परिवार की महिलाएँ पीछे अलग बैंड पर अपनी खुशी का इज़हार करती रहें।

बारात गार्डन के गेट पर पहुँचने ही वाली थी कि एकाएक बारात के पिछले हिस्से में कुछ हलचल दिखाई दी। जासूसी के पेश। में होने के कारण पीछे झाँककर देखना लाज़िमी था। पता चला कि महिलाओं के समूह में एक पुरुष नाचने के लिए पहुँच गया, जिसे परिवार के एक बुज़ुर्ग खींचकर बाहर निकाल रहे थे। चूँकि वह मस्ती में झूम रहा था और बुज़ुर्ग से हाथ छुड़ाकर फिर समूह में घुसकर नाचना चाह रहा था तो झूमाझटकी-सा दृश्य उत्पन्न हो गया। चाहे वे बुज़ुर्ग थे, लेकिन थे तो ठाकुर, मजाल कि वह व्यक्ति अपना हाथ छुड़ा पाता। परिवार के अन्य पुरुष भी वहाँ पहुँच गए और पूछने लगे कि ये कौन है, किसके साथ है इत्यादि-इत्यादि। कहानी में ट्विस्ट तब आया जब कोई उस व्यक्ति को नहीं पहचान पाया।

संपर्क: 28, क्षपणक मार्ग, फ्रीगंज, उज्जैन
ईमेल: maheshsharma.ujn@gmail.com
मोबाइल: 9425195858

तुरंत ही मेरे भीतर का जासूस जाग उठा और राजेश को साथ लेकर मैं उस भीड़ में घुस गया। तब तक ठाकुर साहब के मातहत एक दारोगा उस व्यक्ति का हाथ पकड़कर उसे अपने कब्जे में ले चुके थे और अन्य मेहमानों को कह दिया गया था कि वे भीतर जाकर विवाह का आनन्द लें। दारोगा साहब उसे एक कोने में ले जाकर पूछताछ करने लगे। मैं भी राजेश के साथ उनके समीप पहुँच गया। उस अजनबी ने जोधपुरी सूट पहना हुआ था, कलाई में गोल्डन डायल की खूबसूरत टाइटन वॉच, हाथ में महंगा सेमसंग एस-नाइन मोबाइल और गले में मोटी चेन जो सोने की ही दिखाई दे रही थी। देखने में अच्छे खाते-पीते घर का दिखाई देने के बावजूद उसका नश। में होना उसके प्रति शुबहा पैदा कर रहा था। फिर वह स्पष्ट जवाब नहीं दे पा रहा था कि किसने उसे आमंत्रित किया है, किसकी शादी में वह आया है। इतना कारण ही मेरे जासूसी दिमाग के लिए पर्याप्त था। तुरंत मैंने दारोगाजी के सामने अपनी शंका रखी कि कहीं यह चोर तो नहीं है ? अपनी शंका को बल देते हुए मैंने कहा महंगा मैरिज गार्डन जो रसूखदार आसामी ही ले सकता है, वहाँ बड़ा हाथ मारने के चक्कर में हो सकता है यह व्यक्ति लाखों के ज़ेवर पर हाथ साफ करने के लिए बेहतरीन ऑउटफिट है यह जोधपुरी सूट, महंगी घड़ी, महंगा मोबाइल। मेरी राय थी कि दो-चार तगड़े हाथ लगाए जाएँ तो सब कबूल कर लेगा यह।

वह संदिग्ध व्यक्ति यह नहीं बता पा रहा था कि वह किसकी शादी में आया है लेकिन राजमार्ग पर सुरभि गार्डन के नज़दीक ही एक अन्य गार्डन राजविला का नाम वह ले रहा था। दारोगा जी का व्यवहार उसके प्रति कुछ नरमी का दिखाई पड़ रहा था और वे उसे बाहर की ओर ले जाते हुए कहने लगे कि राजविला में देख लेते हैं ये किसके मेहमान हैं। रोबदार मुँछे, लम्बा कद, बलिष्ठ शरीर होने के बावजूद रिटायरमेंट के नज़दीक की उम्र को देखते हुए मैंने दारोगा जी को उस व्यक्ति के साथ अकेले जाने देना मुनासिब नहीं समझा। मैं और राजेश उसे ऐसे घेर कर चलने लगे कि वह दारोगाजी का हाथ झटक कर भागने की जुर्रत न कर सके।

दारोगाजी बाहर पार्किंग के नज़दीक रुक कर फिर उससे पूछताछ करने लगे। उसका नाम-पता जानने की कवायद करते देख मैंने दारोगाजी को कहा सच तो नहीं ही बताएगा यह। आप तो इसे राजविला ले चलें, वहाँ जब कोई इन्हें नहीं पहचान सकेगा तो दूध का दूध और पानी का पानी हो जाएगा। दारोगाजी के हावभाव बता रहे थे कि उनकी पड़ताल में मेरा हस्तक्षेप उन्हें रास नहीं आ रहा है। मैंने संदिग्ध व्यक्ति के हाथ से मोबाइल छिनते हुए कहा अभी पता करते हैं कि कौन है यह। कुछ मिस्ड कॉल थे लेकिन मैंने डायल्ड कॉल में से पिछला कॉल निकालकर देखा और वही नम्बर डायल करा। मैंने दारोगाजी से कहा कि हो सकता है इसका कोई साथी भी आसपास हो या पूरा गिरोह ही मौजूद हो सकता है। दो-तीन बार नो रिप्लाई मिलने पर मैंने अपना मत रखा कि हो सकता है इस बदमाश का कोई साथी दूर खड़ा हम पर नज़र रख रहा हो और इसीलिए फ़ोन नहीं उठा रहा। इस कवायद में हम राजविला की पार्किंग के नज़दीक पहुँच गए। दारोगाजी किसी तरह की सख्ती नहीं कर रहे थे इसलिए मुझे अजीब लग रहा था और मैं सोच रहा था कि कैसे पुलिस वाले हैं यह!

तभी उस संदिग्ध व्यक्ति के मोबाइल पर कॉल आया, स्क्रीन पर वही नम्बर दिखाई दे रहा था जो मैंने डायल किया था। मैंने वह कॉल रिसिव किया और बात करने लगा। दूसरी तरफ बैंड-बाजे का शोर था इसलिए आवाज़ साफ नहीं सुनाई दे रही थी। मैं भी थोड़ा आगे एकान्त की ओर बढ़ा और फ़ोन करने वाले को भी मैंने कहा कि वह बैंड-बाजे से कुछ दूर आकर बात करे। जैसे ही आवाज़ में स्पष्टता आई, मुझे पता चला कि फ़ोन के दूसरी ओर एक युवक है जो इस फ़ोन के मालिक से बात करना चाहता है। वह पड़ताल करने लगा कि एक अनजान व्यक्ति के पास अर्थात् मेरे पास यह फ़ोन कैसे आया! मैंने अकड़ते हुए कहा कि पहले सामने आओ तब बताता हूँ। मैंने कड़कते हुए पुलिसिया अन्दाज़ में पूछा कि यह फ़ोन किसका है और उससे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है। तब वह कुछ ढीला पड़ा और उसने फ़ोन मालिक को अपना पिता बताया। मैंने उससे पूछा कि वह कहाँ है और उसके पिता उससे कैसे बिछड़े ? उस युवक ने बताया कि वे लोग राजविला में सक्सेनाजी के परिवार की शादी में मेहमान हैं और उसके पिता बारात में पीछे चलते हुए यूरिनल जाने का कह गए और फिर काफी देर होने के बाद भी नहीं लौटे। तब मैंने उसे बताया कि उसके पिता नश। में दूसरी बारात में घुसकर मुसीबत में फंस गए हैं। वह युवक फ़ोन रखते हुए कहने लगा कि आप बताएँ कि आप कहाँ हैं, मैं अभी वहाँ पहुँचता हूँ। मैंने उसे राजविला की पार्किंग में पहुँचने का कहा और तेज़ी से पार्किंग में पहुँचकर उस युवक का इंतज़ार करते हुए योजना बनाने लगा कि किस तरह मैं युवक द्वारा कही गई बातों की पुश्टि करूँगा।

कुछ पल बाद ही एक आकर्षक युवा तेज़ कदमों से चलता हुआ मेरी ओर आते दिखाई दिया। मैं समझ गया कि फ़ोन पर इस युवक से ही बात हो रही थी। एक अनुभवी जासूस की तरह मैंने उससे कहा तुम्हारे साथ जो भी हैं, वह न तो अपना नाम ठीक से बता पा रहे हैं और न ही उन्हें शादी में आमंत्रित करने वाले का नाम वे जानते हैं। इसलिए तुम बताओ उनका नाम क्या है और वे कहाँ रहते हैं। उस युवक ने बताया कि उसके पिता का नाम राजकिशोर अग्रवाल है और वह बहुत देर से अपने पिता को ढूँढ़ रहा है। उसने कहा सक्सेना जी मेरे पिता के दोस्त हैं जिन्होंने हमें आमंत्रित किया है। उसकी बात की पुष्टि के लिए मैंने राजविला के बाहर बने स्वागत द्वार पर नज़र डाली जहाँ 'सक्सेना परिवार आपका हार्दिक अभिनन्दन करता है' लिखा बैनर लहरा रहा था। मैंने उस युवक की पहचान पर शंका जाहिर करते हुए कहा तुम्हारे पिता का यही असली नाम है यह हम कैसे माने। उस युवक ने कहा कि आप आइए, हमारी गाड़ी में शादी का कार्ड रखा है। वह मुझे एक होण्डासिटी की ओर ले गया और कार में से सक्सेना परिवार का शादी का कार्ड निकालकर बताने लगा। प्रेशक में ललित किशोर सक्सेना का नाम था और आमंत्रित की जगह राजकिशोर अग्रवाल लिखा था। अब मेरे पास कोई तर्क नहीं था और मुझे ऐसा महसूस होने लगा कि एक केस हाथ में लिया था जिसमें मैं बुरी तरह असफल हुआ; लेकिन दारोगाजी के सामने तो यह दर्शाना

था कि मैंने किस समझदारी से इस 'संदिग्ध' व्यक्ति की पहचान की पुष्टि की। मैं मन ही मन दारोगा जी के अनुभव की दाद देने लगा जो समझबूझ कर ही सख्ती नहीं कर रहे थे।

उस युवक को साथ लेकर मैं उस स्थान की ओर बढ़ा जहाँ दारोगाजी और राजेश उस युवक के पिता को घेरे खड़े थे। मैंने वहाँ पहुँचकर दारोगाजी को सिलसिलेवार ढंग से बताया कि किस तरह मैंने उक्त व्यक्ति के नाम की पुष्टि की, कैसे मैंने इस बात की तसल्ली करी कि ये चोर नहीं बल्कि किसी शादी में बुलाया गया मेहमान है। गाड़ी का नम्बर भी मैंने बतौर सावधानी याद कर लिया था और अपने स्मार्ट फ़ोन द्वारा इंटरनेट का उपयोग कर गाड़ी का रजिस्ट्रेशन डिटेल देख लिया था। उक्त व्यक्ति के मोबाइल से मैंने अपने नम्बर पर डायल कर न सिर्फ उसका नम्बर पा लिया बल्कि ट्रू कॉलर पर उसके नाम को देखकर पुष्टि भी कर ली। इस तरह मैंने अपना निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि इस व्यक्ति को छोड़ देना चाहिए, यह चोर नहीं है। दारोगाजी ने राजकिशोर अग्रवाल से कहा ठीक है, आप जाइए और आइंदा इस बात का ध्यान रखें कि नश। में ऐसी-वैसी कोई हरकत न करें। मेरी दलीलों को चुपचाप सुन रहा राजेश एकाएक दारोगाजी से बोल पड़ा 'अंकल अब आप इनकी सोने की चेन वापस कर दीजिए। ' राजेश की यह बात सुनते ही राजकिशोर अग्रवाल ने चौंककर अपने गले पर हाथ घुमाया और चिल्लाया 'अरे, मेरी चेन' उधर दारोगाजी सकपकाते हुए राजेश से बोले 'चेन ! कौनसी चेन ?' राजेश ने कहा 'वही, जो आपने बड़ी सफाई से इनके गले से खींच ली। ' यह सुनते ही जैसे पाँसा पलट गया और राजकिशोर अग्रवाल ने दारोगाजी की कॉलर पकड़ ली। उसकी बुलंद आवाज़ गूँज रही थी 'निकाल मेरी चेन'। दारोगाजी ने अपनी कॉलर पर से राजकिशोर अग्रवाल का हाथ हटाया और उसकी हथेली पर सोने की मोटी चेन दिखाते हुए कहने लगे 'ये इनके हाथ में ही तो है चेन, मैं क्यों लेने लगा इनकी चेन ?'

मैं सामने हतप्रभ खड़ा सब कुछ देख-सुन रहा था और सब कुछ समझ में आते हुए भी कुछ समझ नहीं पा रहा था।

***

लघु कथा

माँ

सुधा गोयल

''माँ बहुत भूख लगी है। खाना दो न।''

''अभी हेलीकॉप्टर आएगा। वही खाना लाएगा।''

''माँ,तुम खाना क्यों नहीं बनाती ?'' बच्चा रोने लगा। माँ की आँखें भी भर आईं।

''खाना बनाऊगीं। थोड़ा सब्र कर..''

''माँ हम अपने घर मे क्यों नहीं रहते? मेरे बाबा और मेरा घोड़ा कहाँ है? यहाँ चारों तरफ पानी पानी क्यों है? माँ कहीं और चलो न''

माँ ने अपनी नज़र चारों ओर दौड़ाई। उसके पास बच्चे के सवालों का जबाब नहीं था। उसे लगा कि यदि वह थोड़ी और ऊपर चढ़ जाए तो उसके चारों तरफ पानी नहीं रहेगा पानी में बहकर अपने चार वर्षीय पुत्र के साथ इस शिलाखण्ड से टकराकर रुक गई थी। दोनों उसी शिला खण्ड पर बैठे थे। उसने उठने की कोशिश की लेकिन एक सीत्कार उसके मुँह से निकल कर रह गई। शायद टाँग की हड्डी टूट गई थी। यहाँ बैठे उसे कोई देख भी नहीं पाएगा, पर बच्चे के साथ ऊपर कैसे चढ़े।

''माँ हेलीकॉप्टर अभी तक क्यों नहीं आया?मुझे बड़ी भूख लगी है.''

''अभी थोड़ी देर मे आएगा। तुम अपनी कमीज़ उतार लो। जब हेलीकॉप्टर आए तब हाथ ऊपर करके हिलाना। वे ऊपर से तुम्हारे लिए खाने के पैकेट गिरा देगें।'' माँ ने समझाया।

बैठे-बैठे उसने चारों तरफ दृष्टि डाली। औरतें, मर्द बच्चे पानी में बहे जा रहे हैं। कुछ पत्थरों से टकराकर रुक गए हैं। निकल नहीं पा रहे। चीख चिल्ला रहे हैं। गनीमत है कि वह और उसका बच्चा अटके नहीं हैं लेकिन ज़रा भी हिले तो सैकड़ों फिट नीचे बहती अलखनन्दा में समा जाएँगे और पानी के वेग से यह पत्थर सरका तब भी दोनों की जलसमाधि निश्चित है। पति और घोड़ा पता नहीं कहाँ किस हाल में होंगे। होंगे भी या नहीं। घर तो बह ही गया होगा। क्या वह पत्थर का सहारा लेकर थोड़ा ऊपर चढ़े।

उसने साड़ी का पल्लू फाड़ा। कसकर टाँग पर लपेटा और ऊपर खिसकने लगी। एक हाथ से उसने बेटे को पकड़ा.. जीने की लालसा बड़ी बलबती होती है। माँ बेटा पत्थरों से टकराते,बचते ऊपर की ओर खिसकते रहे। थोड़ा ऊपर जाने पर एक पेड़ की जड़ पकड़ कर बैठ गए। यहाँ भी चारों तरफ पानी ही पानी। पानी में तैरती लाशें। उन लाशों के बीच भी उसकी आँखें कुछ खोज रही थीं। वह अपने पुत्र की भूख शान्त करना चाहती थी। लेकिन उसके पास कुछ भी नहीं था। कहीं से कुछ मिलने की उम्मीद भी नहीं थी..

उसने पेड़ की जड़ को खुरचने की कोशिश की जो लगातार पानी में रहने से थोड़ी मुलायम हो गई थी। ज़रा सी छिलन टूट कर हाथ में आ गई उसने चखी, फिर बच्चे को दी।

''ले इसे चबा ले। भूख शान्त हो जाएगी।''

तभी गड़गड़ाता हेलीकॉप्टर वहाँ से पैकेट गिराता गुज़रा। माँ ने जैसे-तैसे पानी में तैरते पैकेट उठा लिए और पेड़ की जड़ मे रख लिए। माँ बेटा दोनों का पेट भर गया,फिर भी कुछ पैकेट बच गए।

तभी एक आठ दस साल का बच्चा रोता हुआ उसके पास आ खड़ा हुआ। ''माँ मुझे भी खाना दे दो। बड़ी भूख लगी है।''

''चल हट,यहाँ खाना कहाँ से आया।''

माँ ने दुत्कार दिया। बच्चा भूख से व्याकुल हो वहीं गिर गया। अपने पुत्र के लिए जो इतनी ममतामयी थी वही दूसरे के लिए कठोर हो गई। उसे अपने पुत्र के कल की चिंता थी.....

***

संपर्क :290-ए, कृष्णा नगर,डा.दत्ता लेन, बुलन्दशहर-203001
ईमेल: sudhagoyal0404@gmail.com

किस्स और बीफ

डॉ. हेमलता यादव

व्हट्सअप की दुनिया में खोई हुई चेताली मोबाइल पर अपनी उँगलियाँ सरकाती हुई राजीव चौक मेट्रो स्टेशन से बाहर आई। खोमचों की लाइन के बीच ज़मीन पर बिछी एक चादर पर करीने से अँग्रेज़ी नॉवेल लगाई हुई थी, जिनके पीछे खड़ा एक ग्यारह-बारह साल का लड़का आवाज़ देकर आते-जाते लोगों को बुला रहा था।

''नॉवेल देख लो मैडम जी... बोनी करा दो।'' उसने चेताली से मुखातिब होकर कहा।

ख़ास जल्दी तो थी नहीं चेताली को, सोचने लगी कि नॉवेल पर्स में रहें तो मेट्रो में समय अच्छा कट जाता है; वरना ताकते रहो एक दूसरे के चेहरे, जिन्हें जानते नहीं उनके पहचाने चेहरे, रोज़ का आना-जाना हो तो चेहरे पहचान में आ ही जाते हैं। एक-दूसरे को बिना जाने मुस्कुराहट का आदान-प्रदान करती महिलाएँ। अगर मूड अच्छा हो तो खिलखिलाते सतरंगी चेहरे, अगर मूड खराब हो तो परछाइयों से ढलते उलझे चेहरे। अब-तक दादी-नानी, मम्मी-मौसी के मुँह से जो बहनापा सुनते आए थे उसके स्पष्ट दर्शन इसी डिब्बे में होते है; कितना मज़ा आता है जब कोई पुरुष अनजाने में महिलाओं के लिए आरक्षित स्पेस में आ जाता, सबकी निगाहें उस पर ऐसी पड़ती हैं कि उलटे पाँव भागता है लक्ष्मण रेखा के पीछे... हाँ ये बात और है की वहाँ पहुँच कर दाँत निपोरने लगता है। समाज में अपना स्थान आरक्षित करने के लिए जीवन से संघर्षरत महिलाएँ, दौड़ती-भागती ज़िन्दगी का लुत्फ़ उठाती महिलाएँ, कानों में लीड लगाए गानों, नोवेल्स, व्हाट्सअप, फेसबुक, इन्स्टाग्राम की दुनिया में खोई महिलाएँ। फैशन और एसेसरीज़ के लेटेस्ट या एथेनिक ट्रेंड के लिए नेट या फैशन मैगज़ीन की क्या ज़रूरत। हमारा मेट्रो डिब्बा हैं ना, और हम सब रियल लाइफ मॉडल्स।

''मैडम जी देख लो नया स्टॉक आया है।'' उस लड़के ने कहा। चेताली बिना कुछ कहे नॉवेल्स के टाईटल पढ़ने लगी।

एक नॉवेल उठाया 'मोंक हू सोल्ड हिज फरारी' सन्यासी जिसने अपनी संपत्ति बेच दी। बेस्ट सेलर है, हिन्दुस्तान टाइम्स में हर हफ्ते बेस्ट 10 में रैंक पाता है, चलो यही खरीद लेती हूँ। दूसरी नज़र क्लासिक नॉवेल 'टू किल अ मोकिंगबर्ड' पर गई .... अरे यह तो वही नॉवेल है जिसका जिक्र कल टी. वी. पर चल रही अजय देवगन की फ़िल्म में था ..... रेस्टोरेंट में वेटर और मानसिक रूप से पिछड़े किरदार में अजय देवगन विश्वास नहीं कर पाता जब उसकी प्यारी नन्ही बेटी इस नॉवेल का टाईटल पढ़ती है। चलो ए भी ले लेती हूँ, साठ सालों से बेस्ट सेलर है नस्लीय भेदभाव के बीच लिखी गई न्याय की दास्ताँ.... किताब के पीछे छपा रिव्यू पढ़ा।

''कितने पैसे हुए छोटू... सही लगाना।'' चेताली ने दोनों नॉवेल उसके हाथ में

दिल्ली विश्वविद्यालय में लेक्चरार डॉ. हेमलता यादव इतिहास के शिक्षण में शोधरत, साहित्य से लगाव, कविता और कहानी लेखन में रुचि रखती हैं। कई प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ, कविताएँ और शोध-आलेख प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. हेमलता यादव के दो साझा कविता संग्रह हैं।
संपर्क: 459 C /6 गोविन्दपुरी कालकाजी, नई दिल्ली 110019
ईमेल: hemlatayadav2005@gmail.com
मोबाइल: 9312369271

पकड़ाए।

''मैडम दोनों साढ़े पाँच सौ के हैं ..... आप पाँच सौ दे देना।''

''मैंने कहा सही लगाना, प्रिंट रेट पर दूकान से ही ले लूँगी ... यहाँ धूप में खड़ी होकर क्यूँ माथापच्ची करूँ।''

''मैडम आप कितने दोगी।''

''हम्म .... तीन सौ।''

''नहीं मैडम मालिक डाँटेगा। हर किताब का हिसाब होता है, तीन सौ तो बहुत कम हो जाएँगे।''

''तेरा मालिक होता तो दौ सौ ही बोलती, चल ठीक है रहने दे।'' बात बन गई तो फायदे का सौदा नहीं बनी तो भी क्या फर्क पड़ता है; सोचकर चेताली थोड़ा पीछे हटी और चलने लगी।

''अरे मैडम जी सुनो तो ..... बोनी नहीं हुई ..... आप ऐसा करो पाँच सौ में कोई तीन नॉवेल ले जाओ, एक और छाँट लो, मैं मालिक को मना लूँगा।'' वह पटरी से उसकी ओर भागा आया।

पेट की भूख इन छोटे बच्चों को ज़िन्दगी जीने के गुर सीखा देती है। ज़िन्दगी की कठिनाइयों के मुँह पर तमाचा मारते छोटे-छोटे उस्ताद।

''लगता है कसम खाई है मुझसे पाँच सौ रुपये ले कर ही मानेगा।'' वह दो कदम लौटकर वापिस आई। ढेरो टाईटल फिर नज़र के सामने, अब तो देर भी हो रही है, जब पैसे दे रही हूँ तो क्यूँ न कोई मोटी सी नॉवेल ले लूँ; यह सोचकर एक मोटा- सा नॉवल उठाया ''अ थाउजेंड स्प्लेंडिड संस --- खालिद हुसैनी'' .... नाम सुना सा है। वैसे ही काफी देर हो गई थी सो अंदर से कुछ रिव्यू पढ़ने की जहमत नहीं उठाई। तीनों नॉवेल चेक किए कहीं अंदर के पेज फटे ना हों, बिलकुल वैसे ही जैसे माँ के साथ सब्जी या फल लेते समय कीड़े ना होने की तसल्ली करती है। पर्स में से हज़ार का नोट निकाल कर उसे पकड़ा दिया।

''मैडम आप रुको मैं छुट्टे कराता हूँ।''

''जल्दी करना छोटू मुझे देर हो रही है।'' वह आस-पास के खोमचों पर गया और पलक झपकते खुल्ले पैसे ले आया। उससे सौ-सौ के पाँच नोट लेते हुए चेताली ने पूछा ''छोटू किताबें बेचता ही है या पढ़ता भी है।''

''मैडम जी मुझे ये पढ़नी नहीं आतीं।''

छोटू का चेहरा देख अपने सवाल पर चेताली अफ़सोस हुआ। ''तो स्कूल जा, पढ़नी आ जाएँगीं.... देख मैं अक्सर यहाँ से गुज़रती हूँ, अगर तुझे पढ़ाई करनी है तो मुझे बताना, आस-पास के किसी स्कूल में तेरा दाखिला करा दूँगी, खाना भी मुफ्त मिलेगा।''

''स्कूल जाऊँगा तो रोज़ की ध्याड़ी मारी जाएगी, बाबा बीमार रहता है।'' चेताली ने उसे देखा ... ज़िम्मेदारी और मजबूरी में मुस्कुराता छोटू, उसके बारे में सोचते हुए आगे बढ़ गई।

ऍम.बी.ए. के बाद तीसरी जॉब .... प्रोजेक्ट ट्रेनी के तौर पर काम करना मतलब एक पैर पर खड़े रह कर अपनी ऐसी तैसी करवाना..उसके बाद भी ज़रा सी चूक पर डाँट सुनना। कॉम्पिटीशन के दौर में ये हाल है कि अगर नौकरी छुट गई तो महीनों घर पर बैठ कर अखबारों के क्लासीफाइड छानना, इन्टरव्यू के जवाबों के फोन के इंतज़ार करना। जब पढ़े-लिखो का यह हाल है तो बेचारे छोटू को कौन पूछे! वो आवाज़ देकर ग्राहकों को बुलाता है और हम लाइन लगा कर कम्पनियों के दरवाज़ों पर खड़े हो जाते हैं। फिर भी पपढ़ाई और बचपन तो उससे छिन रहा है जो हमने भरपूर जिया है।

पढ़ाई फिर परमानेंट जॉब के चक्कर में चेताली की बढ़ती उम्र उसके घर को रोज़ अखाड़ा बना देती; उसकी दादी और माँ उम्र की चिंता लिए घर के दरवाज़े पर ही उसका स्वागत करतीं।

''दो कम तीस है ... अगर तीस पार कर गई तो समझो कोई दूजा ही मिले, बाल बच्चों वाला। पढ़ाई अपनी जगह, शादी ब्याह अपनी जगह। ये लड़की है कि सुनती ही नहीं। पढ़-पढ़ के दिमाग खराब हो गया है इसका।'' दादी के रोज़ यही डायलाग, उस पर मम्मी का जवाब -

''माँजी.. मैं तो समझा-समझा के थक गई। मायके में ज़िन्दगी नहीं कटती, लड़कियाँ अपने घर में ही सुहाती हैं। थोड़ा धर्म-कर्म भी सीखे जब से छोटा गौरक्षा अभियान से जुड़ा है बिरादरी में हमारी नाक ऊँची हो गई है ...।''

''कल को भाभी आ जाएगी तब पता चलेगा, दो दिन भी घर में टिकने नहीं देगी। आगरे का इतना अच्छा रिश्ता मना कर दिया। अभी तो अच्छे रिश्ते आ रहें हैं, दो चार सालों बाद कोई हमारी दहलीज़ पर थूकने भी नहीं आएगा।'' दादी दो वाक्यों का और इजाफा करती।

''अच्छा रिश्ता... माय-फूट, ऊँची पढ़ी लिखी बहु चाहते हैं, कहते हैं खाता-पीता, पैसे वाला घर है किसी चीज़ की कमी नहीं, बस यही शर्त कि बहू नौकरी ना करे। अगर इतना ही पैसा है तो बेटे को क्यूँ नहीं रोका नौकरी से। जैसे एक लड़की की सालों तक दिन-रात की मेहनत, शिक्षा, सपनों और समाज में उसके वजूद का कोई महत्त्व ही नहीं।'' खीज से पैर पटकती वह अपने कमरे में दाखिल हो गई।

बैग को अलमारी में फैंका और खुद बिस्तर पर लेटे हुए सोचने लगी .....दादी, मम्मी, पापा, भाई और जो अभी तक नहीं आई वो भाभी, सबका घर है बस मेरा नहीं। कई बार मन करता है कमरा लेकर अलग रह लूँ; लेकिन फिर मम्मी- दादी का वही रोना-धोना। जानती हूँ सबको मेरी बढ़ती उम्र की चिंता है, मेरा भला चाहते हैं, लेकिन मुझे अपनी नौकरी में सेटल होने की चिंता है, उसमें भी तो मेरा ही भला है। ऑफ़िस में ही दिमाग और शरीर टूट जाता है उसपर घर के ये पचड़े, मैं कितनी चिड़चिड़ी होने लगी हूँ। शुक्र है ये नॉवेल और फ़िल्में रेस्क्यू का काम करती हैं। कभी-कभी अपने व्यवहार पर गुस्सा आता है जब घर पर आते ही टी .वी. खोल कर कोई फ़िल्म या गाने लगा देती हूँ। दादी और मम्मी की तेज़ होती आवाज़ों के साथ टी.वी.का वॉल्यूम भी बढ़ता जाता है और उन्हें लगता है मैं उनकी सुनती ही नहीं। असल में रोज़ एक ही राग सुनते-सुनते थक चुकी हूँ। मैं शादी के खिलाफ नहीं बल्कि कई बार किसी से मन की बात कहने सुनने की तीव्र इच्छा होती है बस कोई ऐसा हो जो मुझे समझ सके, कम से कम सब्र के साथ मेरी बात सुन सके, मुझे हौसला दे आगे बढ़ने का। ऑफ़िस में सब दोस्त ही हैं लेकिन वो दोस्त कम कॉम्पिटीटर ज़्यादा हैं। कब मुँह से कोई बात निकले और कब कोई उसका फायदा उठा ले। कॉलेज के दौरान एक दो बॉयफ्रेंड टाइप रिश्ते भी बने लेकिन वो बीती बातें हो गए। मेरे जैसी दिखने में

और बातों की बोल्ड लेकिन अंदर से सहमी हुई लड़की को ज़्यादा झेल नहीं पाए। मीठी-मीठी बातें, मसेजिंग, ऑन लाइन चेटिंग, घूमने-फिरने के बाद जब बात आगे बढ़कर किस्स पर आती मैं घबराकर पीछे हो जाती। बोल्डनेस को देखकर आकर्षित होते फिर बेचारे मन मारकर किनारा कर लेते। जिसके बारे में कॉलेज और ऑफ़िस की लडकियाँ आसानी से बताती वो एक 'किस्स' ना जाने क्यूँ मुझ तक आते ही मुश्किल हो जाती इसलिए अब इन सब के बारे में सोचती ही नहीं। रोज़ ऐसे ही अजीब से ख़यालों में खोई चेताली सो जाती।

संडे का खाली दिन ऑफ़िस के साथियों ने मिलकर फ़िल्म का प्रोग्राम बनाया, इच्छा तो नहीं थी लेकिन घर पर दादी-मम्मी की किच-किच से बचने के लिए चेताली ने ऑफ़िस के जत्थे के साथ टहलना ही ठीक समझा, सो ऑफ़िस का कारवाँ निकल पड़ा मल्टीप्लेक्स की ओर।

''एक्स्क्यूज़ मी''

चेताली ने पीछे मुड़कर देखा, जाना पहचाना सा चेहरा लेकिन कौन ?????

''आप चैताली तिवारी हैं ना''।

''जी.. मगर आप .....''

''पहचाना नहीं मैं इरशाद ..... आपके साथ कॉलेज में .... हम ठहरे बेक बेंचर और आपकी सीट हमेशा आगे इसलिए शायद याद नहीं आपको।''

''ओ .. इरशाद .. हाँ अब याद आया, और सुनाइए क्या कर रहें है आजकल।''

''ऑटोमोबाइल कम्पनी में असिस्टेंट ब्रांच कोऑर्डिनेशन पोस्ट पर हूँ, और आप।''

''जी.पी. ऑयल्स में प्रोजेक्ट कंसलटेंट हूँ।''

''अरे वाह .... सात सालों में आप बिलकुल नहीं बदली। इसलिए मैंने आसानी से पहचान लिया।'' इरशाद के चेहरे पर ख़ुशी और आत्मीयता झलक आई।

''थैंक्स..... ऑफ़िस की तरफ से फ़िल्म का प्रोग्राम बनाया है, आप चाहें तो ज्वाइन कर सकतें हैं।''

''ओ माय बेड लक, आपके साथ फ़िल्म देखने का चांस, लेकिन कुछ ज़रूरी काम है अगर आप ऐतराज़ न करें तो क्या आपको कल लंच पर इनवाईट कर सकता हूँ? आपके ही ऑफ़िस के पास कहीं भी जहाँ आप चाहे। मिलकर कॉलेज के पुराने दिन याद करेंगे।''

''जी कल नहीं, कल कुछ ज़रूरी काम हैं लेकिन बुधवार को मैं फ्री हूँ।''

''ओके डन, तो बुधवार को मिलते हैं।''

इरशाद ने अपना विज़टिंग कार्ड उसे दिया और उसका कांटेक्ट नम्बर ले लिया। क्या फालतू का चक्कर गले पढ़ गया, चलो कोई बात नहीं, दादी-मम्मी के तानों से और ऑफ़िस की पॉलिटिक्स से तो बचूँगी..... सोचते हुए वह आगे बढ़ गई।

दो-चार मुलाकातों में जान-पहचान अच्छी दोस्ती में बदल गई। उसके लिए सबसे ख़ुशी की बात यह थी कि इरशाद ऑफ़िस के काम में उसकी बहुत मदद करने लगा। ऑफ़िस के प्रोजेक्ट ड्राफ्ट तैयार कर उसे दिखाती, और यदि कुछ कमी-पेशी हो तो वह उसे ठीक करता फिर फाइनली चेताली ऑफ़िस में अपना काम पूरा करके दे देती। कंपनी और काम की बातों के इतर उन दोनों में आपस में अक्सर राजनीती और धर्म के मुद्दों को लेकर भी बहस छिड़ने लगी। सहमती-असहमतियों के दौर में कुछ अपनापन पनपने लगा। बीच-बीच में वह मुस्कुराता जाने क्यूँ! चेताली पूछती भी नहीं, असल में उसे कोई फर्क नहीं पड़ता लेकिन लगातार ये सोच तो बनी रहती कि इरशाद उसके बारे में क्या सोचता होगा, या अभी इस वक्त क्या सोच रहा होगा। फ़ोन और व्हट्सअप पर भी इधर-उधर की कुछ उपरी बातें हो जातीं। ऑफ़िस की परेशानियाँ एक दूसरे से शेयर करते, परिवारों की बातें भी कभी-कभार हो जातीं, लेकिन चेताली की पर्सनल या लव् लाइफ के बारे में ना उसने कभी कुछ पूछा ना ही चेताली को इरशाद के किसी अफेयर के बारे में जानने में दिलचस्पी थी। औपचारिकता और अनोपचारिकता के मध्य रहना ही दोनों ने ज़्यादा उचित समझा।

इरशाद का ज़िंदादिल व्यवहार, चेताली के काम को इंच दर इंच नाप कर ठीक करना, जहाँ उसका काम अच्छा होता तारीफों के पुल बाँध देता, लेकिन उसे ज़्यादा अच्छा लगता जब इरशाद उसके काम में कोई भूल-सुधार करता, वह उसे ठीक करती। ऑफ़िस में चेताली के काम का स्तर बढ़ने लगा था। इरशाद उसको अपना काम भी दिखाता और उसकी राय माँगता, वह इरशाद के काम की झटपट लिस्टिंग कर के मेल कर देती। चेताली को अच्छा लगने लगा जब उसके लिखे कुछ शब्दों को वह मुक्कमल बनाता, अधलिखे ड्राफ्ट को पेंसिल से पूरा ड्रा करता। उसके बोले हर्फ़ों के लहजे पर कभी ऐतराज़ उठाता, ज और ज़ बोलने में फ़र्क समझाता, उसका गंभीर विश्लेषण डूबकर पढ़ता। पढ़ते हुए जहाँ ग़लती पकड़ आए मुस्कुराता, कैफ़े में बेतकल्लुफी से चेताली की थाली से उठा मुली का आचार खाता। उनकी हर मुलाक़ात की रुखसती पर नज़र से बोझिल होने तक साथ निभाता। वो गैर मज़हबी चेताली को अपनों से ज़्यादा अपना होने का विश्वास दिला रहा था। चेहरे पर कुछ पल ठहरकर हटती उसकी नज़रों में चेताली को आकर्षण तो दिख रहा था, लेकिन क्या इरशाद गैर मज़हबी लड़की से प्यार भी कर सकता है। उफ्फ! क्या प्यार में प्रेमी धर्म-मज़हब के बारे में भी सोचते होंगे। अब तो हद हो गई जनाब। इतनी शिक्षा के बाद, इतने एडवांस समय में जाति - धर्म के बारे में कौन सोचता होगा! गाँव -देहात के वो ज़माने लद गए, जब किसी पिछड़े गाँव-देहात में कहीं गले में प्यास की जलती ख़राश। हुआ करती थीं, सामने ठाकुर का कुआँ और कुएँ का ठंडा-मीठा-सौंधा पानी लेकिन गैरजात प्यास में अधमरा होता हुआ सूखे होंठो पर जीभ फिरा कर प्यासा ही रह जाता था। भला आज जाति-धर्म की कौन सोचता है वो भी शहर में।

आज चेताली जैसे ही घर पहुँची दादी ने माँ को आवाज़ दी ''मेरी चेतु आ गई ऑफ़िस से..... अरी चेताली की माँ चाय-पानी लेआ, थक गई होगी बेचारी।''

आज जैसे कानों पर विश्वास नहीं हो रहा। माँ चाय के साथ बेसन के पकोड़े भी ले आईं। आज हुआ क्या है ????

''चेतु मेरी गुड़िया कल ऑफ़िस जाना है क्या?'' घुलती आइसक्रीम सी मिठास लिए दादी उसके करीब आ कर बैठ गईं।

''हाँ जाना तो है, लेकिन आप काम बताओ! क्या कोई लड़के वाले देखने आ रहें हैं।''

''नहीं, बस एक छोटा सा काम है। कल

ऑफ़िस से छुट्टी करेगी ना मेरी लाडो।'' दादी का लाड टपका। वैसे तो दादी चेताली को प्यार बहुत करती हैं। वह तो अक्सर अपनी आँखों के सामने उसके हाथ पीले होते देखने की धुन उनकी जबान को खारा कर देती है।

''क्या .....''।

''कल ये रुपये चुपचाप ले जाकर बैंक में जमा कर देना, तुम्हारे पापा को न पता चले, खर्चों में कटौती कर बड़ी मुश्किल से तिल-तिल कर जोड़े हैं। कल को तेरे और तेरे भाई के काम ही आएँगे।'' (छोटा अचानक से उनके बेटे से ज़्यादा चेतली का भाई बन गया) माँ ने रुमाल में बंधे हज़ार और पाँच-सौ के नोट चेताली पकड़ाते हुए कहा।

सरकार ने पाँच-सौ और हज़ार के नोट बंद कर दिए; देश में आफत आई हो या ना आई हो पर दादी और मम्मी के मन में हदका बैठ गया। उसकी दादी और माँ जो घर में घुसने से पहले उस पर शादी को ले तानों की बरसात करती थीं, आज नोटबंदी से परास्त हो मुलामियत दिखाने लगीं।

चेताली की हँसी छूट गई। दादी और मम्मी भी हँसने लगीं। पता चला कि आज मम्मी बैंक गई थीं पैसे जमा करवाने। छह-सात घंटे लाइन में खड़े रहने के बाद जैसे ही उनका नंबर आने को हुआ बैंक बंद हो गया। खुंदक से किटकिटाती हुई, बैंक और सरकार की लानत-मलामत करती घर वापिस आ गईं। अब दोनों सास-बहु यानि दादी-मम्मी का प्लान था कि अगले दिन सुबह- सवेरे ही उसे बैंक की लाइन में चेताली को लगा दें, और मम्मी पीछे से पापा को ऑफ़िस भेजे और छोटे को कॉलेज। पापा को पता भी नहीं चलेगा और पैसे जमा हो जाएँगे।

''आपने पहले ही अपने अकाउंट में क्यूँ नहीं जमा करवाए! घर में रखने से क्या पैसे बढ़ते हैं! और अभी आप पापा को क्यूँ नहीं दे देती जमा करवाने के लिए, उनकी जान पहचान है बैंक में।'' चेताली ने मम्मी को छेड़ने के अंदाज़ में कहा।

''अरे वाह ... सालों की मेहनत से मैंने पैसे बचाए हैं। तेरे पापा को पता चल जाए तो कोई ना कोई ज़रूरी खर्चा बताकर ले लेंगे। घर में पता चल गई तो फिर सेविंग कहाँ रहेगी, खुली मुट्ठी खाक की हो जाएगी। मैं सारा दिन घर में खटती रहती हूँ, तुम्हारे लिए ही तो जमा करती हूँ, और तू मेरा इतना सा काम नहीं कर सकती।''

''अच्छा बाबा ठीक है, कल छुट्टी कर लूँगी। पैसे जमा हो जाएँगे आप चिंता मत करो।''

दादी और मम्मी दोनों के कुल मिलाकर छत्तीस हज़ार रुपये अब उसकी अलमारी में आराम फरमा रहे थे। दोनों की साँसे ऊपर-नीच। कहीं उनके पैसे जमा होने से पहले सरकार कोई दूसरा फरमान ना जारी कर दे। इसलिए सुबह- सवेरे दादी पाँच बजे ही उसे उठाने आ गईं। माँ चाय के साथ तैयार थीं।

''देख लाइन में पैसे सँभाल कर रखना। मैं तो बटुआ अपने ब्लाउज में रख लेती थी। एक रुपये की भी मजाल जो इधर से उधर हो जाए।'' दादी ने पैसों की सेफ्टी पक्की करनी चाही।

''क्या बात करती हो दादी, इतने रुपये आगे कैसे रखूँगी। कहा ना बैग में सँभाल कर रख लूँगी, आप चिंता मत करो।''

दोनों ने अपनी बैंक पासबुक पकड़ाई और पापा के उठने से पहले ही उसे बैंक के लिए रवाना कर दिया। चूँकि मम्मी को लाइन में भूखा खड़े रहने का एक्सपीरियंस हो चुका था, इसलिए मम्मी ने उसके बैग में टिफ़िन और पानी की बोतल डाल दी। इतनी देर लाइन में खड़ी रहकर क्या करुँगी, यह सोचकर उसने बुकरैक में से वही मोटी नॉवेल उठा ली 'अ थाउजेंड स्प्लेंडिड संस'।

चेताली को अंदेशा था कि हफ्ते-दस दिन में हालात सामान्य हो जाएँगे, लेकिन दादी और मम्मी को सब्र कहाँ! उनके लिए तो बात हार्ट अटैक पर आ कर अटक गई थी। टीवी, अखबारों और अब बैंक लाइन में भी वही नोटों की गर्मागर्म राजनीतिक बहस, उकता कर उसने फ़ोन की लीड कानों में लगाई और लाइन में खड़े-खड़े नॉवेल की दुनिया में खोने लगी।

अफगानिस्तान में स्त्रियों की दशा और विपरीत परिस्थितियों में उनके जीने की जिजीविषा की कहानी, दो महिलाओं में सौतन का रिश्ता, आपसी प्यार और माँ - बेटी की मुहब्बत में बदल जाने की अजीब दास्ताँ है। साथ ही अफगानिस्तान में चल रहे युद्ध, आंतरिक उथल-पुथल के बीच करवट लेती छोटी सी प्रेमकहानी। लैला और तारिक की किशोर प्रेमगाथा। जैसे-जैसे लाइन आगे बढ़ती ये कहानी भी आगे बढ़ती, फिर इस कहानी में एक सीन आया जब तालिबानी दहशत, बम-विस्फोटों, खून -खराबे और लूटपाट के बीच लैला और तारिक एक दूसरे की किस्स करते हैं। तमाम बुरे अनुभवों के बीच निर्दोष प्यार से भरी एक किस्स। एक अहसास। मौत की गोद में लम्हा भर ज़िन्दगी जी लेने की कशिश हो जैसे।

उफ्फ ..... लाइन में खड़े-खड़े चेताली को ऐसे लगा जैसे नॉवेल में लैला नहीं वह स्वयं है और इन तमाम मुसीबतों में तारिक उसे ही किस्स कर रहा है, लेकिन तारिक, तारिक तो नॉवेल का किरदार है लैला का प्रेमी। तो मेरा कौन है या कौन होगा! उसने ज़रा आँखें बंद कीं, नए-पुराने कितने चेहरे आँखों से गुज़र गए; लेकिन उस अहसास पर चस्पा नहीं हो पाए जो लैला की तरह उसके पेट में उमड़ आया और तितलियों की तरह दिल पर फड़फड़ाने लगा। बैंक का काम खत्म कर वह घर वापिस आ गई। वयस्तता से चुराए अंतरालों में उसने कहानी पूरी पढ़ी। कुछ दिनों उसमें खोई रही। फिर घर और ऑफ़िस में खो गई।

जब महीने का एंड आता है तो ऑफ़िस वाले सर पर परफॉर्मेंस की तलवार लटका देते हैं। सैलरी देने से पहले कोल्हू के बैल की तरह सरसों पिरवाते हैं। चेताली का प्रोजेक्ट तैयार था फिर भी सोचा जमा करने से पहले एक बार इरशाद को दिखा दूँ। सो उससे बात कर उसके ऑफ़िस पहुँच गई।

चेताली को अपने केबिन में बिठा वह बाहर चला गया और थोड़ी देर में कोल्ड-ड्रिंक और सेंडविच ले आया।

''अब इत्मीनान से काम कर सकेंगे, लंच में बाहर नहीं जाना पड़ेगा।''

''इसकी क्या ज़रूरत थी। मैं टिफिन लाई हूँ, हम दोनों के लिए काफी रहेगा।'' चेताली ने औपचारिकता वश कहा।

''हाँ हाँ ये भी खा लेंगे .... खाने के मामले में झिझकना कैसा।'' इरशाद हँसते हुए बोला, चेताली भी हँसने लगी।

इरशाद ने पेनड्राइव अपने कंप्यूटर में

लगाई और चेताली की प्रेजेंटेशन चेक करने लगा। वह भी उसका कुछ काम देखने लगी। दोनों काम में डूबे, बीच-बीच में कुछ खाते, कोल्ड ड्रिंक के एक दो सिप लेते, एक-दो बातें भी कर लेते।

लंच टाइम हो गया अधिकतर स्टाफ लंच के लिए चला गया। केबिन के बाहर से आती आवाज़ें कम हो गईं। खामोश माहौल। सेंडविच पकड़ाते हुए इरशाद की उँगलियाँ चेताली के हाथों को छू गईं। चेताली ने झट अपना हाथ खींच लिया। इरशाद ने सॉरी बोलकर अपना ध्यान काम में लगाने की कोशिश की, लेकिन कुछ तार छिड़ चुके थे। चेताली के चेहरे पर अजीब सी घबराहट छा गई। कुछ नर्वस वो भी दिखने लगा। चेताली के ज़हन में नॉवेल के किरदार लैला और तारिक घूमने लगे। उसकी आँखें फर्श पर गढ़ी थीं। इरशाद कुछ बोल रहा था लेकिन चेताली को सुनाई नहीं दिया। वह तो फर्श पर देख रही थी जहाँ लैला को अपनी बाँहों में लिए तारिक प्यार कर रहा था।

''चेताली जी! चेताली जी! लगता है कहीं खो गईं हैं आप।'' इरशाद चेताली के करीब आ कर उसके कंधे पर अपना हाथ रखते हुए बोला।

चेताली ने चौंक कर उसकी आँखों में देखा .....

एक पल जैसे ठहर गया हो। वह कुछ नहीं बोली, इरशाद ने अपना दूसरा हाथ चेताली के दूसरे कंधे पर रखते हुए उसे कुर्सी से उपर उठाया। एक-दूसरे को देखते हुए दोनों थमे रहे, साँसें कुछ तेज़ चलने लगीं। दोनों के होंठ कंपकपाए। सहसा चेताली ने अपनी आँखें झुका लीं। होंठों पर ओस की बूँदें भी छलक आईं, कि अचानक चेताली के मुँह से निकल पड़ा .....

''क्या आपने कभी बीफ खाया है....?''

इस अकस्मात् प्रश्न से अब चौंकने की बारी इरशाद की थी। वह कुछ नहीं बोला। चेताली के कंधों पर उसके हाथों का दवाब हल्का होते हुए आलोप हो गया। चेताली भी कुछ पीछे हट गई। गले में कुछ कड़वा घूँट सा अटक गया और दोनों के दरमियाँ बीफ का प्रश्न ठाकुर का कुआँ बन गया।

***

लघु कथा

समिधा बनने से पहले

संगीता कुजारा टाक

'वो' रोज़ टकराता था मुझसे लाइब्रेरी के बाहर, दरवाज़े के पास, रोज़ ही!! टकराना मतलब देह से देह का टकराव नहीं, आँखों से आँखों का, बिन बोले सब बोलने वाली आँखों से।

मैं क्लास खत्म करने के बाद कॉलेज की लाइब्रेरी में ही पार्ट टाइम लाइब्रेरियन का काम करती थी, मजबूरियाँ जो ठहरीं!! वहाँ भी 'वो' रोज़ आता था।

बिना मुझसे कुछ माँगे, किताबों के साथ -साथ, रिश्तों में बँटे हुए मेरे वजूद के हिस्सों में से एक हिस्सा 'वो' चुपचाप अपने साथ भी ले जाने लगा था। उसकी आँखें कुछ ज़्यादा बातें करने लगीं थीं मुझसे और मेरी आँखों में भी इंतज़ार बसने लगा था उसके लिए। और ये बिना नागा रोज़ होता था...

रोज़ .., मतलब... रोज़.., सिर्फ कॉलेज की बंदी के दिनों को छोड़कर...।

आज भी हम टकराए, पर आज कुछ अलग लगा, लगा कि आज वो बोल पड़ेगा, बिल्कुल फटने वाले अंदाज़ में, और ऐसा ही हुआ, शायद सब्र के इंतिहा होने पर ऐसा ही होता है। लाइब्रेरी के गेट के ओट पर जैसे 'वो' फट ही पड़ा--'लपट नहीं लगती क्या तुझे मेरे इश्क की???'

दो मिनट के लिए तो मैं एकदम से सन्न रह गई....। कभी सोचा ही नहीं था कि 'वो' अपनी बात इस तरह से अचानक रास्ते में ही कह देगा।

फिर भी अपनी साँसों को ही नहीं, खुद को भी काबू में किया, जैसा अक्सर करती हूँ मैं, और काँपते होठों से धीरे से कहा-'आग है आग ....ये इश्क... और आग की लपट को पकड़ा नहीं जा सकता .... इसमें तो सिर्फ स्वाहा होना होता है समिधा की तरह... सुन, स्वाहा होने का डर नहीं है पर जिम्मेदारियाँ हैं, बाप मर गया है शराब पी पीकर, बूढ़ी होती माँ, पगली बुआ, एक भाई और एक बहन भी ....। जब तक भाई कमाने लायक नहीं हो जाता ना, तब तक कोई भी लपट मुझे छू नहीं सकती, चाहे वह भूख की हो या इश्क की...।'

अब सन्न होने की बारी 'उसकी' थी।

'मासूम सी दिखने वाली लड़की का इतना बड़ा कलेजा' बुदबुदाते हुए कहा उसने- 'साथ साथ निभाएँगे न ये जिम्मेदारियाँ।'

'नहीं ! हमारे समाज में सिर्फ बहुओं को ही बेटी बनना आया है, दामादों को बेटा बनना अभी तक नहीं आया।' -सपाट स्वर में जाने मैं कैसे कह गई!

सच्चाई ने 'उसे' फिर से खामोशी ओढ़ने पर मजबूर कर दिया था, लेकिन मेरी आँखों ने साफ-साफ देखा कि इंतज़ार ने 'उसकी' आँखों में भी नीड़ बनाना शुरू कर दिया था...।

***

संपर्क:1बी,पंचशील इनकेल्व, 5 मेन रोड, (कडरू मोड़), राँची -834001, झारखंड
ईमेल : dollykujaratak2017@gmail.com
मोबाइल: 9234677837

आबे रवाँ –''चौबीस घण्टे रनिंग वाटर''

नकुल गौतम

आज राजेश का शहर और दफ़्तर दोनों में पहला दिन था। उसने ट्रेन से उतरते ही ब्रोकर को फ़ोन किया और याद दिलाया कि शाम पाँच बजे उसे घर की चाभियाँ मिल जानी चाहिएँ। स्टेशन से रिक्शा लेकर अपने दफ़्तर के पते पर गया और सुनिश्चित किया कि वह दफ़्तर की इमारत को पहचान ले।

''पहले दिन पर कोई गड़बड़ नहीं होनी चाहिए।'', राजेश ख़ुद को समझा रहा था। अभी सात ही बजे थे, सो वह नज़दीक ही एक सराय में फ्रेश होने चला गया। इस सराय में लोग सिर्फ नहाने के लिए आते हैं। मुम्बई में ऐसे कई गेस्ट हाउस हैं जहाँ लोग केवल फ्रेश होने ही आते हैं, और फिर अपने काम पर निकल जाते हैं। राजेश को इस सराय की जानकारी ब्रोकर से ही मिली थी। डोरमेट्री में सामान रखकर नहाने जाते हुए उसे अपने सामान की चिंता हो रही थी, मगर उसके पास कोई चारा नहीं था। बाथरूम में बड़े बड़े अक्षरों में ''पानी का सदुपयोग'' करने की अपील दर्ज थी लेकिन इस बोर्ड के ठीक नीच। का नल खराब होने की वजह से लगातार टपक रहा था। नहा धोकर निकला तो साढ़े आठ हो गए थे। अपना सामान क्लोक रूम में रखकर वह दफ़्तर पहुँच गया।

ऑफ़िस के ब्रेकआउट एरिया में पानी का एक डिस्पेंसर लगा हुआ था। राजेश ने देखा कि एक व्यक्ति ने पानी का आधा गिलास पिया और आधा सिंक में उड़ेल दिया। राजेश को यह बहुत अजीब सा लगा।

''कल हमारी बिल्डिंग में पानी सिर्फ़ आठ घण्टे आया, यूनो'', रिसेप्शन से गुज़रती हुई एक महिला अपनी सहेली से बतिया रही थी।

''सिर्फ़ आठ घंटे''... राजेश यह सुनकर चौंक सा गया। राजेश के मन में उसके बचपन से लेकर जवानी तक का फ़्लैश बैक चलने लगा...

राजेश को यह याद नहीं था कि वह पहली बार पिता जी के साथ पानी भरने कब गया था। होश सँभाला तो हाथ में डालडा का डिब्बा लिए अपने बड़े भाई-बहन के साथ पानी

नकुल गौतम मुम्बई में सॉफ्टवेयर इंजीनियर हैं। मूलत: ग़ज़ल विधा के साधक हैं और हिन्दी पुस्तकों के गहन पाठक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में ग़ज़लें, लघुकथाएँ और कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं।
संपर्क:बी विंग, 202, सुचिधाम, दिंडोशी कोर्ट के नज़दीक, मलाड पूर्व,
मुम्बई - 97
ईमेल: nakulgautam1@gmail.com

भरने हैण्ड पंप पर खड़ा था। हर रोज़ सुबह जागता तो घर में चले 'पानी भरो आंदोलन' में शामिल हो जाता। माँ रसोई में मोर्चा सँभाले खड़ी होती, और पिता जी हैण्ड पम्प पर। तीनों भाई बहन हैण्ड पम्प से घर तक डिब्बों में पानी ढोते। हैण्ड पम्प पर सलीक़े से पूरे मोहल्ले की बाल्टियाँ एक क़तार में लगी होती थीं। जल भरो आंदोलन युद्ध स्तर पर चलता। न जाने कितनी पानीपत की लड़ाइयों का गवाह था यह हैण्ड पम्प। कभी-कभी हैंडपम्प भी सूख जाता तो गाँव से बाहर किसी हैंडपम्प की खोज की जाती। स्कूटर पर किसी तरह दोनों बाप बेटे चार डिब्बे पानी भर लाते। घर में म्युन्सिपल्टि का नल था जो केवल तीस मिनट तक अपने गले से आवाज़ें निकालता था। माँ इस नल को निचोड़ कर एक बाल्टी तो भर ही लेती थीं।

कुछ बड़े हुए तो पिता जी ने घर के आँगन में एक टैंक बनवाने की सोची। इसके लिए स्लैब बना ही था कि शहर से चाचा जी का फ़ोन आ गया। बिना उनकी इजाज़त के टैंक बनवाने की योजना पर उन्हें आपत्ती थी। कई साल स्लैब आँगन में बिना टैंक के खड़ा रहा। हाँ, इस स्लैब पर बड़े होते राजेश और उसके मित्र बहुत खेलते। घर-घर खेलने के लिए एक उपयुक्त स्थान बन गया। जब तक जवानी आई, इस स्लैब पर पिता जी ने अपने खर्च पर दो टैंक रखवा दिए, और इनमें से एक पर चाचा जी के घर का नम्बर लिखवा दिया। अब चाचा जी को कोई आपत्ती नहीं थी; क्योंकि बिना जेब ढीली किये एक टैंक मिल गया था।

लेकिन ये टैंक कभी पूरे नहीं भरे। अब सुबह उठते ही राजेश का पहला काम स्लैब पर चढ़ कर टैंक में पानी का स्तर देखने का होता था। बहन की शादी हो चुकी थी और पिता जी में अब उतना ज़ोर नहीं था। दोनों भाइयों पर इन टैंकों में इतना पानी जमा करने का ज़िम्मा था कि पूरा दिन निकल जाए। कभी किसी रबड़ की नाली में अपने फेफड़ों के ज़ोर से हवा खींचते तो कभी हैण्ड पम्प से भरकर बाल्टियाँ खींचते, मगर ये टैंक कभी पूरे नहीं भरे। पानी का दबाव इतना कम रहता था कि रसोई का नल खुलता तो बाथरूम में पानी बन्द हो जाता। पिता जी दाढ़ी बनाते हुए अक्सर चिल्लाते थे, ''अरे कोई रसोई का नल बन्द करो''।

बरसात में एक टिन का ड्रम छत के किनारों से गिरते पानी से भर लिया जाता था। शौचलय में यही पानी इस्तेमाल किया जाता था। फ्लश नामक उपकरण केवल मेहमानों के लिए ही लगवाया गया था। अगर किसी घर के सदस्य ने ग़लती से फ्लश चला दी तो पिता जी दो घंटे तक प्रवचन देते थे। मेहमानों को भी पिता जी ''जल ही जीवन है'' पर उपदेश दिया करते थे। बुआ जी एक दो दिन के लिए आतीं तो कभी नहाती ही नहीं थी। पता नहीं कब क्या उपदेश मिल जाए।

शहर में नौकरी मिलने पर भी राजेश को यही चिंता सता रही थी कि आख़िर भाई अकेले पानी कैसे भरेगा। पिता जी भी राजेश के लिए चिंतित थे।

''सुबह उठ कर समय से पानी भर लिया करना। सोए मत रहना'', पिता जी का प्यार भी डाँट के रूप में ही बरसता था।

शाम पाँच बजते ही राजेश ने ब्रोकर को फ़ोन किया। ब्रोकर ने उसे इमारत का नाम और दिशा निर्देश फ़ोन पर ही दे दिए। दिए गए पते पर पहुँचा तो चौकीदार ने राजेश को घर की चाभी थमा दी।

''घर कई दिन से बन्द है। नालियों में पानी कई दिन से रुका होगा, कुछ देर नल खुला छोड़ देना।'' चौकीदार ने राजेश को समझाते हुए कहा।

''पानी सुबह कितने बजे आता है?'', राजेश ने चौकीदार से पूछा।

''24 घंटे रनिंग वाटर है साहब'', चौकीदार ने उत्तर दिया।

घर में सामान रखते ही राजेश ने रसोई और बाथरूम का नल खोल दिया। जैसा की चौकीदार ने कहा था, नल से कुछ बासी पानी बहने लगा। राजेश ने रसोई के स्लैब पर बैठ कर पिता जी को फ़ोन लगाया...

''काम का पहला दिन कैसा रहा बेटा?'' पिता जी ने पूछा।

''पापा! यहाँ 24 घंटे नल में पानी आता है।'' राजेश ने उत्तर दिया।

''जुग जुग जियो बेटा... खूब तरक़्क़ी करो''। पिता जी का गला भर आया था। राजेश की आँखें भी नम हो गईं। नल से अब साफ़ पानी बहने लगा था।

***

लघु कथा

थोड़ी सी ईमानदारी

ज्ञानदेव मुकेश

कॉल बेल बजी। पत्नी घर पर नहीं थी। मैंने दरवाज़ा खोला। देखा, बाईस-तेईस साल का एक लड़का कपड़ों की पोटली लिए खड़ा है। उसने धीमे स्वर में कहा, ''साहब, मेम साहब ने इस्त्री करने के लिए कुछ कपड़े दिए थे। ले लीजिए।''

मैंने पूछा, ''कितने पैसे हुए ?''

उसने कहा, ''साहब, बारह कपड़े हैं। पाँच रुपए के हिसाब से साठ रुपए हुए।''

मुझे रेट सुनकर बड़ी हैरानी हुई। मैंने कहा, ''इस महँगाई में मात्र पाँच रुपये की दर से इस्त्री करते हो ? यह तो बहुत कम है। आजकल कोयला कितना महँगा हो गया है। तुम्हें भला क्या बचता होगा ? अपनी मेहनत की कीमत समझो और अपना सही मेहनताना लिया करो। ऐसा करते हैं, अभी मैं आठ रुपये से तुम्हारा हिसाब करता हूँ। दीवाली पर बढ़ाकर दस रुपये कर दूँगा।''

वह मुझे विस्फारित नज़रों से देखने लगा। मगर उसने जल्दी ही नज़रें झुका लीं। उसने कहा, ''साहब, आपने ईमानदारी की बात की है तो मैं भी एक ईमानदारी बरतूँगा। सच यह है कि हम बिजली के आयरन से इस्त्री करते हैं। वह बिजली भी चोरी की होती है। इस कारण वैसे ही अपराध से दबा हूँ। इसलिए मैं आपसे इसी दर से पैसा लूँगा। आपसे ज़्यादा पैसे लेकर मैं अपनी आत्मा पर बोझ नहीं बढ़ाऊँगा।''

***

संपर्क : फ्लैट संख्या-301, साई हॉरमनी अपार्टमेन्ट, अल्पना मार्केट के पास, न्यू पाटलिपुत्र कॉलोनी, पटना-800013 (बिहार) मोबाइल:9470200491
ईमेल: gyandevam@rediffmail.com

दो क़ैदी

शहादत ख़ान

जेल आए हुए ख़ुर्रम को तेरह महीने हो गए थे, जब उसकी कोठरी में दूसरा कैदी भेजा गया। उससे पहले उस कोठरी में एक और कैदी था पर उसके आने के दो दिन बाद ही उसे दूसरी जगह भेज दिया गया था। फिर वह अकेला ही उस कोठरी में रह गया था और अब यह दूसरा कैदी आया था। देखने में एक पतला-दुबला काला भुजंग आदमी। उसके सिर पर बुरी तरह चिकटे-मैले बालों का एक टोकरा सा रखा हुआ था। चौड़ा माथा, उदास और चमकहीन पीली आँखें, मोटी नाक, लटके होंठ और पिचके गालों और फोड़ों की तरह ऊभरी हड्डियाँ निकला लंबा चेहरा...! उसका पेट कमर से लगा हुआ था और पैरों में बिवाइयाँ खुली हुई थीं। उसका शरीर ज़ख़्मी था। उस पर और चेहरे पर जगह-जगह चोटों के निशान बने थे। और कपड़े मैल से इस तरह भरे हुए थे कि उनसे उठती तीखी गंध बता रही थी कि वह महीनों से नहाया नहीं था। साथ ही उसके इस हुलिया से लग रहा था कि वह या तो मज़दूर है या फिर कोई किसाने उसकी उम्र भी मुश्किल से पैंतीस बरस ही रही होगी। लेकिन अपने वजूद से ज़्यादा काम करने और भूख से कहीं कम खाना मिलने के कारण उम्र से पहले ही उसके चेहरे पर झुर्रियाँ छा गई थीं और वह बूढ़ा दिख रहा था।

उसे तीन सिपाही लेकर आए थें। उनमें एक उसके आगे चल रहा था और दो पीछे। आगे वाले ने खुर्रम की कोठरी के दरवाज़े का मज़बूत लोहे से बना ताला खोला और एक ओर हटकर खड़ा हो गया। पीछे वाले दोनों सिपाहियों ने उसे अंदर धकेल दिया। आगे वाले सिपाही ने फिर से ताला बंद किया और तीनों सिपाही वापस चले गए।

सिपाहियों के जाते ही उसने कोठरी में इधर-उधर देखा और फिर दाईं दिवार से लगकर बने सीमेंट के बिस्तर पर बैठ गया। कुछ देर बैठे रहने के बाद वह एक हाथ सिर के नीच। तकिये की शक्ल में रख और दूसरा आँखों पर रखकर लेट गया। वह सो गया था। जब वह उठा तो रात चढ़ चुकी थी, खाने का समय हो गया था। जैसे ही वह उठकर बैठा खाना देने वाला आ गया। उसने अपना खाना लिया। खाया। फिर थोड़ी देर बैठा। उसके बाद फिर लेट गया। वह रात भर सोता रहा। सुबह भी वह तभी उठा जब फिर से खाना देने वाले ने आकर उसे जगाया। उसने खाना लिया। खाया, फिर सो गया। दोपहर में भी वह खाना खाने के लिए उठा और फिर सो गया। रात को भी वह खाना खाते ही सो गया। तीन दिन तक वह ऐसे ही खाता और सोता रहा था। चौथे दिन भी वह रात में खाना खाकर अपने बिस्तर पर लेट गया। लेकिन वह सोया नहीं। शायद उसकी नींद पूरी हो गई थी। उसने मस्ती में इधर-उधर दो-चार बार करवट बदली और फिर अच्छी तरह भरे अपने पेट पर आराम से हाथ फेरा और ईश्वर का शुक्र अदा करते हुए खुश होकर कहा, ''भगवान् तेरा शुक्र है...।''

वह सीधा होकर लेट गया। इसके बाद मानों खुद से बुदबुदाते उसने कहा, ''उससे तो ये जेल अच्छी है... कम से कम यहाँ पेट भर खाना और आराम तो मिलता है...।''

उस आदमी के कपड़ों और जिस्म से उठती तीखी गंद खुर्रम को उसके पास जाने से रोक रही थी। लेकिन वह पिछले तेरह महीनों की चुप्पी से थक चुका था। वह बात करना चाहता था, लेकिन कोई था नहीं जिससे वह बात कर सकता। कई बार तो लगातार चुप रहने के कारण उसे लगता कि कहीं उसकी आवाज़ ही गुम न हो जाए। जब उसे इस तरह का शुबहा होता तो वह खुद से ही बोलकर देखता। जीभ को आगे-पीछे ले जाकर चेक करता

संपर्क: रेख़्ता फाउंडेशन, द्वितीय तल, बी-37, सेक्टर- 1, नोएडा (गौतमबुद्धनगर) यू.पी.।
ईमेल: 786shahadatkhan@gmail.com
मोबाइल: 7065710789

कि उसके ऊपर-नीचे होने और दाँतों में लगाने से आवाज़ निकलती या नहीं। वह अपना नाम लेता, फिर अपने बच्चों का और फिर वह वो सब कहता जो उसने अदालत में कहा था, अपनी बेगुनाही के बारे में। लेकिन उसके पास न वकील था और न ही कोई ठोस सबूत, इसलिए उसकी दलील को अनसुना करते हुए अदालत ने उसे पुलिस के हवाले कर दिया गया था, जिसने उसे जेल भेज दिया था। एक अलग कोठरी में। जिसके दूसरे कैदी को उसके आने के दो दिन बाद ही कहीं ओर भेज दिया गया था और वह अकेला रह गया था। कोठरी में न हवा आने की कोई जगह थी न रोशनी के लिए कोई बल्ब। बस उसकी पिछली दिवार पर एक छोटा सा रोशनदान बना हुआ था। उससे रात में ठंड़ी हवा के हल्के-हल्के झोंके आते, तो दिन में उसी के आकार का नीला आसमान दिखता। दाएँ -बाएँ की दिवार से लगते हुए सीमेंट के कम ऊँचाई वाले बिस्तर बने हुए थे और उन पर एक-एक काला, फटा और बदबू मारता कंबल पड़ा हुआ था। कोठरी से बस उसे दिन में एक बार बाहर निकाला जाता। वह भी सुबहा में... टट्टी-पेशाब के लिए। अगर बीच में उसे पेशाब आता तो वह कोठरी के ही एक कोने में कर लेता। उस कोने में एक छोटा सुराख था जिससे रिसकर पेशाब बाहर निकल जाता था। उस जेल में और भी कैदी थे पर उसे खतरनाक कैदी घोषित कर उनसे दूर रखा गया था। इस तरह पिछले तेरह महीनों से वह कोठरी ही उसकी दुनिया थी। वह सारा दिन उसी में पड़ा रहता। उसके लिए वह जेल के अंदर एक और कैद थी। यानि एक साथ दो कैद। पर किस जुर्म में? उसे तो अभी तक ये भी नहीं पता था कि आख़िर उसका गुनाह क्या है जो उसे उसके हँसते-खेलते परिवार में से उठाकर यहाँ बंद कर दिया गया है?

उस दिन वह देर रात गए कारखाने से लौटा था। उसकी बीवी खाना बना रही थी और बच्च। स्कूल का काम कर रहे थे। आकर उसने हाथ-मुँह धोया और फिर बैड पर जाकर बैठ गया। उसकी बीवी उसके लिए एक कटोरी में सालन और चंगेरी में गरम-गरम रोटी ले आई। उसने रोटी का एक टुकड़ा तोड़ा ही था कि तभी एकाएक बाहर शोर होने लगा और उसके दरवाज़े पर एक साथ कई हाथ थपथपा पड़े। उसकी बीवी और बच्च। डर गए। उसने अपने तोड़ा टुकड़ा ज्यों का त्यों छोड़ा और उठकर दरवाज़ा खोला। बाहर एक साथ बहुत से पुलिस वाले खड़े थे। उन्होंने उसे पकड़ा और अपने साथ ले जाने लगे। उसने कई बार पूछा पर उनमें से किसी ने कुछ नहीं बताया। आस-पास के काफी लोग इक्ट्ठे हो गए... उसकी बीवी और बच्च। भी बाहर निकल आए। वे रो रहे थे और पुलिस से उसे छोड़ देने की गुजारिश कर रहे थे। लोग भी उसका कसूर पूछ रहे थे और पुलिस के नज़दीक घेरा बनाते जा रहे थे। लेकिन पुलिस ने किसी की नहीं सुनी और सबको धकियाते हुए उसे गाड़ी में बैठाकर अपने साथ ले गई। अगले दिन के अखबारों में शहर के रेलवे स्टेशन के पास बम धमाका की खबरें छपी थीं, साथ में पुलिस गिरफ़्तारी में उसकी तस्वीर भी। ख़बर में लिखा था कि पुलिस ने एक आतंकी को पकड़ लिया है और दूसरा अभी फरार है। स्टेशन में पुलिस ने उसे हफ्ते भर लगातार मारा। करंट लगाया, उसके बाल खींचे, नाखून प्लास से उखाड़ लिए, घुटनों के नीचे लाठी देकर और उसके सिरों पर हाथ बाँधकर, फिर ऊपर छत के कुंडे में लटका कर उस मारते रहे। तब तक, जब तक वह मरनासन्न अवस्था में नहीं चला गया। उसी हालत में एक पुलिस वाले ने उसके अंगूठे के निशान कुछ कागज़ों पर लगवाए। इसके बाद उसे स्टेशन की पिछली कोठरी में बंद कर दिया गया था। तीन महीने तक वह वहीं पड़ा रहा था। ज़ख़्मी, भूखा प्यासा। चौथे महीने उसे अदालत में जज के सामने पेश किया गया। वहाँ पुलिस ने उसे शहर के रेलवे स्टेशन पर हुए बम धमाके का मास्टरमाइंड बताया और इसके सबूत में वह पेपर दिए; जिनपर उस बेहोशी की हालात में उन्होंने उसके अंगूठे के निशान लगवाए थे। उसे न तो कोई वकील ही दिया गया था और न ही उसके पास अपने पक्ष में देने के लिए कोई दलील थी। वह उस जख्मी हालत में भी जितना बोल सकता था, रो सकता था। वह अपनी बेगुनाही के बारे में बोला, रोया पर अदालत ने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। पुलिस ने अदालत से उसकी कस्टडी माँगी, जिसे अदालत ने स्वीकर कर लिया और उसे फिर से पुलिस के हवाले कर दिया। अदालत से निकालकर पुलिस ने उसे एक वैन में बिठाया और इस नामालूम जेल की इस सीलनभरी कोठरी में लाकर बंद कर दिया। वह तब से यहीं पड़ा हुआ है।

और अब यह दूसरा कैदी... जो खुद से ही बुदबुदा रहा था। उसने बात करने के हाथ आए इस मौका को गंवाना अच्छा नहीं समझा और बात को आगे बढ़ाने के लिए पूछा, ''इससे पहले भी तुम जेल में रह चुके हो...?''

''जेल...? नहीं भाई, मैं तो पहली बार जेल आया हूँ...।''

''फिर किस जेल से तुम इस जेल को अच्छा बता रहे हो...?''

''उससे तो लाख गुना अच्छी है जहाँ से मैं निकलकर आया हूँ...।''

''कहाँ से निकलकर आए हो, भाई?''

''क्या बताऊँ ... बहुत लंबी कहानी?''

''तुम्हें मालूम होना चाहिए, हमारे पास वक्त की कमी नहीं है।'', खुर्रम ने उसे ध्यान दिलाते हुए कहा।

''तो ठीक है, सुनो...'', यह कहकर वह उठकर दिवार से टेक लगाकर बैठ गया। उसने अपनी कहानी कहते हुए बोलना शुरू किया, ''मैं एक गरीब गाँव का रहने वाला हूँ। वहाँ हम लोग खेत में काम किया करते थे। सबके सब। मेरे माँ-बाप, चाचा-चाची, मैं और मेरे दूसरे बहन-भाई... सब। पर वो हमारे खेत नहीं थे... ज़मीनदार के था। सब खेत उसी के थे और पूरा गाँव उसके खेत में काम किया करता था। उसके एवज में जो ज़मीनदार देता उससे लोग पूरे साल अपना घर चलाते थे। सब कुछ ठीक था। अगर हर साल बाढ़ न आया करती तो। जिसका आने से सबकुछ तबाह हो जाता था। बाढ़ का पानी अपने साथ सब कुछ बहा कर ले जाता... फसल, जानवर, घर, और साथ में एक दो दर्जन आदमी भी। लोग खुद की और अपने परिवार वालों की जान बचाने के लिए उन्हें लेकर पहाड़ों, राज्य हाईवे, नेशनल हाईवे और राहत शिविर में चल जाते। जहाँ कुछ नहीं होता। सिवाए टैंट के कपड़े के बने झोंपड़ों के। न खाने का सामान, न पानी, न कपड़े और न ही दूसरी चीज़े। कुछ नहीं होता वहाँ। पर हाँ

बीमारियाँ बेशुमार मिलती थीं। बाढ़ की खबरों से अखबारों के पन्ने भर जाते। सरकार खाना, कपड़े, दवाइयाँ और न जाने क्या-क्या भेजने का दावा करती। पर हमारे यहाँ कभी कुछ नहीं आता। मुखिया (मुख्यमंत्री) का हेलीकाप्टर भी ईश्वर की तरह ऊपर से ही देखकर चला जाता। बाढ़ के बाद जब पानी उतरता और लोग वापस लौटते तो उन्हें अपनी जिंदगी को फिर से नए सिरे से शुरू करना पड़ता। सब कुछ... हर एक चीज़... दोबारा समेटने पड़ती।

''अपने क़ायदे के मुताबिक उस साल भी बाढ़ आई थी। पर जैसी बाढ़ उस साल आई थी न तो वैसी उससे पहले आई थी और न ही उसके बाद। वह ऐसी बाढ़ थी कि उसने घर खेत के अंतर को खत्म कर दिया था। सब कुछ समलत कर दिया था। गाँव के आधे से ज्यादा लोग उस बाढ़ के पानी के साथ बह गए। पशुओं का भी कुछ पता नहीं चला... घर इस तरह बह रहे थे जैसे बच्चे कागज से नाव बनाकर बारिश के पानी पर चलाते हैं। मेरे चाचा-चाची भी उस बाढ़ में बह गए थे। साथ में उनकी छोटी बेटी भी। हमारे सारे जानवर भी बह गए। उस वक्त हर कोई खुद को बचाने के चक्कर में लगा हुआ था। किसी को किसी की खबर नहीं थी। बाद में पता चला कि बाढ़ अपने साथ मेरी माँ, दो छोटी बहनें और एक भाई को भी बहा ले गई थी।

''जब बाढ़ का पानी कम हुआ तो लोग अपने चटियल हो चुके घरों को लौटने लगे। पर तब वहाँ कुछ नहीं बचा था। न खाने के लिए अनाज और न करने के लिए काम। जो जवान थे या हो रहे थे, वे सब लोग एक झुंड में काम की तलाश में शहरों की ओर चल दिए और बूढ़े लोग अपनी भूख मिटाने के लिए सरकार द्वारा बनाए शिविरों में जा पड़े। गाँव में रहने या करने के लिए कुछ नहीं बचा था इसलिए शहर जाने वाले लोगों के झुंड़ में मैं भी शामिल हो गया और शहर चला आया। यहाँ आकर कुछ लोग होटलों, ढ़ाबों में लग गए तो कुछ सड़क, घर, बिल्डिंग बनाने वाले ठेकेदारों के पास मजदूरी करने लगे। मुझे भी एक बनिये के यहाँ परचून की दुकान पर नौकरी मिल गई। जहाँ मैं यहाँ आने तक काम करता रहा।

''उसकी दुकान पर मेरे पड़ोस के गाँव का एक आदमी मुझे लेकर गया था। पहले दिन उसने मेरा नाम पूछा, मेरे बाप का नाम, गाँव का पता पूछा और फिर मुझे काम पर रख लिया। इसके साथ ही उसने मुझे खाना और रहने की जगह भी दी। दुकान के पीछे बने गोदाम में, जो हमेशा गेहूँ, चावल, दाल, तेल के टीन और बाकी दूसरे सामनों से हर वक्त भरा रहता था। मैं उसके यहाँ रहने लगा और काम करने लगा। पर उसने कभी मुझसे तनखाह के बारे में कुछ नहीं कहा। मैंने भी कुछ नहीं पूछा। बस मैं काम करता रहता। सुबह ही उठ जाता। दुकान के बाहर झाडु लगाता, दुकान खोलता, सामान बाहर रखता और फिर सारा दिन ग्राहकों के लिए अंदर से मालिक को सामान ला लाकर देता रहता। इसके साथ ही मुझे कभी-कभी उसके घर के काम भी करने पड़ते। उसका घर दुकान के बगल में ही था। उसमें एक छोटा दरवाज़ा भी बना था जो दुकान और गोदाम दोनों तरफ खुलता था। मालकिन वहाँ से मुझे आवाज देती और कभी सब्जी लाने भेज देती तो कभी धोबी के यहाँ धुले कपड़े। कभी जूते पॉलिश करने के लिए तो दूसरे कामों के लिए। एक बार वहाँ के आने बाद मैंने नौ महीने बाद अपने गाँव जाने के लिए कहा। पहले तो मालिक मुझे भेजने से आनाकानी करता रहता। पर फिर वह मान गया। घर जाते वक्त जब मैंने अपनी तनखाह माँगी तो उसने मुझे दस हजार रुपये दिए और कहा कि बाकी रुपये तुम्हारे आने के बाद दे दिए जाएँगे।

''मैं गाँव गया। गाँव में तब कुछ नहीं बचा था। बीते नौ महीनों में परिवार के अकेले आदमी की यानि मेरे बाप की भी मौत हो चुकी थी और जहाँ हमारा घर था, वहाँ अब मेरी बुआ रहती थी। मैं गाँव में हफ्ते भर रहा और खुद के लिए कपड़े, जूते खरीदने और किराये के बाद जो रुपये बच। थे वो सब मैंने अपनी बुआ को दिए और वापस शहर चला आया। उसके बाद मैं फिर कभी गाँव नहीं गया। मैं लाला के यहीं रहने लगा। उसकी दुकान में।

''गाँव से आने के कुछ बाद मालिक ने मेरी तनखा तय की, खाने और रहने का किराया काटकर 2200 रुपये महीना। वह मुझे हर महीने की पाँच तारीख को मेरी तनखाह देता। जिनमें से मैं कभी अपने लिए जूते, कपड़े खरीद लेता और बाकी रुपये जोड़ लेता। तीन साल तक जिंदगी इसी तरह चलती रही। इन बीते चार सालों में मैं काफी बदल गया था। मैं लंबा और चौड़ा हो गया। एक दिन जब मैं शाम को दुकान बंद करके अपनी सोने की जगह पर जा रहा था तो छोटे दरवाज़े से लाला ने मुझे अपने घर बुलाया। मैं उनके पास चला गया। वहाँ जाकर उन्होंने मुझसे पूछा, ''शादी करोगे?''

''पहले तो मैं समझा नहीं। पर फिर मैं शरमा गया। इस पर उसने दोबारा कहा, ''तुम यहाँ कब तक रहोगा? हम सोच रहे हैं कि तुम्हारी सीना से कर दें।''

''सीना उनकी घरेलु नौकरानी थी। उसके माँ-बाप नहीं थे। वह अकेली थी। मेरी तरह वह भी लाला के घर में रहती थी और उनके घर का सारा काम करती थी। मैंने उसे पहले देखा था। मुझे वह पसंद थी। मैंने हाँ कर दी और सीना से मेरी शादी हो गई। शादी के बाद हमने एक बस्ती में जिसे यहाँ लोग जे.जे. कालोनी (झुग्गी झोंपड़ी वालों की कालोनी) कहते हैं, वहाँ एक कमरे का घर जिसमें रसोई और आगे थोड़ा सा आँगन भी था 800 रुपये महीना किराये पर ले लिया। पिछले तीन सालों में जो रकम मैंने जोड़ी थी उसमें कुछ शादी में खर्च हो गई और जो बाकी बची थी वह जिंदगी जीने के साधन जुटाने में खत्म हो गई। अब मेरे कुछ नहीं था... सिवाए 2200 से 2500 हुई मेरी तनखाह के।

''अब दोनों हम मियाँ बीबी लाला के यहाँ काम करते थे। वह घर में और मैं दुकान में। जिंदगी हँसी खुशी और साथ में थोड़ी-थोड़ी परेशानी से भरी कट रही थी। पर सच कहूँ तो उन दिनों मैं खुश था। बहुत खुश। बचपन से लेकर उस उम्र तक मैंने जो अभाव, दुख और बैचेनी महसूस की थी, झेली थी वह सब उस वक्त में आकर खत्म हो गई थी। हम दोनों सुबह नाश्ता करके लाला के यहाँ काम के लिए निकल जाते। मैं दुकान खोलता, सामान लगाता और साफ सफाई करता। वह लाला के घर में नाश्ता बनाती, बर्तन साफ करती, झाड़ू पोंछा करती और फिर वह खाना बनाना, कपड़े धोने और दूसरे सब तरह के काम।

''दो साल बाद हमारा पहला बच्चा पैदा हुआ। इसके साथ मेरी पत्नी की तबीयत

खराब रहने लगी। उसके पेट में दर्द होता था। पहले तो दो चार महीने में एक बार होता था पर फिर महीने में कई बार होने लगा। वह भी ऐसा कि जब उसे दर्द उठता तो वह ऐंठ-ऐंठ जाती। उसका शरीर दोहरा हो जाता। मुँह से आहें निकलना बंद हो जातीं और बेहोश हो जाती। मैंने बहुत से डॉक्टर को दिखाया पर उन्होंने भी कभी कुछ नहीं बताया कि आखिर मरज क्या है? क्या बीमारी है? बार-बार ये दर्द क्यों उठता है? बस देखा। दवा दी और चलता कर दिया। पर जब उसे दूसरा बच्चा पैदा हुआ तो ये हर रोज़ की बात हो गई। इसके साथ वह इतनी कमजोर हो गई थी कि उससे बिना सहारे के चला भी नहीं जाता था। उसने लाला के घर काम पर जाना कम कर दिया। कभी-कभी तो वह हफ़्तों नहीं जाती। इससे तंग आकर मालकिन उसे काम से निकाल दिया और दूसरी नौकरानी रख ली। अब वह सारा दिन घर में ही पड़ी रहती। दर्द से तड़पती। ऐंठती और रोती। इधर मुझे उसकी दवाइयों के लिए लाला से बार-बार रुपये लेने पड़ते थे। वह जो तनखाह मुझे देता था, उससे तो सही से हमारा घर भी नहीं चलता था। मेरी पत्नी के सहारे से बस वह किसी तरह चल रहा था। लेकिन जब से उसकी तबियत खराब हुई थी और मेरी तनखाह उसकी दवाई में खर्च हो जाती तो हमारा पास खाने को कुछ नहीं बचता था। लाला से पेशगी ले लेकर उसका मुझ पर ही क़र्ज़ हो गया था और अब मुझे तनखाह देने से पहले अपने पैसे काटता। मैं क्या करता। उसके सामने रोता, झिझकता, उसकी खुशामद करता। अपने बच्चों और बीमार पत्नी का वास्ता देता। तो भी उसका दिल नहीं पसीजता था। वह मुझे गालियाँ बकता और हरामी, नमकहराम कहता। वह कहता पहले पिछला चुकाओ तब आगे लो। अब मैं पिछला कहाँ से लाऊँ। अगर मेरे पास रुपये होते तो मैं उससे माँगने ही क्यों जाता? पर उस पर इस सब का कुछ असर नहीं होता। मना तो मना।

''इसी बीच मेरी पत्नी ने तीसरे बच्चे को जन्म दिया। तीन दिन से घर में कुछ नहीं पका था। मेरे दोनों छोटे-छोटे बच्चे भूख से तड़प-तड़प जा रहे थे। उधर वह हड्डियों की ढाँचा बनी टूटी चारपाई पर पड़ी थी, जिसकी बगल में एक नई जिंदगी कुलबुला रही थी और भूख से रो रही थी। ये सब देखकर मेरा दिल टूट गया। मेरी समझ नहीं आ रहा था कि मैं अब इनके खाने के लिए कहाँ से लाऊँ?

मैं घर से निकल गया। रात एक पहर बीत चुकी थी। सड़के सुनसान थी। इक्का-दुक्का गाड़ियाँ ही अपनी लंबी लाईट फेंकती हुई पलक झपकते ही आँखों के सामने से गुज़रती जाती। मैं चलता हुआ बाजार को पार कर गया। जब मैंने नजरें उठाकर देखा तो सामने लाला की दुकान थी। मैं गली में घुसा। जैसे तैसे करके दिवार पर चढ़कर टीन की छत को पार करता हुआ बदहवाश और घबराया हुआ गोदाम में कूद पड़ा। दिमाग काम नहीं कर रहा था और दिल इतनी जोरों से धड़क रहा था कि ऐसा लगता था कि जैसे अभी बाहर निकलकर गिर पड़ेगा। मैंने एक चावल का कट्टा उठाया। एक खाली थैले में थोड़ी सी दाल डाली। एक दो और खाने का सामान थैले में डाला और चल पड़ा। पर जब निकला तभी छत से लाला के बेटे ने मुझे देख लिया। वह चोर-चोर कह कर चिल्लाने लगा। सब दौड़ पड़े और मुझे पकड़कर खूब मारा। लाला ने पुलिस को बुला लिया और मुझे उसे दे दिया। चोरी करने के साथ उसने मुझसे घर से एक लाख रुपये और गहने चुराने का भी इल्जाम लगाया। पुलिस ने चोरी का माल निकलवाने के लिए मुझे खूब मारा। वह दो दिन तक मुझे मारते रहें। जब मैं बिल्कुल मरने को हो गया तब उन्होंने मुझे छोड़ा। मैं लहूलुहान हालत में थाने में पड़ा अपने भूखे बीवी बच्चों के बारे में सोच रहा था और रो रहा था। उसके दो दिन बाद ही पुलिस वालों ने मुझे वहाँ से निकाला और यहाँ लाकर कैद कर दिया।

अपनी कहानी कहकर नए कैदी ने एक लंबी साँस ली और अपने दोनों पैर फैला लिए। फिर उसने कहा, ''ये है मेरी कहानी...। अब तुम बताओं, तुम यहाँ किसलिए हो?''

ख़ुर्रम जो बड़े ध्यान से उसके एक-एक लफ्ज़ को सुन रहा था। उसने उसके पूछे सवाल के जवाब में कहा- ''मैं... मैं मुस्लिम हूँ ना, इसलिए।''

***

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2018

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पीटू

संजय कुमार अविनाश

छोटे भाई का बेटा एक बादामी रंग का पिल्ला उठा लाया, उठा लाया अर्थात् समझ ही रहे होंगे। उसके द्वारा पिल्ला लाना और घर में चिल्ला-चिल्ली होना, आम बात हो गई। आज भी कुछ परिवार में कुत्ता पालना हेय दृष्टि से देखा जाता है। इसी दृष्टिकोण के चंगुल में जकड़े खासकर माँ, पिता और पत्नी नीमा को कुत्तों से ईर्ष्या थी। मुझे मालूम नहीं क्या कारण रहा हो, लेकिन पूजा-पाठ में विघ्न समझ आता था। भतीजा राज उस पिल्ले को खाना खिलाकर घर के बाहर किसी खोह में छुपा देता। समय बीतता गया और वह पिल्ले को आँगन में रखने लगा। उस पिल्ले पर मेरी बेटी की लालची नज़र लग गई थी। किसी-किसी रात को पिल्ला इतना चिल्लाने लगता कि नींद टूट जाती और माँ के साथ नीमा भी चिल्लाने लगती, ''कुत्ता-बिल्ली पालने की चीज़ है? अरे! गाय पालने से दूध देती....बच्च। दूध पीकर हृष्ट-पुष्ट होते।'' इन लोगों की बातों को दरकिनार करते हुए सोचने लगा और समझ में आया कि पिल्ला का चिल्लाना भूख की ओर इशारा कर रहा है। घर से बाहर निकलकर आँगन में आया और प्यार से उसे ढूँढ़ निकाला। दरअसल, ढूँढ़ना इसलिए होता था कि माँ और नीमा की आवाज़ सुनकर वह कहीं दुबक जाता था। उसे कुछ खाने के लिए देता, फिर वह चुपचाप बैठ जाता। मेरे सोने के पश्चात शनैः-शनैः पास आ जाता और बिछावन के आसपास छुप जाता। कभी-कभार नींद में करवट फेरने के दरमियान उसका स्पर्श भयभीत कर देता तो गुदगुदी भी होती। फिर उसे अपनी चादर से ढँक देता ताकि ठंड न लगे। वह सुकून महसूस करता और सबेरे-सबेरे उसे बाहर भी कर देता था। इस प्यार को अधिक दिनों तक छुपा नहीं सका। बीच-बीच में नीमा देख लेती तो झुँझलाने लगती और धमकी भी देती कि माँ जी को बताती हूँ। पिल्ले की ख़ातिर पत्नी को जवाब नहीं दे पाता और उसे अपनी बातों में उलझा लेता था। हम दोनों की बातें सुनकर अन्नू मज़बूत होती जा रही थी और मन-ही-मन खुशी के साथ पिल्ले पर खुलकर स्नेह लुटाने लगती।

स्वाभाविक है जब तक मनुष्य का किसी से लगाव न हो, कशिश न हो तो वह वस्तु धूल समान होती है। लेकिन ज्यों ही अपनापन हो जाता है तो उसका नामाकरण करना सुखद नियति में शामिल हो जाता है। स्नेह -बंधन में बंध जाए तो प्यारा सा नाम दिया जाता है। मैंने भी उस पिल्ले को ''पीटू'' नाम दिया। पीटू नाम से वह जाना जाने लगा। धीरे-धीरे घर के सदस्यों के बीच निर्भीक होकर रहता और कभी आँगन के बाहर तो कभी घर के अंदर टहलता रहता। हाँ, किसी दिन बाहर से मरे हुए जानवर के टुकड़े को लेकर आँगन में आ जाता तो इस वीभत्स दृश्य को देखते ही घर में वबाल मच जाता था। सब कोई डाँटने लगते तो किसी से डंडा भी लगता। पीटू कभी टुकड़े को लेकर भाग जाता था तो एकाध बार आँगन में ही छोड़कर वह निकल जाता। उस दिन उसे घर में प्रवेश करने पर रोक लग जाती। पूरे घर-आँगन की सफाई होती और इस सफाई में अन्नू बढ़ चढ़कर भाग लेती थी

लखीसराय, बिहार के संजय कुमार अविनाश के तीन उपन्यास हैं-अंतहीन सड़क, नक्सली कौन?, कोठाई शुरूआत और कल, किसने देखा कहानी संग्रह है। भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में संजय कुमार अविनाश की कहानियाँ प्रकाशित होती हैं।
संपर्क:वंशीपुर मेदनी चौकी, पोस्ट-अमरपुर, जिला - लखीसराय, बिहार 811106
ईमेल: lakhisaraia11@gmail.com
मोबाइल: 9570544102

ताकि पीटू पर से गुस्सा कम हो। हाँ, डाँटती अन्नू भी लेकिन जब पीटू की पिटाई होने लगती तो वह मायूस हो जाती। वैसे तो, डंडा देखते ही पीटू ज़मीन पकड़ लेता था। मानों, खुद का समर्पण कर दिया हो, अपनी ग़लती कबूल कर ली हो। फिर उसकी हालत देखकर एकाध डंडे से ही छुट्टी मिल जाती। संध्याकाल घर आते ही मुझे पीटू की हज़ार शिकायतें सुनने को मिलने लगतीं। पत्नी घर में प्रवेश करने से रोके रहती। इसलिए कि मेरे ठीक पीछे पीटू रहता था। जिस दिन पीटू की ग़लती रहती, वह दरवाज़े के बाहर ही मेरे इंतजार में रहता था। मेरी आहट सुनते ही लल्लोचप्पो करने लगता और नज़दीक आते ही अपने पैरों से शर्ट-पैंट को नेस्तनाबूद कर देता। फिर पीछे-पीछे घर में प्रवेश कर जाता। उस दिन उसे देखते ही नीमा झुँझलाने लगी, ''ई आज मरी लाया था। घर को नरक बना दिया। पहले से कहती थी, कुत्ता-वुत्ता नहीं रखने के लिए। कुत्ता तो छोटी जात के लोग पालते हैं। भला, अशराफी जात कुत्ता-बिल्ली पालता है?''

ज्योंही पीटू के पक्ष में बोलने को सोचा कि माँ शुरू हो गई, ''ठीक बोलती है छोटी बहू! इससे बेहतर तो बकरी है, साल में दो-चार बच्चे। देती है, फिर बच्चे। के बच्चे। इसने दो-ढ़ाई साल में क्या दिया और ऊपर से घर का अनाज गीला?''

मैंने उसे समझाने की कोशिश की, ''तुम तो देख रही हो, इसके रहने से कोई परेशानी तो नहीं है। जब से आया है, बच्चे भी खुश और व्यवसाय में भी वृद्धि हुई है। और हाँ, कोई किसी के लिए नहीं बना है, न ही किसी के सहारे दुनिया चल रही है, हर कोई अपने भाग्य से खाता है। पूजा-पाठ करती हो, व्रत भी रखती हो, उसी किताब में तो लिखा है, ''प्रत्येक जीव ईश्वर के द्वारा बनाया हुआ है, हरेक प्राणी में ईश्वर वास करते हैं! ईर्ष्या किस बात की?''

मेरी बात सुनकर कुछ देर के लिए समझ जातीं, लेकिन किसी-किसी दिन आग-बबूला हो जाती और बुरा-भला कहने लगती। उसकी बातें सुनकर मैं भी अवाक रह जाता। फिर क्षणभर में नहाने की बात पर बातें खत्म होतीं। पीटू को चापानल पर ले जाता, उसे नहलाता और खुद भी नहाता। ठंडी हो या गरमी उसकी सज़ा को साथ-साथ भुगतना पड़ता था।

इस प्रकार पीटू के प्रति दुलार-प्यार बढ़ता गया। जब तक माँ और पत्नी पीटू को दुत्कारती रही तब तक राज और उसकी माँ मुस्कुराती रही। पीटू के प्रति स्नेह का बढ़ना उसे मायूस करने लगा। अनायास हमसबों के प्यारे बन गए पीटू को उन्होंने कब्जे में ले लिया। राज पीटू को रस्सी से जकड़ कर रखता था, ताकि मेरे पास न आ सके। मैं जब काम से लौटता तो पीटू उछलने-फाँदने लगता था, लेकिन वह तो बेचारा हो गया। छटपटा कर रह जाता। किसी-किसी दिन छुट्टा पाकर मुझसे लिपट जाता और अपनी जीभ से शर्ट-पैंट, बदन यहाँ तक कि चेहरे को भी चाटने लगता। फिर राज देखता और बुदबुदाता हुआ, लप्पड़-थप्पड़ मारते हुए ले जाता और मैं देखता रहता। इतने में घर से आवाज़ आई, ''मैं अपने लिए पाली हूँ, पेटभर खाए या न खाए हम समझेंगे.... औरों के यहाँ खीर-पूरी से हमें क्या मतलब। आदमी को दाना न मिले और इसे साबुन से नहाना'', मैं भूखी ही रहूँगी तो अपने घर में रहूँगी, दूसरों से कोई लोभ-लाभ नहीं।'' उसकी बात सुनकर स्तब्ध रह गया, तो पीटू के नाम पर तंज़ को भी हवा में उड़ा देता। फिर भी उसकी बातें सुनकर बच्चों के साथ मुझमें भी मायूसी छाने लगती। आख़िरकार उसका पिल्ला समझकर चुप हो जाता। पीटू भी मायूस रहने लगा। भौंक लेता था लेकिन काटना उसके हिस्से में नहीं। तब उसकी उम्र लगभग दो वर्ष की हो चुकी थी। किसी-किसी दिन तो आधी रात तक गायब। कभी भी आता और दरवाज़ा पीटना शुरू। दरवाज़ा पीटने की आवाज़ से समझ जाता कि पीटू ही होगा। यही समय था, जब पीटू को सहला सकूँ। झटपट दरवाज़े के पास जाता और खड़ा हो जाता, उसकी समझदारी को दाद देनी होगी कि वह भी समझने के लिए चुप हो जाता और मैं भी चुप कि पीटू है या नहीं। फिर दरवाज़ा खोलता और खोलते ही उसकी शरारत शुरू.... मुझे सुकून मिल जाता कि आज स्पर्श तो हुआ... सुबह होता तो अपने काम से निकल जाता, पीटू भी कहीं दुबका रहता था। घर से निकलते समय आवाज़ सुनाई पड़ी, ''कुत्ता है कुत्ता, कोई मुर्गी नहीं जो दो-चार रुपये का अंडा भी दे....दे--फिर ई कुत्ता के लिए काहे का बैर...?''

बातों को अनसुना कर दूकान की ओर निकल गया। इस बीच सोचता रहा, मैं तो दिनभर काम में व्यस्त रहता हूँ लेकिन उसे तो कोई काम नहीं.... न जाने वह कितना मायूस रहता होगा?

मुझे याद है, पीटू घर के सभी सदस्यों से हिलमिल गया था। बच्चों के साथ खेलना, खाते समय बगल में बैठे रहना, बीच-बीच में बच्चों के द्वारा रोटी देना, पूँछ हिलाना तथा दबी जुबान से गुरगुराना भी उसकी आदत में शामिल हो चुका था।

किसी कारणवश मुझे दो दिनों के लिए जेल जाना पड़ा। ईर्ष्या के कारण झूठे केस में फंसाया गया था। उस दिन घर में मातम छा गया और पीटू की भी मायूसी बढ़ गई। उसकी मायूसी साफ झलकने लगी थी। उसकी दशा देखकर सारे सदस्यों को अहसास हो गया कि पीटू किसी मनुष्य से कम नहीं। आत्मीयता का मज़बूत उदाहरण बन गया था। घरवाले तो आगे-पीछे की बात सोच-समझकर धैर्य के साथ काम लेने में लगे थे। सभी लोग आपस में बातें करते तो पीटू टुकुर-टुकर निहारा करता, हरेक की बात को ध्यान से सुनता भी था। लेकिन जब सभी लोग खाना खाने लगते तो पीटू मुँह को दूसरी तरफ घुमाकर बैठ जाता। मानों, बीमार पड़ गया हो। किसी ने उसके सामने खाना दे दिया तो वह बाहर निकल जाता।

पिछले दिनों से पीटू की आदत देख उसपर झुँझलाते भी लोग, पुचकारने की बात दूर चली गई थी। कारण घर के कमाऊ का जेल जाना चिंता का विषय बन गया तो भला उसे कौन पुचकारता। ये सारी बातें तब सुनने को मिली, जब दो दिन पश्चात् जेल से छुटकर आया था।

रात के करीब नौ बजे आना हुआ था। साथ में एक चचेरे भाई और पिताजी थे। न्यायालय ने एक दिन बाद ही जमानत दे दी थी लेकिन कागज़ी चक्कर में दो रात रहना पड़ा। घर से कुछ दूर ही था कि कदमों की आहट ने उसे प्रफुल्लित कर दिया, वह दौड़कर करीब आया और रास्ता रोक लिया। मैं सोच रहा था कि जल्दी घर पहुँच जाऊँ, वह सोच रहा था, पहले मुझसे बात कर ले। वह उछल-फान किए जा रहा था, उसकी

मंशा थी कि पूरे बदन को चाटूँ। उसे मैं रोक रहा था, लेकिन वह मानने को तैयार ही नहीं। आख़िरकार उसके सिर पर हाथ रखा, उसे पुचकारा तब जाकर उसने माना और आगे-आगे पीटू, पीछे-पीछे मैंने घर में प्रवेश किया। न जाने वफादारी का पाठ किस पाठशाला में लिया था और उसके शिक्षक कौन थे? ईमानदारी की सीख किसने दी...? उसकी बानगी देखिए, जब कभी रात्रि में लघुशंका के लिए बाहर निकलता तो मानों, उसे भी लघुशंका की दरकार पड़ गई हो। प्रत्येक दिन की यही कहानी थी, आगे-आगे वह चलता, पीछे-पीछे मैं। उसकी आँखें जैसी भी हों लेकिन आहट से किसी को पहचानना बड़ी गजब की अनुभूति दे गई। एक बार लघुशंका जाने के दरमियान पीटू चौंक गया था और अपने पैरों से ज़मीन को कुरेदने लगा तो क्षणभर में पीछे मुड़कर मुझे आगे बढ़ने से रोकने लगा। मैंने सोचा, वह बदमाशी करने पर तुला हुआ है। उसकी शरारत देख उसे डाँटा, कारण लघुशंका की तीव्र इच्छा थी, मैं आगे बढ़ना चाहा। लेकिन वह इतना बदमाश कि आगे बढ़ने ही नहीं देता था। मैं रुक जाता तो वह पैर, मुँह ज़मीन पर रगड़ने लगता। उसी समय मेरी निगाहें ज़मीन पर गईं और देखा कि एक दो-ढ़ाई हाथ का साँप भागा जा रहा है.... तो इतना दूरदर्शी था, पीटू।

खुशी के दिनों में खुश तो विकटकाल में भी साथ देनेवाला मित्र, अभिभावक समान प्यारा पीटू। उसके साथ आत्मीयता का लगाव अटूट बंधन समान बँध गया। उसके बिना घर सूना-सूना लगता। बच्च। स्कूल से आते-जाते उसे ही ढूँढ़ने लगते। भले वे किसी से न पूछे लेकिन जब पीटू नज़र नहीं आता तो सर्वप्रथम उसे ढूँढ़ लिया जाता, नहीं मिलने के पश्चात् चर्चा होती कि पीटू कहाँ है?

वह दिन विस्मय वाला था, जब मोटरसाइकिल से देवघर गया था और दूसरे दिन लौट भी आया। घर से कुछ ही दूरी पर पटना-भागलपुर मुख्य सड़क है। सड़क किनारे ही देखा कि एक बादामी रंग का कुत्ता लेटा हुआ है। कुछ दूर आगे निकल गया था, फिर मन ने कहा देख लो, कहीं तुम्हारा पीटू तो नहीं....? मुझे भी जल्दबाज़ी थी, लौटकर उसे देखा और उसे पहचान नहीं सका। सोचा कोई होगा, ऐसे रंग के दर्जनों कुत्ते थे गाँव में। वहाँ से चलने के बाद मन में अजीब-अजीब तरह की बातें चलने लगीं, जिसमें एक बात अनहोनी की ओर भी इशारा कर रही थी। घर पहुँचा और देखा, मायूसी ने घर को अपने कब्जे में कर रखा है। सबकी आँखें नम थीं। सर्वप्रथम नीमा बोली पीटू को देखे? उसकी बातों में बिछुड़ने की तड़प थी। जब तक मैं कुछ बोलता कि अन्नू दिखाई पड़ी। उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं। अब आश्वस्त हो गया कि सड़क किनारे पीटू ही है, जो अंतिम दर्शन के लिए पड़ा हुआ है। मेरे स्पर्श की प्रतीक्षा में है। पुनः मोटरसाइकिल स्टार्ट किया और चल दिया मृत आत्मा से मिलने। मानों, किसी अपनों के इंतजार में राह ताक रहा हो। उसके बादामी रंग में निखार था, नहलाया हुआ लग रहा था, कहीं कोई का धब्बा नहीं। उसे देखा और मन-ही-मन प्रणाम किया। उसकी आत्मा की शांति के लिए ईश्वर से कामना की। मुझमें हिम्मत नहीं कि उस जगह पलभर ठहर सकूँ... चल दिया प्रकृति के नियम को भुनाकर... यही तो सच है, जो आया है; वह जाएगा ही! उसे भूल गया और चल दिया अपने कार्यस्थल की ओर ..।

अब ध्यान आया कि देवघर से लौटते समय मेरी भी दुर्घटना सुलतानगंज में हुई थी। सँभालते-सँभालते सँभाल पाया था। अगर वह ओवरब्रिज न होता तो न जाने कहाँ होता... उसी ओवरब्रिज पर मेरी गाड़ी पत्थर से टकराई थी। गिर गया था, कोई क्षति नहीं। हाँ, पैर का अंगूठा फट गया था। स्थानीय लोग बोल रहे थे, ''तोर माय खरजितिया कैलको।''

अपनी दुर्घटना और पीटू की मृत काया से उबरने में देर लगी। बुझे मन से संध्याकाल घर आया। घर में खाना भी नहीं बना था। मातमी सन्नाटा पसड़ा हुआ था। कुछ ही देर में पैर के अंगूठे पर घरवालों का ध्यान गया। उनलोगों के पूछने से पहले मैंने अपनी आपबीती सुनाई। अन्नू बीच में टपक पड़ी, ''दस बजकर पाँच-दस मिनट के बीच पीटू भी.....।'' वह पूरी बात नहीं बोल सकी और मैं शून्य में विचरण करने लगा। खुद पर झुँझला रहा था, जिसने अपनी जान देकर मेरी जान बचाई, उस निर्लोभ पीटू को देखकर निकल गया? उसकी मृत देह को गाड़ियों से कुचलने के लिए छोड़ दिया। खुद को कोसने लगा और अपराध -बोध की दुनिया में उबडुब करने लगा। क्या मनुष्य की यही नियति है। मनुष्य होने का यही प्रमाण है। बुदबुदा रहा था। स्वर में चिंता थी। तभी अन्नू बोली, ''पापा, पीटू बाड़ी (घर के पीछे) में है।'' उसकी बात सुनकर असमंजस में पड़ गया। बिना कुछ पूछे चल पड़ा बाड़ी की ओर। धुँधली रोशनी में कहीं पीटू दिखाई नहीं दे रहा था। हाँ, धूप-अगरबत्ती की सुगंध आ रही थी। अनायास ज़मीन पर भुरभुरी मिट्टी से पैर का स्पर्श हुआ.... अब समझ गया कि इसी के अंदर पीटू लेटा हुआ है। सोचने लगा, यही तो होनी है, न चाहते हुए भी साथ हो जाना होता है। मुझे क्या मालूम कि मुझसे अधिक पीटू चाहता था मुझे। मैं तो उसके बादामी रंग पर मोहित था। देह से माया था। उसके साथ कुछ देर के लिए सुकून महसूस करता था। लेकिन पीटू देह से नहीं, दो रोटी से भी नहीं, बल्कि आत्मा से लगाव रखता था। वफादार, ईमानदार और मानवीयता का प्रतीक था। मुझमें हिम्मत नहीं कि पूछ सकूँ, पीटू यहाँ कैसे? उसी समय मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी, ''माँ जी कंधे पर उठाकर लाई थी, जब आप दूकान चले गए थे। हमसब एक नज़र पीटू को देखना चाहते थे। पीटू का साथ नहीं रहना, हमेशा के लिए कष्टदायक होता। हमसबों ने मिलकर गड्ढे खोदे और यहीं स्थान दिया। अब हमेशा साथ रहेगा। मैं मग्न था कि पीटू पास ही है....सुकून महसूस कर रहा था। इसी बीच बाड़ी के ठीक बगल में कमरे की खुली खिड़की से आवाज़ आई, ''हुँह ... ई सब दिखावटी है, देखेंगे न माय-बाप के लिए क्या करते हैं.... जादा पढ़ा-लिखा लोग ऐसे सुरग में सीढ़ी लगाने की सोचता है.... लेकिन रावण भी लगाने से रह गया...।'' फिर दबी ज़ुबान में आवाज़ आने लगी, ''ह-ह-ह... ई सब से कुच्छो नहीं होनेवाला है, भला, कुत्ता-बिलाय के लिए...''

तत्क्षण आती आवाज़ दब गई, जब धुँधली रोशनी को चीरती हुई आवाज़ आई, ''बेटा, आदमी मर जाता है तो कोई जीकर मरता है।''

***

बड़ा आदमी

गोपाल प्रसाद 'निर्दोष'

उस दिन भी नगरपालिका का चक्कर लगाते हुए लगातार चार घण्टे बीत गए थे। जिस कर्मचारी से उसे काम था, वह आज भी लेट था। मन क्षुब्ध हो गया था उसका। हफ्ते-भर से इस ऑफ़िस के लिए दौड़ लगा रहा था वह...लेकिन, सरकार के लगभग हर ऑफ़िस की तरह इसमें भी उसे समानता ही दिख रही थी। अपनी क्षुब्धता की चरमता के कारण वह अपने आप से ही बात करने लगा, ''इन आरामतलब कर्मचारियों को पहली तारीख़ का इंतज़ार तो रहता है लेकिन ऑफ़िस में कुछ काम भी करना होता है...इस बात का इन्हें तनिक भी ख़्याल नहीं रहता है।

इन कर्मचारियों को इस बात की ज़रा-सी परवाह नहीं रहती है कि ठंढ की इस ठिठुरती हुई सुबह में कोई व्यक्ति भूखे-प्यासे बस एक काम के लिए मीलों चल कर ऑफ़िस पहुँचा होगा और घंटों से उनका इंतज़ार कर रहा होगा...''

निराशा जब अपने चरम पर पहुँच गई और भूख से अंतड़ियाँ कुलबुलाने लगीं, तब उसे ये लगने लगा कि अब कुछ खा लेना चाहिए। लेकिन, दूर जाने पर ऑफ़िस के बाबू के निकल जाने का खतरा हो सकता था जबकि निकट में पकौड़े, चाट, चाउमिन, चावल, रोटियों आदि की जो भी छोटी-छोटी दुकानें थीं, वे खुले में थीं...उन्हें देख कर उसका मन भिनक रहा था। काफी सोच-विचार करने के बाद उसे लगा कि गर्मी का मौसम होता तो सत्तू आदि पीकर वह अपनी भूख और प्यास एक साथ दोनों को मार लेता लेकिन ठंढ में प्यास भले ही न लगे, भूख तो जबर्दस्त लग जाती है।

अपनी जबर्दस्त भूख मिटाने के लिए उन सबों में से एक कुछ अच्छे-से लगनेवाले छोटे-से होटल में वह बड़े ही बेमन से घुस गया।

होटलवाले ने देखा कि काफी इंतज़ार के बाद एक ग्राहक आया है। वह उसकी पूरी खातिरदारी में लग गया। सबसे अच्छी बात तो ये हुई कि उसने गरम-गरम खाने के साथ उसके पीने के लिए गरम पानी की भी व्यवस्था कर दी। अब वह इस बात के लिए पश्चाताप करने लगा कि इतनी देर तक वह इनसे बेवजह भिनक रहा था।

अब उसका दिमाग़ इस तुलनात्मक अध्ययन में भी लग गया कि एक तरफ नगरपालिका का कर्मचारी है जिसका वेतन निश्चित है और वह बिना मेहनत किए केवल वेतन पाने की फिराक में लगा रहता है; जबकि दूसरी तरफ ये बेचारा दिहाड़ी मज़दूर है जिसका वेतन अनिश्चित है फिर भी ये अपना काम पूरे मन लगा कर करता है...सचमुच, दायित्वों का बड़ा ही असमान वितरण है हमारे देश में।

अभी वह आधा ही भोजन कर पाया था कि उस होटल मालिक के पास एक मलिन-से चेहरे-मोहरेवाले लेकिन साफ-सुथरे कपड़े में एक आदमी आया। उसके पास और भी कपड़े से भरा थैला था। वह उस थैले को होटल मालिक को दिखाता हुआ कहने लगा, ''अरे सोमरा, देख ने...आज तो हम लोगन ले परब हो गया रे।''

''कैसे रे बुधना...'' होटल मालिक ने पूछा।

''अरे, टिशनमावाला मैदनमा में बड़का-बड़का आदमी हम गरीबन ले कपड़ा आउ कंबल बाँट रहा था रे...हम घिघियाय लगे कि हम्मर माउग-बेटी ले भी दे दीजिए मालिक ताउ ऊ अदऽमिया हमको ई भर-झोला कपड़ा दे दिहिस...देखो ने सोमरा, बड़ी अच्छा-अच्छा कपड़ा है रे...।''

वह आदमी बड़ा खुश होता हुआ होटल मालिक सोमरा से कह रहा था और अपने थैले से कपड़े निकाल-निकाल कर उसे दिखा भी रहा था। इसी क्रम में वह अपने हाथ में दो नए-नए से कंबल निकाल कर सोमरा को दिखाने लगा।

''आयं रे सोमरा, ताउ तूँ तो ई सब ओखनी से ठग के ने ले लेन्हीं रे...कौन माउग-बेटी

सृष्टि और मेरी अभिव्यक्ति के संपादक गोपाल प्रसाद 'निर्दोष' बिहार के रहने वाले हैं। कई पत्र-पत्रिकाओं एवं संकलनों में कहानियाँ, कविताएँ, गीत, ग़ज़ल, एकांकी, लेख, रेखाचित्र आदि प्रकाशित। संप्रति लेखक, अध्यापक, चित्रकर्मी एवं रंगकर्मी हैं।

संपर्क : 'सी. पी. निवास', म.नं. NN-004-0254, मालगोदाम, नवादा-805110 (बिहार)

ईमेल : gopalnirdosh@gmail.com

मोबाइल : 9934850362, 8340719234

के देम्हीं ई दुन्हूँ कमलिया...ऊ भगोड़ी मौगी के देम्हीं'' कह कर सोमरा थोड़ा मुस्कुराया।

सोमरा के इस कटाक्ष पर बुधना थोड़ा असहज हो गया। वह अपने दर्द को थोड़ा भुलाने की कोशिश करता हुआ कहने लगा, ''सोमर भाय, ई सौंसे दुनिया में एगो तोंहीं तो हमरा दु:ख पर मलहम लगाते हो...अब, तुम भी हमरा जखम खखोरने लगोगे ताउ हम कहाँ जाएँगे भाय''...और, वह अपनी पनिया आई आँखों को अपने आस्तीन की कोर से पोंछने लगा।

''अरे बुधना, तूँ तो एतना बुधगर हो रे...तबो, एतना-सन बात पर लोर बहावे लगते हो...स्साला, जे औरत तोरे पियार के मोल नञ समझी रे...उसके खातिर लोर क्या बहाना...अच्छा, ई बताओ...ई दू कंबल काहे ले...?'' सोमरा ने उसके दुख को भटकाने के ख्याल से कहना शुरू किया।

''...परसों से रिक्शा नञ चला पा रहे हैं भाय...सो, सोचा कि एगो कंबल तुमको दे देंगे ताउ तुम एका हफ्ता तो हमको खाना खिलाइए दिया करोगे।'' उसने अपनी विवशता सोमर से शेयर की।

''बुधन, तुम हमको ई कंबल नञ दोगे तब्बो हम तुमको खाना खिला दिया करेंगे...तुम रिक्शा-उक्शा छोड़ो...अब आइंद। हमरे होटल में हाथ बाँटा दिया करना...बोलो, मंजूर...?''

''मंजूर भाय'' कहते हुए बुधना की आँखें छलछला आईं।

''अब, रोना-धोना बंद करो...साहेब खा रहे हैं...देखो, उनको दाल-सब्जी इया क्या घटा है...'' सोमर ने उसे उसकी ज़िम्मेवारी सौंपते हुए कहा।

वह अभी खा ही रहा था और उन दोनों को भी समझने की कोशिश कर रहा था। बुधना उसकी थाली में थोड़ी-थोड़ी दाल और सब्जी डालने के बाद सोमर के निर्देशानुसार बाल्टी उठा कर पास के चापाकल से पानी लाने के लिए चला गया।

बुधना के वहाँ से जाने के बाद उसने सोमर से पूछा, ''तुमको कपड़ा बाँटे जाने की खबर नहीं थी क्या जी...तुम भी चले जाते...।''

''हमको इस बात की जानकारी थी साहेब...लेकिन, नहीं गए। दू बरिस पीछे गए थे...स्साला एगो दलिद्दर अदमी कार पर चढ़ के आया था कंबल बाँटने के लिए...सबको कंबल बाँटा...हमको भी बाँटा...हमरे साथ फोटू भी घिचाया। आउ फोटू घिचाने के बाद कंबल वापिस ले लिया और बोला कि तुम बाद में ले लेना, अभी एक और जगह कंबल बाँटने जाना है...बस, उसी दिन से हमको ई सब से नफरत हो गया...स्साला, ई सब बड़कन में से जादेतर लोग कंबल कम बाँटता है और अखबार आउ टीवी इयादि ले नौटंकी जादे करता है। अब, हम ई सब खैरात पाने के लिए नहीं जाते हैं मालिक...अपनी मेहनत का कमाते आउ खाते हैं...हमको एतने में संतोष करना आ गया है।'' सोमर ने अपनी पीड़ा भी व्यक्त की और अपना स्वाभिमान भी प्रकट कर दिया।

''लेकिन, सोमर...सभी तो एक जैसे नहीं होते हैं न...देखो, बुधन को आज भर-थैला कपड़ा मिला।'' उसने उसे फिर टटोला।

इस पर होटल मालिक ने फिर अपने स्वाभिमान को लगी ठेस के बारे में बताया और फिर अपने होटल तथा अपने होटल के दैनिक ग्राहकों की सेवा के बारे में अपनी प्रतिबद्धता बताने लगा कि उसके दुकान में जादेतर गरीब-गुरबा और रिक्शा चालक, मज़दूर आदि लोग ही खाने आते हैं और उन सबों का यही समय है। इस समय उसके द्वारा दुकान छोड़े जाने से उन दैनिक ग्राहकों को दिक्कत हो सकती थी।

उसके अंतर्मन में उस जा चुके व्यक्ति की बेचारगी एवं थोड़े में से ही खुश हो जाने की ललक और अपने होटल एवं ग्राहकों के प्रति समर्पण के साथ-साथ उसके स्वाभिमान के प्रति श्रद्धा के भाव उमड़ने लगे थे।

सोमरा ने उससे पूछा, ''आउ कुछ दें मालिक।''

''नहीं भाई...'' उसने कहा

''अ...सोमर, वो बुधना तुम्हारा भाई था क्या...?'' उसने पूछा।

''नहीं मालिक...ऐसा आपको कैसे लगा?''

''तुम सोमर और वो बुधना...दोनों के नाम दिनों के नाम पर हैं...इसीलिए, मुझे ऐसा लगा।'' उसने बताया।

''असल में हम अनपढ़ और छोटे लोगों का नाम ऐसा ही होता है मालिक...दिन और महीना इयादि के नाम पर...सोमरा, मंगला, बुधना, फगुआ, चैतु, सावन इयादि'' बताते हुए सोमर थोड़ा सकुचाया भी।

''अरे, इसमें अपने को छोटा समझनेवाली क्या बात है...मेरा भी तो नाम मंगल प्रसाद है...अब, मेरे नाम से कहाँ ये झलक रहा है कि मैं किसी से छोटा हूँ...?'' कह कर मंगल ने सोमरा का उत्साहवर्द्धन किया।

सोमरा कुछ क्षण के लिए मंगल को एकटक देखने लगा।

मंगल अपने शेष भोजन को निबटाने में मग्न था...हाथ-मुँह धोकर वह रुमाल से हाथ पोंछ ही रहा था कि बुधना पानी लेकर वहाँ आ पहुँचा।

मंगल पैसे देकर वहाँ से निकल गया। जाते-जाते उसके कान में मद्धिम होती गई आवाज़ में अंतत: ये बात आ ही गई कि, ''बुधना...हम सोमर, तू बुधना आउ ऊ अदमी मंगल प्रसाद...स्साला, बड़ा अदमी बने के लिए अप्पन नाम के साथ प्रसाद, कुमार इयादि भी जोड़े पड़ता है रे...।''

''सोमर भाय, अइसन कौनो बात नहीं है...तुमको पिछली बार जे अदमी कंबल दे के वापिस ले लिया था...उसका नाम तो भगबान के नाम पर था - रामकिसुन प्रसाद...स्साला के पास भगबान का कौनो गुण था क्या...? असल में बड़ा अदमी तो अप्पन बिचार से बनता है भाय...जैसे हमरे ले बड़ा अदमी तुम हो...'' बुधना ने अपनी बुद्धि लगाई और उसकी बात काट कर अपने सटीक तर्क से उसे निरुत्तर कर दिया।

''भक्क रे बुधन...हम...आउ बड़ा अदमी...'' और सोमर की खनकती हुई-सी हँसी धीरे-धीरे गुम होती चली गई।

आगे तो मंगल प्रसाद कुछ नहीं सुन सका लेकिन जितना ही सुन सका उसे सुन कर उसके होठों पर बड़ी गहरी मुस्कान तैरने लगी। अब, वह इसी विश्लेषण में डूबा हुआ आगे बढ़ता चला जा रहा था कि ''बुधन ने झूठ बोल कर दो कंबल माँग लिया था इसलिए उसने ग़लत किया था...या, उस कारवाले आदमी ने ग़लत किया था जो कंबल बाँट कर इनसे फिर वापस ले लिया था...।''

***

काश ! ऐसा न होता.....

निशान्त सक्सेना

नवम्बर का महीना था और सर्दी का मौसम अपने शबाब पर आने को था। क्योंकि फ्राइडे की शाम थी और अगले दिन दफ़्तर नहीं जाना था इसलिए तारा रिलैक्स्ड थी। वैसे वीकेंड वाला मूड घर में पहले ही था। बस अभी-अभी तारा के भाई-भौजाई, और उनके दोनों बच्चे, अपना वीकेंड एन्जॉय करने के इरादे से घर से निकले थे और वो गेट बन्द कर घर के अन्दर आई थी। अपने कमरे की ओर बढ़ ही रही थी कि मन में ख़याल आया कि एक बढ़िया सी चाय पी जाए।

अब घर में वह अकेली थी तो चाय तो खुद ही बनानी थी। लेकिन घर में यूँ अकेले रहने में कुछ नया नहीं था इसलिए तारा के क़दम किचन की ओर खुद-ब-खुद बढ़ गए।

फिर चाय बनाने के बाद कप को दोनों हथेलियों में दबा कर तारा बालकनी की ओर चल दी। बालकनी पर कदम रखते ही साँसों में सर्दी की शामों वाली वो चितवन के फूलों की महक घुल गई और चेहरे पर उस एहसास के साथ आई मुस्कुराहट बिखर गई। एक गहरी साँस लेते हुए उसने चाय का कप बालकनी की मुँडेर पर रख अपनी शॉल जल्दी से शरीर पर ठीक से लपेटी और फिर वापस कप उठा कर बालकनी में रखे झूले पर बैठ गई।

चाय की चुस्की लेने के लिए दोनों हथेलियों में दबे कप को अपने होंठों के पास लाई तो गर्म चाय से निकलती भाँप को अपनी नाक पर महसूस कर तारा को पूरे शरीर में गर्मी का एहसास हुआ।

सर्दियों की शाम में चाय की शायद यही भूमिका होती है। चाय को अपना काम करता देख तारा के चेहरे पर अनायास ही एक मुस्कुराहट आ गई। और मुस्कुराते हुए वो सामने सड़क पर गुज़रते लोगों को देखने लगी। सड़क के उस पार पार्क था। आज वीकेंड था इसलिए पार्क में कम और सड़क पर ज़्यादा भीड़ थी। शायद परिवार के साथ आउटिंग पर जाने वालों की भीड़। आउटिंग...ये शब्द दिमाग़ में आते ही पचास साल की तारा की मुस्कुराहट कहीं खो गई। सोचने लगी कि आख़िरी बार कब गई थी किसी आउटिंग पर। शायद कॉलेज के दिनों में...लगभग पच्चीस साल हो गए जब किसी ढंग की आउटिंग पर वो आख़िरी बार गई होगी।

खुद से बुदबुदा कर बोली, ''बस वो एमएससी के बाद शिखा की शादी से पहले शायद गई थी...हाँ... बस उसी के बाद तो पापा को हार्टअटैक हुआ था और फिर मम्मी को पैरालिसिस...''

पापा-मम्मी के यूँ अचानक बीमार हो जाने के कारण तारा पर पूरे घर की ज़िम्मेदारी आ गई थी। भाई दोनों बाहर थे। एक शादी के बाद विदेश में सेटल हो गया था और दूसरा शहर के बाहर कॉलेज में पढ़ाई कर रहा था। बूढ़े और बीमार माँ-बाप के साथ सिर्फ़ तारा थी।

अरविंद भैया ख़बर मिलते ही देश वापस आए और अनिल भी अगले ही दिन आ गया।

लखनऊ के निशान्त सक्सेना विज्ञान संचार में परास्नातक हैं और कथा साहित्य में सक्रीय हैं। प्रतिलिपि वेब पोर्टल पर निशांत सक्सेना की कहानियों के ढेरों पाठक हैं और यूट्यूब चैनल Kahani Cafe पर भी आपकी कहानियाँ पसंद की जाती हैं। संप्रति राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, उत्तर प्रदेश के उपमहाप्रबंधक (संचार) हैं।
संपर्क: ''द्वारकापुरी'', 5/482, विकास नगर, लखनऊ-226022
ईमेल : kahanicafe@gmail.com
फोन: +91-8707406368

कुछ दिन तीनों साथ रह कर स्थिति को सँभालने में लगे और हफ्ते भर बाद ही भगवान् की कृपा से मम्मी-पापा घर वापस आने की स्तिथि में आ गए। लेकिन डॉक्टर ने घर वापसी की इजाज़त तमाम हिदायतों को मानने की शर्त पर ही दी। दरअसल अरविंद ने अपने कुछ कॉन्टैक्ट्स की मदद से जल्दी डिस्चार्ज करवा लिया था। तारा ने मना भी किया था, लेकिन तब दोनों ही भाई बोले, ''अरे घर पर मैनिज करना आसान होगा तुम्हारे लिए।''

भाइयों के मुँह से 'तुम्हारे लिए' सुन उस वक़्त कुछ अटपटा सा लगा ज़रूर, मगर तारा ने उस बात को तरजीह न देना ही ठीक समझा।

ख़ैर, माँ-बाप की तबियत में मामूली सुधार हुआ भी था और उसके चलते तारा को कुछ तसल्ली भी मिली। लेकिन उनके घर आते ही अरविंद को विदेश में अपनी नौकरी और पत्नी की फ़िक्र सताने लगी और इधर अनिल को आने वाले एग्ज़ाम दिखने लगे।

''तारा, मुझे फ़िलहाल वापस जाना होगा। मैं वहाँ पहुँच कर सिचुएशन देखते हुए फिर वापस आऊँगा...दफ़्तर में भी कुछ ठीक से बता नहीं पाया हूँ...और प्रिया भी वहाँ अकेली होगी...,'' अरविंद ने उस शाम चाय का कप उठाते हुए कहा। और अनिल मानों बड़े भाई की इस बात का इंतज़ार ही कर रहा हो कि उसने बोला, ''भैया जाना तो मुझे भी पड़ेगा। फाइनल एग्ज़ाम सिर पर हैं और मम्मी-पापा की बीमारी के चलते इधर पढ़ाई बड़ी डिस्टर्ब हो गई है....''

तारा, ने एक नज़र दोनों भाइयों को देखा और फिर चाय का कप उठा कर चाय पीने लगी। कुछ पल की ख़ामोशी के बाद बोली, ''आप जाइए भैया...मैं मैनिज कर लूँगी।''

तारा का जवाब सुन दोनों ही भाई बेहद ख़ुश हुए। अरविंद ने फौरन उसके कन्धे पर हाथ रख कहा, ''अरे हमें पता है तारा तू सब मैनिज कर लेगी। तुम यहाँ हो इसी बात से तसल्ली है मुझे मम्मी-पापा को लेकर।'' बड़े भाई की हाँ में हाँ मिलाते हुए अनिल ने भी कहा, ''वी ट्रस्ट यू तारा।''

जल्द ही दोनों भाई वापस चले गए और तारा घर बाहर सब अकेले सँभालने लगी। शुक्र था कि पड़ोसी बड़े भले लोग थे और शहर में कुछ रिश्तेदार भी थे। तारा ने सब मैनिज कर ही लिया।

और जब तारा सब मैनिज कर ही रही थी तो एक रोज़ अरविंद ने फ़ोन कर मम्मी-पापा के हाल लेते हुए कहा, ''तारा तुम सब मैनिज कर ही ले रही....बताओ मेरे आने की ज़रूरत है क्या? यहाँ छुट्टी की बड़ी समस्या है और ख़र्चा तो ख़ैर है ही खूब आने में...जैसा बताओ...'' भाई की बात सुन तारा को कुछ समझ आया लेकिन नासमझ बनना ही बेहतर मानते हुए बोली, ''कोई बात नहीं भैया...मैं मैनिज कर लूँगी। जब कनविनिएंट हो आना।'' अनिल भी अपनी कनवीनियेन्स तलाशते हुए एक दिन फ़ोन पर बोला, ''कोई अर्जेंसी हो तो बताना...वैसे मैंने तो अब होली पर ही आने की सोची है।''

जवाब में तारा बोली, ''जैसा ठीक लगे तुम्हें। अब पापा-मम्मी पहले से काफ़ी बेहतर हैं। कमज़ोर ज़रूर हो गए हैं काफ़ी लेकिन हाथ पकड़ कर थोड़ा बहुत चल लेते हैं।''

मम्मी-पापा की बीमारी ने अचानक तारा के जीवन की दशा और दिशा बदल दी थी। कल तक वो पोस्ट ग्रेजुएशन के बाद कम्पटीशन की तैयारी में लगी किसी आम लड़की की तरह थी जो साथ की लड़कियों की शादी में ज़ोर शोर से शिरकत भी करती और शादियों की मस्ती के बाद अपनी पढ़ाई में लग जाती। लेकिन अब सब बदल गया था।

जो मम्मी-पापा कल तक एक दम स्वस्थ और इंडिपेंडेंट थे, अब अचानक डिपेंडेंट बन गए थे। और जो भाई कल तक दूर होते हुए भी इतने क़रीब लगते थे, वो अचानक क़रीब होते हुए भी बहुत दूर से जाते लगे। इस बीच मम्मी-पापा के पास तारा के सिवा कोई नहीं था जिसका हाथ थाम वो ज़िन्दगी गुजारें।

दोनों चलते फिरते ज़रूर थे लेकिन शरीर से बेहद कमज़ोर हो गए थे। और शरीर की कमज़ोरी से ज़्यादा दुःखद था उनके हौसलों का कमज़ोर होना। बीमारी के झटके ने दोनों को डरा कर रख दिया था। हर वक़्त अपनी सेहत को लेकर घबराए रहते थे दोनों और किसी बुरे को टालने की उम्मीद में तारा को अपने आस-पास ही चाहते थे।

तारा की पढ़ाई लिखाई और दोस्तों का सर्कल सब अस्त-व्यस्त हो गया। धीरे-धीरे पढ़ाई तो रुक ही गई और साथ वाले भी सब शादी कर-करा कर अपने-अपने जीवन में रमने लगे।

कोई कुछ समझ भी न पाया और घर को मैनिज करते-करते तारा तीस के पार हो गई और भाई अपनी-अपनी ज़िन्दगी में और रम गए।

अनिल ने अपनी पढ़ाई पूरी कर नौकरी शुरू कर दी थी। एक रोज़ अचानक वीकेंड पर घर आया तो मम्मी-पापा को बताया कि उसने लड़की पसन्द कर ली है और शादी करना चाहता है।

उसकी शादी की बात सुन मम्मी-पापा और तारा सब बेहद ख़ुश हुए। फ़ौरन सब ने हामी भर दी और घर में बेहद खुशनुमा माहौल बन गया। तारा फौरन कुछ मीठा लाने घर से निकली लेकिन कुछ ही पल बाद उसे अनिल की शादी की बात याद कर एहसास हुआ कि वो अब तीस पार हो चुकी है...शादी तो उसकी भी हो जानी चाहिए थी अब तक...लेकिन हुई नहीं। होती भी भला कैसे? वो जब घर मैनिज कर रही थी, घर वाले उसके मैनिजमेंट को एन्जॉय कर रहे थे। और कौन भला एन्जॉयमेंट नहीं चाहेगा?

मध्यम वर्गीय परिवार में अमूमन लड़की की शादी घरवालों की ज़िम्मेदारी होती है। लेकिन तारा ने घर की ज़िम्मेदारी क्या सँभाल ली, घरवाले शायद अपनी ज़िम्मेदारी भूल गए।

ख़ैर, ख़्यालों की दुनिया में खोई तारा बोझिल कदमों से घर की ओर हाथ में मिठाई का डब्बा लिए बढ़ रही थी। घर में कदम रखते ही अपनी मायूसी छिपाने की कोशिश में मम्मी-पापा के कमरे में दाख़िल होने से पहले एक पल को ठिठक कर रुक गई और अपने चेहरे पर नकली खुशी की लहर लाते हुए बढ़ी। अंदर घुसते ही उसने फ़ौरन डब्बे से बर्फी निकाल अनिल के मुँह में रखी। अनिल ने तपाक से पलट कर एक बर्फी तारा के मुँह में ठूँस दी और हँसते हुए बोला, ''मेरी तो हो रही है...तुम्हारा क्या इरादा है शादी का?''

अनिल के मुँह से ये बात सुन तारा ने गले में बर्फी कुछ अटकती सी महसूस

करी। आँख में कुछ आँसू छलक आए जिन्हें छिपाने की कोशिश में वो किचन की ओर पानी पीने की बहाने से बढ़ी। वो जा ही रही थी कि मम्मी ने फ़ौरन अनिल को बोला, ''अरे अभी तुम्हारी शादी से निपटें तब इसकी देखेंगे। जल्दी नहीं करनी है तारा की शादी में। पूरा घर सँभाले है बेचारी यहाँ। यूँ ही कहीं नहीं कर देंगे इसकी शादी।''

मम्मी की ये बात सुन तारा किचन की जगह वाश बेसिन की ओर बढ़ गई। आँसुओं की उस धार को छिपाने के लिए मुँह धोना ज़रूरी लगा। मम्मी की बात में एक स्वार्थ की गंध मिली थी आज तारा को। ऐसी गंध जो आए दिन अब उसकी आँखों में आँसुओं की धार बनाने का कारण बनती।

लेकिन माँ तो माँ होती है। अगर स्वार्थ की गंध उनके शब्दों में मिली थी तो प्यार और दुआओं की महक भी उन्हीं के शब्दों में तारा को मिलती। दरअसल मम्मी और पापा के इरादे ग़लत नहीं थे। हालात शायद ग़लत थे।

दोनों इतने आदी हो चुके थे तारा की सेवा के कि सोच भी नहीं सकते थे कि अगर तारा कहीं चली गई तो उनका ख़याल कौन रखेगा। मम्मी पापा को एक गिलास पानी भी अगर चाहिए हो तो तारा की कोशिश यही रहती थी कि वो फौरन उठा कर ले आए उनके लिए।

तो कुल मिलाकर हालात ऐसे थे कि बुढ़ापे के उस दौर में मम्मी-पापा के पास तारा के सिवा कोई नहीं था। बेटे पहले ही घर से दूर, या ये कहा जाए कि ज़िम्मेदारियों से दूर, हो चुके थे और बूढ़े माँ-बाप अपने शरीर और इच्छा शक्ति से भी इतने सक्षम नहीं थे कि बेटी की शादी कर अकेले रह पाते। ऐसा नहीं था कि अरविंद और अनिल बेहद कमज़र्फ थे। लेकिन जब उनके अन्दर का ज़िम्मेदार बेटा जागता, तब ''अरे तारा है न...'' वाला आलस उन्हें फिर सुला देता। तो जब उनके अन्दर का बेटा ही आलस करता, तब उनके अन्दर के ज़िम्मेदार भाई के जागने की उम्मीद करना निरर्थक ही था।

इस बात का एहसास तारा को भी था। लेकिन ज़िम्मेदारियाँ निभाते-निभाते वो इतनी मज़बूत सी हो चुकी थी कि उसे स्वार्थ वाली गन्ध और रिश्तों वाला आलस अखरता नहीं था।

इस बीच ऐसा नहीं था कि उसके अन्दर की लड़की कहीं मर चुकी थी या ढल चुकी थी। एक रोज़ नहाने के बाद कपड़े चेंज कर आईने के सामने अपने बाल बनाते-बनाते खुद को निहारने लगी। मन ही मन मुस्कुरा कर खुद से बोली, ''उम्र तीस के पार भले ही हो गई हो, लगती अब भी मैं पच्चीस की हूँ...'' ऐसे ही कुछ सवाल मन ही मन आईने में देखते अपने बाल संवारते करती जा रही थी कि तभी दरवाज़े पर कोई आहट हुई। मुड़ कर देखा तो पड़ोस वाले वर्मा जी का बेटा रवि हाथ में बीपी मशीन लिए ड्राइंग रूम में खड़ा था। एक दिन पहले ही तारा ने उससे मशीन मंगवाई थी और वो पड़ोसी धर्म निभाते हुए ले आया था।

बहरहाल, अपनी उस ख़्यालों की दुनिया से तारा निकल पाती कि उससे पहले ही उसके होंठों पर एक दिलकश मुस्कान बिखर गई और होंठों पर अनायास ही ''लगती हूँ न पच्चीस की?''

तारा बस नहा कर बाहर आई ही थी और उसके बाल अभी सूखे भी नहीं थे। सलवार कुर्ता पहने थी लेकिन दुपट्टा नहीं लिया था। और इस सब के साथ तारा का वो चौंकाने वाला सवाल रवि की नज़रों को मजबूर करता है कि वो तारा के शरीर को उसके पूरे शबाब पर देखे। रवि उम्र में तारा से पाँच-छह साल छोटा था। लेकिन न दीदी कहने वाली किसी औपचारिकता में था, न तारा कहने वाले किसी दोस्ताना रिश्ते में। पड़ोसी होने के नाते कभी-कभार अपने पेरेंट्स की वजह से मदद कर देता था। उधर तारा भी कभी रवि में कोई संभावनाएँ नहीं देख पाई। इरादा भी कभी नहीं था उसका। मगर उस दिन न जाने क्या हुआ कि वो ग़फ़लत में रवि से अपने मन में उठ रहे सवाल को पूछ बैठी। वैसे रवि की जगह वहाँ कोई भी हो सकता था। वो सब बस अनायास ही हो गया।

बहरहाल, गले में थूक निगलते हुए रवि ने भी न जाने क्या सोच उसे ऊपर से नीच। निहारते हुए मुस्करा कर बोल दिया, ''हमें उम्र से क्या लेना देना।''

यह सुनते ही मानों तारा की नींद टूटी हो। उसने फ़ौरन लपक कर बिस्तर पर पड़ा अपना दुपट्टा उठाया और अपने अन्दर की जीवित लड़की के जिस्म और रूह को फ़ौरन ढाँक-लपेट लिया। साथ ही जैसे ही एहसास हुआ कि पिछले कुछ पलों में क्या हुआ, उसके आँसू छलक आए। कुछ समझ न आया तो रवि की ओर एक हाथ बढ़ा कर मशीन देने का इशारा किया और फिर मशीन लेते ही दूसरे हाथ से आँसू पोंछते हुए मम्मी-पापा के कमरे में चली गई।

रवि पहले से ही हैरान था तारा के रवैय्ये से। उसे अब यूँ रोता देख वो घबरा गया और जब कुछ समझ नहीं आया तो फ़ौरन घर से बाहर चला गया।

कुछ देर बाद तारा अपने कमरे में वापस आई और फिर से आईने में अपने आप को देखने लगी। लेकिन इस बार उसे कोई आकर्षक सी लड़की नहीं दिखी। इस बार उसे दिखी एक अधेड़ होती औरत जिसकी आँखें रो-रो कर सूज चुकी थीं और बालों में सफेदी चाँदी के तार बन साफ़ छलक रही थी। चेहरे की सारी रँगत, चमक, और चिकनाई जा चुकी थी। चेहरे पर कुछ रूखी झाइयाँ थी, कुछ दानों के दाग़ थे। होंठों और ठोढ़ी पर कुछ बाल उग आए थे। आँखों के नीच। कुछ झुर्रियाँ सी थीं जिनका रँग अब काला होता जा रहा था।

और फिर कुछ सोच तारा ने अपना दुपट्टा हटा कर बगल में कुर्सी पर डाल दिया। शरीर पर नज़र डाली तो एहसास हुआ कि अब सलवार सूट जहाँ ढीला होना चाहिए था वहाँ टाइट है और जहाँ टाइट होना चाहिए वहाँ लूज़ है। इस एहसास के साथ ही तारा की आँखें भर आईं और आईने में छवि धुँधली होने लगी।

मुड़ कर तारा ने वापस अपना दुपट्टा उठाया और पहले उसे ओढ़ा और फिर उसके किनारे से अपनी आँखें पोछी। कुछ न समझ आया तो बिस्तर पर औंधे मुँह ढेर हो गई। आँसू बह रहे थे और इस बार तारा ने उन्हें पोंछा नहीं। बहने दिया। तकिया तारा के आँसू सोख्ता रहा।

तारा का दिल कर रहा था कि वो चीख-चीख कर दहाड़ें मार कर रोए और पूरी दुनिया को दिखाए कि सब के लिए जीते-जीते क्या हाल हो गया है उसका और वो कहाँ से कहाँ आ गई। तारा का दिल कर रहा था कि कोई तो आए और उसे सीने से कस कर चिपटा ले और उसका सिर सहलाए। लेकिन कोई नहीं था वहाँ। था अगर कोई तो

वे थे बूढ़े माँ-बाप जो दूसरे कमरे में लेटे टीवी देख रहे थे।

तारा के आँसू कुछ थमे ही थे कि मम्मी ने आवाज़ लगाई, ''अरे तारा कहाँ हो...? आज बेटा खाना बनाओगी की नहीं? दोपहर होने को आई है...''

मम्मी की आवाज़ सुन तारा पहले तो फौरन उठ बैठी लेकिन फिर उसने झुँझला कर मुट्ठी बाँध ली। फिर न जाने क्या सोच मम्मी-पापा के कमरे में जा कर उनके सामने खड़ी हो गई। दोनों ने तारा की उस बदहवास रोती सूरत देख अंदाज़ लगा लिया की कुछ गड़बड़ है। इसलिए सिर्फ इतना बोल पाए, ''क्या हुआ?''

जवाब में तारा ने कहा, ''मैं अब जॉब करुँगी। घर पर बैठे-बैठे मैं पक गई हूँ। मेरा दिमाग़ फटता है, मैं पगला जाऊँगी, अगर यूँ ही घर में पड़ी रही।'' इससे पहले की कोई कुछ कहता तारा पलट कर कमरे से निकलने लगी। उसे रोकते हुए पापा बोले, ''ठीक है जाओ....लेकिन बेटा हम दोनों की तमाम...'' इससे पहले की पापा अपनी बात पूरी करते, तारा फुँफकारती हुई बोली, ''आप दोनों की तमाम ज़रूरतें कोई कामवाली बाई भी पूरी कर सकती है...फ़िक्र न करिए...आपको अधर में नहीं छोड़ूँगी।''

तारा ने तय तो कर लिया कि अब दफ़्तर जाएगी; लेकिन आज के समय में नौकरी मिलना इतना आसान नहीं होता, अभी सोचा और कल से दफ़्तर जॉइन कर लिया।

सालों बाद नौकरी और कैरियर की सोचने बैठी तो तारा को एहसास हुआ, वो काफ़ी आउटडेटिड सी हो चुकी है स्किल्स के नाम पर। साथ ही जिस उम्र में वो किसी दफ़्तर के मिडल मैनिजमेंट में हो सकती थी, उस उम्र में वो नौकरी की शुरुआत करेगी।

महीने-दो महीने के मंथन के बाद तारा ने तय किया, अब नौकरी तो करनी ही है। अब तो नौकरी पाने की छटपटाहट भी होने लगी थी।

इस बीच तारा ने कुछ पुराने दोस्तों से बात की, नए विकल्प तलाश। नौकरी के लिए और जल्द ही तारा को एक एच आर फर्म में कंसल्टेंट की नौकरी मिल गई।

सरल शब्दों में उसका काम था नौकरी की तलाश करते लोगों के डेटाबेस को मैनिज करना, उनके लिए सही नौकरियाँ तलाशना और उनके इंटरव्यू फिक्स करना। कुल मिलाकर एक दम नया काम था और तारा को दिन भर व्यस्त भी रखता था। अच्छी बात ये थी कि तारा काम एन्जॉय कर रही थी इसलिए व्यस्त होने के बावजूद वो त्रस्त नहीं थी। तारा मस्त थी। दफ़्तर में रोज़ नए लोग मिलते, नए चेहरे दिखते, और तमाम लोगों से बात होती। मतलब तारा वो सब अनुभव कर रही थी जो वो अपने मम्मी-पापा के कमरे और घर के किचन में नहीं कर पा रही थी। ले

ऐसा नहीं था, तारा की घर वाली ज़िम्मेदारी कम हो गई हो। सुबह सबका नाश्ता-खाना बना के जाती और शाम को वापस आ कर खाना बनाती। बल्कि शाम की चाय भी। शाम को घर आती तो मम्मी या पापा अमूमन रोज़ ही अपने कमरे से ही आवाज़ लगाते, ''बेटा तारा, जल्दी से मुँह-हाथ धो कर आओ फिर साथ चाय पी जाए। और पापा की चाय में चीनी कम डालना।''

वैसे कभी-कभी उसे चाय मिल भी जाती थी। मम्मी का अगर दिल होता जल्दी चाय पीने का तो वो अपने लिए बनातीं और साथ में एक कप एक्स्ट्रा तारा के लिए बना कर थर्मस में रख देतीं।

ऐसे ही रोज़ तारा थक कर घर आई और मम्मी के कमरे में कुर्सी पर निढाल बैठ गई। मम्मी ने रिमोट से चैनल बदलते हुए कहा, ''क्या हुआ तारा काफी थक गई हो क्या? थर्मस में चाय होगी, पी लो।''

तारा खीजते हुए लेकिन बड़ी उम्मीद से बोली, ''मम्मी, ताज़ी चाय पिला पाएँ तो बताइए। बहुत थक गई हूँ और सर अलग दर्द कर रहा है।'' जवाब में मम्मी टीवी देखते हुए बोलीं, ''अरे बेटा मेरे पैरों में आज बड़ा दर्द है वरना बना देती। तुम ऐसा करो, जा कर गर्म पानी से नहा लो...मैंने अपनी सिकाई के लिए पानी गर्म किया था...गीज़र में होगा अभी गर्म पानी...तुम नहा लो तो हल्का महसूस करोगी।''

मम्मी की बात पर कैसे रिएक्ट करे यह सोचते हुए तारा झल्लाते हुए बोली, ''थैंक्स फॉर द सजेशन मम्मी।'' फिर कुछ देर छत ताकते हुए बोली, ''मम्मी, अरोड़ा आंटी से बोल कर एक हेल्पिंग हैंड तलाशिए। मेरे लिए घर और ऑफिस सब एक साथ मैनिज करना आसान नहीं।'' ये सुन तारा के मम्मी-पापा फ़ौरन टीवी स्क्रीन से मुँह फेर उसे देखने लगे और इससे पहले कि वे कुछ कहते, तारा वहाँ से उठ कर किचन की ओर बढ़ गई।

तीन-चार दिन बाद ही एक फुल टाइम अटेंडेंट, माला, मिल गई और जल्द ही उसने घर सँभाल लिया।

अटेंडेंट ने घर तो सँभाल लिया, लेकिन तारा को अन्दर-ही-अन्दर लगा; कहीं वो अपनी ज़िम्मेदारी से भाग तो नहीं रही? अपनी ज़िम्मेदारियों में उसने खुद भी काफ़ी कमी महसूस की। उसे लगा, मम्मी-पापा उसके इस फ़ैसले और घर की नई व्यवस्था से शायद नाराज़ होंगे, इसलिए उसने सोचा कि वह उनके साथ ज़्यादा समय बिताएगी।

लेकिन तारा ग़लत सोच रही थी। उसके पेरेंट्स दरअसल बेहद खुश थे इस नई व्यवस्था से। घर में हर वक़्त बस 'माला' के नाम की ही आवाज़ सुनाई देती थी। और वो भी दौड़-दौड़ कर सब काम करती रहती।

शुरू में तो तारा को समझ नहीं आया कि कैसे रिएक्ट करे, लेकिन जल्द ही उसे ये सब अच्छा नहीं लगा। पहली बार अपने माँ-बाप को खुश देख उसे दु:ख हुआ। दु:ख इसलिए, उसे यह एहसास भी पहली बार हुआ कि उसके माँ-बाप को बेटी नहीं एक अटेंडेंट की ज़्यादा ज़रुरत थी। जिसे वह माँ-बाप के लिए अपनी ज़िम्मेदारी समझ रही थी, उसे अचानक एहसास हुआ वह तो ज़िम्मेदारी कम एक अनपेड नौकरी ज़्यादा थी। जिस ज़िम्मेदारी और सेवा भाव को वो चालीस की उम्र तक अपने तमाम अरमानों की क़ुर्बानी की वजह मान बैठी थी, वो तो दरअसल एक धोखा निकला और रिश्तों की ख़ुदगर्ज़ी निकला। और इन सब संवेगों के साथ ही उस रोज़ तारा ने अपने अन्दर कुछ मरता हुआ-सा महसूस किया। और जब अन्दर की उस मौत का एहसास हुआ तो आँखों से आँसुओं का सैलाब बह निकला।

तारा के हालात देखने और समझने की किसी के पास न तो वजह थी न फ़ुरसते मम्मी-पापा के पास अब अपनी तीमारदारी के लिए माला थी और भाइयों के पास अपनी-अपनी दुनिया।

तारा की दुनिया भी बसाई जानी चाहिए

इस बात की किसी को ज़रूरत नहीं महसूस हुई क्योंकि तारा तो सबकी दुनिया मैनिज हो सके इसलिए अपनी दुनिया मिसमैनिज कर रही थी।

तारा के दिमाग़ में हालात की ऐसी आँधी चली, रिश्तों के तमाम चेहरे और पहलू दिखाई देने लगे। और उन नज़ारों का ऐसा असर हुआ कि तारा को तमाम कड़वे घूँट पीने पड़े।

मगर उन कड़वे घूँटों का असर ऐसा हुआ कि तारा को एक मीठी बीमारी हो गई। स्ट्रेस और डिप्रेशन के चलते तारा डायबिटीज की मरीज़ बन गई। मरीज़ भी ऐसी की जल्द ही इन्सुलिन के इंजेक्शन रोज़ लेने लगी।

और इस सब के बीच एक ख़ासा अरसा बीत गया। और उस अरसे में साल भर के भीतर मम्मी और पापा दोनों चल बसे। पहले पापा गए फिर मम्मी। भाइयों के भी चेहरे अब साफ दिखने लगे थे। पापा की मौत के बाद दोनों आए ; लेकिन मम्मी की मौत पर बड़े भाई अरविन्द ने परदेस से तारा को फ़ोन कर कहा, ''काश मैं वहाँ पहुँच पाता। लेकिन इतनी जल्दी-जल्दी आना आसान नहीं। आठ महीने पहले ही पापा की डेथ पर आया था...अब मम्मी की। तारा मैं मम्मी की बरसी पर आने की कोशिश करूँगा। प्लीज़ मुझे डेट बताना।'' और अनिल, जो अब तक पास के शहर में अपनी नौकरी में इतना व्यस्त रहता था, मम्मी-पापा से मिलने तक सिर्फ त्योहारों में आता था, उस रोज़ मम्मी की तेहरवीं में अपने किसी दोस्त से कह रहा था, ''यहीं ट्रान्सफर करा लिया है। अब अपने शहर से ही रिटायर होऊँगा। अरविन्द भैया को तो यहाँ आना नहीं है। अकेले तारा कहाँ इतना बड़ा घर मैनिज कर पाएगी...''

जब अनिल ये सब कह रहा था, तारा वहीं पीछे खड़ी थी। भाई की बात सुन तारा को वो दिन याद आया जब पापा को चेकअप के लिए अस्पताल ले जाना था और उसने अनिल को फ़ोन कर कहा था, ''भैया सैटरडे को दिन भर के लिए आ जाओ। पापा को चेकअप के लिए ले जाना है। मेरी भी छुट्टी है लेकिन उस दिन बैंक का एक ज़रूरी काम है।'' जवाब में अनिल ने कुछ मायूसी से कहा, ''अरे यार मैंने कुछ प्लान बनाया हुआ था। कोई सीरियस मैटर हो तो बताओ प्लान कैंसिल करूँ... वैसे तुम इतने अच्छे से सब मैनिज करती हो कि पापा-मम्मी को ले कर मैं बड़ा बेफ़िक्र रहता हूँ...देख लो...मैनिज कर लो।'' तारा ने उस रोज़ सिर्फ ''ठीक है'' कह कर फ़ोन काट दिया था और हमेशा की तरह खुद को कोसा की जवाब मालूम होते हुए भी मदद माँगी ही क्यों भाई से।

ख़ैर, मम्मी की तेहरवीं वाले दिन भी अनिल की बात तारा को अखर गई; लेकिन इस बार बुरा ये लगा कि उसका भाई वाक़ई कितना बेफ़िक्र है रिश्तों के लिए और कितना फ़िक्रमंद है उस 'बड़े घर' के लिए।

कुछ समय बाद अनिल सपरिवार शिफ़्ट हो गया। तारा को अच्छा तो लगा लेकिन जल्द ही एहसास हो गया कि वो भाई-भाभी और उनके बच्चों के लिए एक क़रीबी पड़ोसी से ज़्यादा कुछ नहीं है। हालाँकि तारा को बड़ी उम्मीद जगी थी कि घर में अब रौनक़ रहेगी और वह उन सबकी दुनिया का हिस्सा बनेगी। लेकिन अनिल की दुनिया एकदम अलग सी थी जिसमें तारा होते हुए भी नहीं थी।

अनिल की दुनिया में तारा थी इसलिए;क्योंकि वो डिपेंडेंट नहीं थी और नहीं इसलिए थी; क्योंकि वो अनिल की एक ज़िम्मेदारी-सी थी।

बड़े भाई के साथ होने से तारा अन्दर ही अन्दर सोचती कि इतने साल तो ख़याल रखा मम्मी-पापा का, अब चलो कोई ख़याल रखने वाला साथ है। मगर अनिल अपनी अधेड़ होती बिनब्याही बहन से एक सेफ डिस्टेंस बना कर रखता। तारा की ज़िंदगी में ज़रा भी छेड़छाड़ उसने करने की नहीं सोची, क्योंकि अगर वैसा कुछ करता तो तारा की ज़िम्मेदारी उठाने का नैतिक और सामाजिक दबाव बनता।

एक बार किसी रिश्तेदार के घर जब अनिल पहुँचा तो उन्होंने पूछा, ''अरे तारा को भी साथ ले आते...बड़े दिनों से आई नहीं...'' तो जवाब में अनिल ने झेंपते हुए कहा, ''अरे अब उसकी अलग लाइफ़ है...मैं डिस्टर्ब नहीं करता। बेचारी वैसे ही बड़ी बिज़ी रहती है। मैं अपने चक्कर में उसकी पीस ऑफ माइन्ड नहीं अफेक्ट करता।'' अब रिश्तेदार को कौन बताए कि तारा ने तो अब साथ चलने की बात करना ही बन्द कर दिया था क्योंकि कभी ''कार में जगह'' नहीं होती, कभी ''और भी काम हैं रास्ते में'', कभी ''अपने किसी फ्रेंड के घर भी जाना है तुम बोर हो जाओगी'' जैसे जवाब सुनने को मिलते।

और यही नहीं, तारा ने अपनी ख्वाहिशें मारने के साथ अनिल के परिवार के लिए अपनी प्रायोरिटीज़ तक बदल लीं थीं। अनिल के बड़े होते बच्चों की हँसती-खेलती दुनिया में तारा ने अपने अकेलेपन की दवा तलाश ली थी। उन पर जान न्यौछावर करती अपनी और भाई के बच्चों की हर इच्छा पूरी करने में लगी रहती।

काश, भाई भी बहन की तमाम इच्छाएँ पूरी करने की कभी सोचता। लेकिन अनिल को भी तारा एक केयरटेकर की भूमिका में बेहतर लगती। उसकी शादी हो जाती तो घर में कौन रहता जब अनिल को सपरिवार आउटिंग पर जाना होता? और इस सब के बीच न अनिल और अरविन्द ने सोचा और न तारा को सोचने की ज़रूरत लगी कि तारा उस घर की बेटी से उस घर के बच्चों की बुआ बन गई है।

तारा इस सबको अपनी नियति मानने लगी थी। इस बात से संतोष कर लिया था कि भगवान् ने जीवन में शादी का सुख नहीं दिया पर भतीजे-भतीजियों के रूप में बच्चों का सुख दे दिया। तारा उस सब में जीवन की सम्पूर्णता का महसूस करने लगी थी।

बहरहाल, चाय की चुस्कियाँ ख़त्म ही हुईं कि गेट पर बेल बजी और तारा ख़यालों के दौर से बाहर आई। सामने नज़र दौड़ाई तो तारा ने जाना,अंधेरा ढल चुका है। बालकनी से नीच। झाँका, तो देखा, नीच। अनिल की पत्नी और बच्च। हाथ में तमाम पैकिट लिए खड़े हैं और अनिल कार में बैठा बेसब्री से गेट खुलने का इंतज़ार कर रहा है। तारा को देखते ही अनिल की बेटी ज़ोर से बोली, ''बुआ जल्दी गेट खोलिए आपको अपनी ड्रेस दिखाऊँ...''

ये सुन तारा ने फौरन उसे हाथ से इशारा करते हुए गेट का रुख किया। दरअसल अनिल के बेटे की जल्द ही इंगेजमेंट थी और पूरा परिवार उसी की शॉपिंग के लिए गया था।

तारा को देखते ही भतीजी फौरन उसका

हाथ पकड़ ड्राइंग रूम में ले आई और कपड़े दिखाने लगी। फिर अनिल और पूरा परिवार वहीं बैठ कर खरीदारी पर चर्चा करने लगा और तारा उठ कर किचन की ओर चल दी। फौरन खाना लगाया और जल्द ही सबने खाना खाया। डिनर के बाद अनिल ने तारा से कहा, ''अरे तारा वो खोए वाली मिठाई बची हो तो प्लीज़ ज़रा दो सबको।'' तारा तपाक से उठ कर फ्रिज की ओर बढ़ी।

सबको मिठाई देने के बाद तारा को एहसास हुआ कि उसके इन्सुलिन इंजेक्शन का समय हो गया है। इन्सुलिन इंजेक्शन में कोई कोताही बरतना जानलेवा होता है। इसलिए तारा मिठाई की प्लेट लिए सीधे पहले अपने कमरे में चली आई। सोचा पहले इंजेक्शन ले लिया जाए फिर मिठाई फ्रिज में रख देगी। बाहर अभी सब डिनर के बाद वाला हँसी-मज़ाक कर रहे थे। इधर अपने कमरे में साइड टेबल पर मिठाई रख तारा ने सिरिंज उठाई और इंजेक्शन तैयार करने लगी। इसी बीच बाहर की बातचीत पर तारा का ध्यान गया। अनिल की बेटी कह रही थी, ''पापा, बुआ की शादी में मैं इससे हेवी वाला लहँगा लूँगी।'' उसकी बात सुन अनिल ने हँसते हुए कहा, ''अरे पागल, अब बुआ तुम लोगों की शादी की मिठाई खाएँगी या भला खुद शादी करेंगी।'' ये सुन अनिल का बेटा हँसते हुए बोला, ''अरे मगर बुआ तो डियाबेटिक हैं। न अपनी शादी का लड्डू खा पाएँगी न मेरी।'' ये सब सुन सभी हँसने लगे।

यह सब सुन, अपने कमरे में बेड के कोने पर बैठी, तारा की आँखें डबडबा गईं। फिर आँसू धार बन बहने लगे और उसने अपनी मुट्ठी में इंजेक्शन भींच लिया।

फिर खुद से बुदबुदाते हुए टेबल पर रखी मिठाई देखते हुए बोली, ''सही तो कह रहे हैं सब। न मेरी शादी होगी, न मैं बच्चों की शादी की मिठाई खा पाऊँगी।''

फिर कुछ सोच कर तारा ने अपने आँसू पोंछे और दवा से भरा इंजेक्शन बगल में रख दिया; हालाँकि वह जानती है अगर इंजेक्शन नहीं लिया तो साँसों के तार टूट सकते हैं और सामने रखी मिठाई एक मायूस मुस्कुराहट के साथ उठा कर मुँह में रख ली और चुपचाप बिस्तर पर लेट गई.....।

***

व्यंग्य

विश यू स्पीडी रिकवरी

मदन गुप्ता सपाटू

हमारे देश में मरीज़ का हालचाल पूछने अस्पताल में जाना एक रिचुअल माना जाता है। इसलिए जाना पड़ता है कि वहाँ एक गुप्त अटेंडेस रजिस्टर होता है जिसका कनैकशन सभी व्हाट्स एप ग्रुप से लिंक्ड होता है। जो गया और जो नहीं गया उसका विवेचन फिर घर-घर संभव हो जाता है।

हर देश में हाल पूछने का अपना अपना स्टाइल है।

अमेरिकन जब किसी बीमार को देखने जाता है तो कहता है- गैटट् वैल्ल सून।

ब्रिटिश मूल का व्यक्ति कहेगा- विश यू ए स्पीडी रिकवरी।

जब हिन्दुस्तानी जाता है तो चाय पर हैल्थ की चर्चा करता है, अपनी बीमारी बताता है, अस्पतालों की लूट, डॉक्टरों की धुनाई का वीडियो अपने मोबाइल पर दिखाता है, मेडीकल हैल्थ इंश्योरेंस और लाइफ इंश्योरेंस के सारे प्लान बताता है।

आपका हालचाल पूछते हुए, वह नाना -नानी, दादा -दादी के सारे सेल्फ टैस्टिड, मोहल्ला टैस्टिड नुस्खों की हिडन फाइलें अपने मोबाइल से खोल देता है। वह बीमार की तीमारदारी के लिए गया था इसलिए, प्रूफ के लिए सेल्फी लेना नहीं भूलता। नर्स वर्स ऐसे वातावरण में यदि फोटोजनिक हो तो इंस्टाग्राम में और चार चाँद लग जाते। हैं। फेस बुक पर डालने से लाईक के कमेंट और स्पीडी रिकवरी के मैसेज आने लगते हैं। कई बार यह समझ नहीं आता कि पूरी पिक में लाइक किसका बनता है। मरीज़ का, नर्स का या तीमारदार का ?

मरीज़ का हाल चाल पूछते-पुछाते कई सुझाव आटो मोड पर चलने लगते हैं। रामदेव के अनुलोम विलोम, श्री श्री की सुदर्शन क्रिया, युनानी, अफगानी, आयुर्वेदिक, होमयोपैथी, एक्युप्रशर, ऐक्युपंक्चर, नेचुरोपैथी, बाबाओं, पीरों फकीरों के दर्शनों से लेकर गूगल के लेटेस्ट अविष्कार तक सभी एक सिटिंग में ही डिस्कस हो जाते हैं। यदि कोई फ़ैमिली का बंदा बैठा है तो वह उसकी बीमारी का नाम और दवाईयों की ऐसी वेरायटी बताएगा कि यदि आप इस चक्कर में बोलने की कोशिश करें कि आप का भी मेडीकल नॉलेज से बहुत गहरा रिश्ता हैं तो ऐसा महसूस होगा कि कि आप की जीभ को मंडूक आसन करना पड़ा और जुबान को पैरालिसिस होते-होते बचा।

कई बार हालचाल पूछने वाले ज़्यादा ही धार्मिक प्रवृति के इसलिए आ जाते हैं ताकि उनके ऐसे समय में भी कोई समय कटवाने वाला प्राप्त हो जाए। वे आत्मा - परमात्मा के मिलन, गीता, रामायण, वेद उपनिषद की यात्रा करवाते हुए गरुड़ पुराण के स्टेशन पर पूरे परिवार को भटका कर अपना रास्ता नापते हुए आशीर्वचन दे जाते हैं- बेटा, पापा का ख्याल रखना, सेवा में कोई कमी न रखना। यह कहना भी नहीं भूलते कि जब रात बिरात एंमरजेंसी पड़े तो बताने में संकोच न करना। कई महानुभाव बड़े ही ज्योतिषी नुमा और आशावादी प्रकृति के होते हैं जो रुख़सत होने से पहले अपनी फैमिली हिस्ट्री बताना नहीं भूलते - मेरे सगे फूफा के पापा भी इसी बीमारी से भगवान् को प्यारे हुए थे।

अब बीमार की मर्ज़ी कि इसी अस्पताल में पड़ा रहे या पीछा छुड़वाए या गरुड़ पुराण में दिए गए, स्वर्ग- नर्क के कैलेंडर के सीन देख-देख कर अपने कर्मों की बैलेंस शीट का विवेचन करे। या स्पीडी रिकवरी या गैटट् वैल्ल सून के कार्ड और फूलों के बुके मोबाइल पर देख-देख कर ही ठीक-ठाक घर आ जाए!

***

संपर्क:196,सेक्टर 20A,चंडीगढ़ 160020 ईमेल: spatu196@gmail.com
मोबाइल: 098156 19620

खिसियानी बिल्ली जूता नोचे

धर्मपाल महेंद्र जैन

भगवान् किस रूप में कहाँ आते हैं, कब आते हैं और वहाँ क्या छोड़ जाते हैं, कौन जान सकता है! उनकी लीला आरपार है, वे ही जानें। दशरथ पुत्र भरत उनकी पादुकाएँ उठा लाए थे तो वे संसार सागर से तिर गए थे। बस इसी आशा में मैं नई चरण पादुकाएँ उठा लाता हूँ, और अपनी जीर्ण-शीर्ण पादुकाओं को वहाँ सेवानिवृत्त कर आता हूँ।

अब जो पादुकाएँ मिलती हैं वे काष्ठ की नहीं होतीं, चाम्र की होती हैं। वे भले अपवित्र हों पर चमकदार होती हैं। माल चमकदार हो तो उसकी पवित्रता कौन देखता है। भगवन् पादुकाओं को पॉलिश करवा-करवा कर इतना भव्य रखते हैं कि मेरी एक नज़र उन पर पड़ती है तो फिर नहीं उठती। मैं अपने पाँवों में चरण पादुकाएँ धारण करने के बाद ही नज़र उठा पाता हूँ, ताकि मैं यह सुनिश्चित कर सकूँ कि जो प्रसाद मैंने ग्रहण किया है, उस पर किसी और की नज़र तो नहीं है। यदाकदा ही ऐसा होता है कि उन मनभावन पादुकाओं को और कोई क्लेम करने आता हो। पर कोई आ भी जाए तो मैं जी भर कर हँसता हूँ। कहता हूँ 'सॉरी सर'। धन्य हो अंग्रेज़, हमें सॉरी कहना सिखा गए। अन्यथा ऐसे मौकों पर खिसियानी बिल्ली को जूता नोचना पड़ता।

नई चरण पादुकाएँ पहन कर प्रभु निवास पर जाना मुझे नहीं सुहाता। पिछले सप्ताह जब अपने नए 'हर्श पपीज़' जूते पहन मैं प्रभु दर्शन को पहुँचा तो मैंने दाँया जूता पूर्व दिशा में और बाँया जूता पश्चिम दिशा में खोला। ताकि किसी दर्शनार्थी का मन नए जूते पर डोल भी जाए तो उसे दूसरा जूता सहज सुलभ नहीं हो। यद्यपि यह तरकीब काम कर गई, जूते यथास्थान ही रहे पर प्रभुदर्शन में मेरा चित्त न लगा। बार-बार मेरा चित्त प्रवेश द्वार के पूर्व और पश्चिमी कोनों में भटकता रहा। प्रभु ने पूछा भी, वत्स क्या बात है आज तुम व्यथित हो, कुछ माँग नहीं रहे? मैं इतना ही कह पाया - प्रभु मेरे नए जूतों का ध्यान रखना। प्रभु हँस कर चले गए। मैंने मूर्खतावश ऐसा दुर्लभ अवसर जूतों की रक्षा में गवाँ दिया। तब मैं प्रभु से जूतों का भरा-पूरा स्टोर भी माँग लेता तो प्रभु तथास्तु कह देते। बाबा को जब यह वाकया बताया तो वे बहुत खिन्न हुए। उपदेश देने लगे, 'बेटे तुम्हें स्वर्ग मिल सकता था, तुम जूतों की रखवाली में यह जनम गवाँ आए मूर्ख।' अब कोई मैं अकेला मुर्ख तो हूँ नहीं जो जूतों के चक्कर में स्वर्ग गवाँ रहा हूँ। उस दिन के बाद से मैं कभी नए जूते पहन कर प्रभु दर्शन के लिए नहीं गया, न प्रभु वहाँ आए। प्रभु बड़े नटखट हैं, भक्तों की कैसी परीक्षा लेते हैं! नए जूतों में मन रमा था तो आशीर्वाद देने प्रकट हो गए। अब उनसे मिलने जाते-जाते जूते घिस गए हैं, वे प्रकट ही नहीं होते।

जूतों के चक्कर में मैंने प्रभु को खो दिया तब से जूतों से वितृष्णा हो गई है। अब घर से बिना जूते पहने प्रभुदर्शन को जाता हूँ। रुआँसा घर लौटता हूँ तो ध्यान कहीं और होता है।

सम्पर्क : 1512-17Anndale Drive, Toronto M2N2W7, Canada
ईमेल : dharmtoronto@gmail.com
मोबाइल : + 416 225 2415

घर आ कर पता लगता है कि मैं नंगे पाँव गया था, ढँके पाँव आया हूँ। घर में समान नंबर के जूतों का स्टोर बन रहा है, सब प्रभु की माया है। प्रभु मैं तो पुण्य कमाने आ रहा था, जूते कमा रहा हूँ। बाबा पूछते हैं कितनी पनौती इकट्ठी करेगा? जिसे मैं प्रभु प्रसाद समझ रहा था वह पनौती कैसे हो गई?

आज लौट रहा था तो एक सज्जन ने पूछा, ''बड़े अच्छे जूते हैं, कहाँ से ख़रीदे?''

''यहीं से लिए थे।''

''ये तो मेरे जूते हैं।''

''आप ले लीजिए।''

''फिर आप क्या करेंगे?''

''मैं खाली हाथ आया था, खाली पैर चला जाऊँगा।'' मैंने एक वाक्य में उन्हें सारा जीवन दर्शन समझा दिया।

नई चरण पादुकाओं ने मुझे हमेशा धर्म संकट में डाला है। मुझे याद है, मेरे पाँवों में नए जूते थे, विवाह वेदी पर बैठने के लिए जूते खोलने थे। प्रियतमा वरमाला लिए खड़ी थीं पर मेरा सारा ध्यान जूतों पर ही था। जूते खोलूँ तो लूट जाऊँ, न खोलूँ तो कुआँरा रह जाऊँ। जूतों के चक्कर में सर्वप्रिय सलोनी सालियाँ खूँखार शेरनियाँ लग रही थीं। उनकी हँसी ने मेरे दिल को और उनकी तीखी निगाहों ने मेरे नए जूतों को छलनी-छलनी कर दिया था। मैंने सोचा भी दुल्हन को जाने दूँ, अपनी इज्ज़त, जूतों को बचा लूँ। भला हो बाबा का, मेरी दुविधा ताड़ गए और जूते उतरवा दिए। अन्यथा पहले भगवान् गवाएँ थे, अब दुल्हन को गवाँ देता।

जैसे ऑफिस में घुसते ही बॉस अपनी कुर्सी पर बिराज जाते हैं, घर में घुसते ही जूते अपना नियत स्थान सम्हाल लेते हैं। पहली फुरसत में आदमी उन्हें कीचड़-माटी रहित कर, पुनः पॉलिश से चमका देता है। मुख और मन मलिन हो तो कुछ नहीं, जूते और बाल चमचमाते रहना चाहिए।

हमारे गाँव और शहर के बीच एक नदी है। प्रभु की जटा से जितनी सिमटी गंगा निकलती है, उसकी धारा यहाँ वैसी ही पतली है। पर नदी का पाट सरकारी आश्वासनों जैसा चौड़ा है। गर्मी में जब पानी चाहिए नदी सूखी पड़ी होती है। झमाझम बारिश में जब चारों तरफ पानी ही पानी होता है, नदी भी पूरे आवेग में बहती है। बाढ़ में पुलिया बहा ले जाती है। ग्रामवासी अपनी चरण पादुकाएँ सिर पर रख या दिल से लगा कर नदी पार कर रहे होते हैं। तब भी आदमी को ख़ुद से ज़्यादा अपनी चरण पादुकाओं का ध्यान रहता है।

चरण अब पादुकाओं में बंद रहते हैं। आशीर्वाद की ज़रूरत में मैं बड़े-बूढ़ों के चरण स्पर्श करना चाहता हूँ तो उनकी पादुकाएँ ही दिखती हैं। आशीर्वाद की जगह जूते ही मिलते हैं। लगता है जूते मिलने की परम्परा हमारी संस्कृति से जुड़ी है। मेरे कवि मित्र बिना बुलाए ही कवि सम्मेलनों में नंगे पाँव जाते हैं। बिना मानदेय के जाते हैं और जब लौटते हैं तो जूतों की चार-छः जोड़ियाँ उपहार में ले कर आते हैं। उपहार का उपहास करना उन्हें अच्छा नहीं लगता। उनका मानना है कि प्रसिद्ध व्यक्तियों को ही जूते पड़ते हैं। वे बताने लगे, ''पत्रकार वार्ता में एक पत्रकार ने जॉर्ज बुश के ऊपर जूता दे मारा, पहला निशाना चूका तो उसने दूसरा जूता भी दे मारा। दो जूते पा कर अमेरिकन राष्ट्रपति जॉर्ज बुश दुनिया भर में इतने प्रसिद्ध हो गए कि कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता, राष्ट्रपति ट्रम्प भी नहीं। पत्रकार की चर्चा तो कुछ महीनों में बंद हो गई पर जॉर्ज बुश जूते खाने के लिए अमर हो गए। याद रखें, जूते मारने वाले से जूते खाने वाला बड़ा होता है और उसे हमेशा याद रहता है कि उसे जूता पड़ा था।''

मुझे कवि मित्र की बात में दम लगा। दुनिया भर में लाखों व्यंग्यकार रोज़ ही तमाम विसंगतियों तथा कुप्रवृत्तियों पर तंज कसते हैं। देर रात तक कॉमेडी शोज़ चलाते हैं। लोग व्यंग्य को भी हँस कर टाल देते हैं, इन सबका कोई गंभीर नोटिस नहीं लेता। व्यंग्यकार ने शाब्दिक जूतों की बजाय भौतिक जूते चलाए होते तो दुनिया अलग हो सकती थी।

कुछ भी हो, इन दिनों फटे-पुराने जूतों की माँग बढ़ गई है, बड़े चुनाव आने वाले हैं। विरोधियों को जूते की माला पहना कर सम्मानित करने के लिए फटे-पुराने जूते ही चाहिए। नए जूतों से सम्मान को गरिमा नहीं मिलती।

क्या कहा आपने, आपके जूते नहीं मिल रहे। थोड़ी प्रतीक्षा कीजिए, मैं आता हूँ।

***

ग़ज़लें

सोनिया वर्मा

वो मेहनत से कमाना जानता है
कृषक फ़स्लें उगाना जानता है
नहीं लाचार चाहे मौन है वो
इशारों से बताना जानता है
नहीं वो ढाँक पाया क्यों तन अपना
जो खुद कपड़ा बनाना जानता है
अकेले जी रहा है इस जहाँ में
मगर रिश्ता निभाना जानता है
कभी खोया नहीं हिम्मत जो अपनी
गगन को वो झुकाना जानता है
दुआएँ ख़ूब मिलती हैं उसी को
जो रोतों को हँसाना जानता है

***

ये लम्बी आहें मैं जो भर रही हूँ
तेरी चाहत में सजदे कर रही हूँ
पुरानी हो गई हूँ आज बेशक
कभी मैं भी नया पैकर रही हूँ
बहुत ज़र है जमा,लेकिन ये मानो
कई बीमारियों से मर रही हूँ
बिता दी ज़िन्दगी पाया नहीं कुछ
अभी तक मील का पत्थर रही हूँ
उठाकर रख दिया तब मुझको पूजा
वगरना राह का कंकर रही हूँ
झुका दी है नज़र देखा जो तुमको
अदब है ये न समझो डर रही हूँ
समझ में आ गई दुनिया ये मुझको
कभी इस दर, कभी उस दर रही हूँ

***

जूनियर एम. आई . जी - 917
वीर सावरकर नगर
हीरापुर, रायपुर(छ.ग.) 492099
ई मेल: vermasonia783@gmail.com

नकलः परमो धर्मः

अशोक गौतम

धर्मलोक की धर्म निरपेक्ष नई सरकार को कई दिनों से लग रहा था कि उसके राज्य में धर्म की स्थापना में अड़चनें आ रही हैं, धर्म की चूलें हिल रही हैं। दूसरी ओर उसकी अपनी पार्टी के खास लोग भी उसे इस बात को लेकर परेशान करने लग गए थे कि उन्होंने सरकार बनाने में सरकार की मदद की है। और अब वक्त आ गया है कि सरकार उनकी मदद कर खास- खास पदों पर उनके बंदों को नियुक्त करे ताकि इस हाथ ले, उस हाथ दे के राजनीतिक नियम पर विश्वास बना रहे।

अपने खास लोगों के प्रेशर के चलते आख़िर सरकार ने अपने दल के धर्म डिग्रीधारक, डिप्लोमाधारक उम्मीदवारों की गिनती कर, राज्य में नव धर्म के उदय के लिए विभिन्न धर्मों के धर्म गुरुओं के रिक्त पदों को भरने की घोशणा कर दी। सभी अखबारों में, राज्य में, धर्म की स्थापना हेतु विभिन्न धर्मों के धर्मगुरुओं के पद आरक्षण के हिसाब से ब्योरेवार विज्ञापित कर दिए गए ताकि धर्म में भी आरक्षण की पारदर्शिता की मर्यादा बनी रहे।

अखबारों में धर्म गुरुओं के पद विज्ञापित होने के तुरंत बाद जिन धर्म गुरुओं का समाज में अपना धंधा नहीं जम पाया उन्होंने सरकारी पद पर आसीन हो धर्म का धंधा करने की सोची और अपने- अपने धूल चाटती डिप्लोमों-डिग्रियों को झाड़ने लगे।

देखते ही देखते अपने- अपने धर्म के धर्म गुरु अपने -अपने धर्म गुरू के पद हेतु अप्लाई करने के लिए इधर-उधर से अपने- अपने धर्म की सेवा के अनुभव के असली- नकली प्रमाण पत्र जुटाने को पसीना बहाने लगे। ज्यों ही आवेदन करने की सरकारी डेट के बाद की डेट खत्म हुई तो धर्म गुरू की नियुक्ति हेतु आवेदन के बाद सब अपनी- अपनी नियुक्ति को अंतिम रूप देने के लिए जी जान से जुगाड़ में जुट गए।

कोई होने वाला धर्म गुरु सिफारिश के लिए इस नेता को पकड़ रहा था तो कोई उस नेता को। कोई सिलेक्शन करवाने के चक्कर में उसे घूँस दे रहा था तो कोई इसे। ये कमबख्त सरकारी नौकरी होती ही ऐसी है। चाहे पीउन की ही क्यों न हो। उसके लिए जो भगवान् भी अप्लाई करें तो वे भी सिलेक्शन करवाने के लिए जो न करें, वह कम ही कम।

तय तिथि को राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में धर्म गुरुओं के चयन के लिए आयोग द्वारा लिखित परीक्षा आयोजित की गई। सरकार ने कड़ी मशक्कत के बाद इस बार पेपर लीक न होने दिया। उसके बाद भी जो पेपर लीक हो गया हो तो सरकार को इससे कोई लेना देना नहीं बनता था। क्योंकि लीकेज लोकतांत्रिक संस्कृति का अभिन्न अंग है।

अबके सरकार ने अपनी ओर से इस बात के हर पुख्ता इंतज़ाम किए थे कि कम से कम धर्म गुरुओं की होने वाली परीक्षा में परीक्षा केंद्रों में किसी भी तरह का कोई अनैतिक काम

संपर्कः गौतम निवास, अप्पर सेरी रोड़, नजदीक मेन वाटर टैंक, सोलन-173212 हि.प्र.
ईमेलः ashokgautam001@gmail.com
मोबाइलः 9418070089

न हो। दूसरी परीक्षाएँ तो अनैतिकताओं का सदुपयोग किए बिना सफल मानी ही नहीं जातीं। आज जिस परीक्षा में नकल न हो, उस परीक्षा का आयोजन सफल नहीं माना जाता। नई धर्म निरपेक्ष सरकार ने कठोर निर्णय लिया था कि उसके समय में सही धर्म गुरु छंट कर आएँ, जिससे धर्म निरपेक्ष समाज में विशुद्ध धर्म की स्थापना हो सके ताकि आने वाली सरकारें उनसे इस मामले में सीख लें कि समाज के लिए धर्म कितना ज़रूरी रहा है, होता है।

परीक्षा की सभी तैयारियाँ पूरी हो गईं तो सरकार ने तय किया कि क्यों न सभी धर्मों के भगवानों को परीक्षा केंद्रों के औचक निरीक्षण की ज़िम्मेदारी सौंप उन्हें अबके खासतौर पर उड़नदस्तों में शामिल किया जाए, क्योंकि धर्म का मामला सीधे तौर पर हर दिन भगवान् से और अधर्म का मामला इंसान से जुड़ा रहा है। आदमी तो बस दो जून की रोटी में ही फंसा रहता है हर युग में। उसे रोटी से कोई ऊपर उठाए तो वह भी कभी धर्म के बारे में सोच अपने को कृतार्थ करे। अत: यह सोच कर सरकार ने भगवान् को अबके इस परीक्षा में इसलिए भी हिस्सेदार बनाया कि कल को जो मीडिया ने परीक्षा में नकल को लेकर अंट शंट लिखा, दिखाया तो सीधे तौर पर नकल का ठीकरा भगवान् के सिर फोड़ देंगे कि यह परीक्षा भगवान् की देख-रेख में हुई थी।

धर्म निरपेक्ष सरकार के आदेश पा मुख्य धर्मों के भगवानों ने भी सोचा कि चलो, इस बहाने वे कम से कम मुत्युलोक में चलने वाली परीक्षाओं के बारे में ताज़ा जानकारी हासिल कर सकेंगे। दूसरे, इस बहाने घूमना- सूमना भी हो जाएगा सरकारी खर्चे पर।।

.....और वे स्वर्ग से अपने सहायक नारद को साथ ले मृत्युलोक के आवंटित परीक्षा केंद्रों का औचक निरीक्षण के लिए यथा स्थान यथा समय पहुँच गए।

परीक्षा केंद्र पर जाकर भगवान् ने देखा कि परीक्षा केंद्र में परीक्षा देने आए धर्म गुरुओं की हाज़िरी बहुत कम है। हर कोई हर कहीं बैठ रहा है। हर कोई हर किसी को किताब खोलकर दे रहा है। किसी ने अपना मोबाइल कान से लगाया है तो किसी ने अपने मोबाइल पर इंटरनेट खोल रखा है। नकल करने के एक से एक लाजवाब तरीके वहाँ इस्तेमाल हो रहे हैं। नकल करने वालों से अधिक नकल करवाने वाले निहाल हो रहे हैं। कमरे में नकल रोकने वाले ही ब्लैक बोर्ड पर कुछ लिख रहे हैं। कुछ परीक्षा लेने वाले परीक्षा भवन में तो कुछ परीक्षा भवन के बाहर बिक रहे हैं। सुइंतजाम को तैनात पुलिस वाले किसी को कुछ नहीं कह रहे। सारे सुरक्षा इंतजाम जैसे बकवास होकर रह गए हों। हैरान हो तब भगवान् ने नारद से पूछा,' हे नारद! ये हम कहाँ आ गए ?'

'प्रभु! आप धर्म गुरुओं के लिए हो रही परीक्षा केंद्र पर ही हैं। '

'पर क्या ये परीक्षा केंद्र ही है ? कहीं हम ग़लत जगह नहीं तो आ गए? 'तब नारद ने जेब से लैटर निकाला, पता देखा, उसके बाद बोले,' नहीं प्रभु ! पता तो यही है। यह हमें आवंटित हुआ परीक्षा केंद्र ही है।'

'तो आज के वक्त में धर्म के क्षेत्र में भी इतनी बेरोज़गारी? धर्म को लेकर तनी अफरा तफरी ? लगता है अब धर्म बिकना भी कठिन हो गया है?' भगवान् के माथे से उदासी टपकी।

'नहीं प्रभु! इस परीक्षा केंद्र पर रिकार्ड के हिसाब से परीक्षार्थी तो सौ ही हैं। '

'तो ये शेष तीन सौ कौन हैं??' प्रभु ने लंबी साँस ली।

'लगता है बाकि अपने-अपने धर्म के कैंडिडेट की सहायता करने आए हैं।'

'सहायता करने आए बोले तो??'

'उन्हें परीक्षा में नकल करवाने आए हैं ताकि वे अपने धर्म गुरू को सरकारी धर्म गुरू के पद पर सिलेक्ट करवा सकें,' नारद ने गर्व से कहने के बाद सिर नीचा कर लिया।

'नकल करवाने?' भगवान् ने कहते अजीब से मुँह बनाया तो नारद ने कहा,' हाँ तो प्रभु! इसमें इस तरह मुँह बनाने की बात क्या है प्रभु?'

'अजीब ही तो है। परीक्षा में नकल??

'आज नकल ही हर परीक्षा का धर्म है, हर परीक्षार्थी का मर्म है प्रभु! नकल के बिना हर परीक्षा अधूरी है। नकल ही हर परीक्षा के परीक्षार्थी की सफलता की धुरी है। जिस तरह चाय में चाय पत्ती ज़रूरी है, उसी तरह परीक्षा में नकल ज़रूरी है। इसके बिना परीक्षा देने का मज़ा ही नहीं आता।'

'मतलब??'

'सब अपनों- अपनों की सहायता करने आए हैं। कइयों ने कई धर्म विशेशज्ञ सहायता के लिए किराए पर भी लाए हैं। '

'तो इन्हें कोई रोकेगा नहीं?'

'नहीं। रोकेगा कौन?? इन्हें रोकने का मतलब है कुछ भी हो जाना। ये इस वक्त नकल करने के लिए कुछ भी कर सकते हैं।'

'क्यों?? ऐसा क्या??'

'हाँ प्रभु! यही अंतिम सच है। ऐसे में आज जो परीक्षार्थी परीक्षा में बैठकर नकल नहीं करता वह नकल के धर्म की अवहेलना करता है। नकल के धर्म को बनाए रखने के लिए हर परीक्षा में लिखना ज़रूरी नहीं, नकल करना ज़रूरी है।'

'मतलब??'

'प्रभु! यहाँ तो सरकारी नौकरी का सवाल है। इसके लिए तो जीव कुछ भी करने को उतारू हो जाए। बच्चे तो कच्चे पेपरों में भी नकल करते हैं और मास्साब की उँगली पकड़ मुस्कुराते हुए, सफलता के नित नए प्रमितान गढ़ते हुए निरंतर आगे बढ़ते हैं।'

'मतलब कि अब धर्म भी अब नकल के सहारे चल रहा है??? ऐसे में.....'

'प्रभु! नकल करने वालों के बीच टाँग मत अड़ाओ। चुपचाप अपनी ड्यूटी करो वरना.....' नारद ने कहा तो परीक्षा केंद्र में उड़नदस्तिए प्रभु उड़नदस्ते का औपचारिक धर्म निभाने की संवेदनशीलता को भाँप पास वाली कुर्सी पर सिर में हाथ दे, कान, आँखें, दिमाग सब बंद कर ज्यों ही बैठे तो परीक्षा भवन में तैनात कर्मचारी उनकी आव भगत में जुट गए। उनकी ऐसी भव्य आव भगत तो स्वर्ग में भी क्या होती होगी।

परीक्षा खत्म होने के बाद भी वे आँखें बंद किए अपने लोक को लौटने लगे। तो नारद ने कहा, 'प्रभु! पेपर खत्म हो चुका है। अब तो आँखें खोल दीजिए प्लीज़! कहीं गिर गए तो....,'

यह सुन प्रभु ने नारद का सहारा लिए कहा, 'नारद! मुझे तो लग रहा है अब यहाँ धर्म की नहीं, मेरी ही परीक्षा ही चल रही है। लगता है अब आँखें, कान, सब दिमाग बंद कर जीने के दिन आ गए।'

***

हिंदी साहित्य : परम्परा और युवा रचनाशीलता

राहुल देव

प्रेमचंद और रेणु जैसे कालजई कथाकार न केवल अपने समय में बल्कि आज भी सर्वाधिक पढ़े जाने वालों में से एक हैं। पाठक वर्तमान के तमाम लेखकों की भीड़ के बीच आज भी उनके लेखन को ढूँढ़कर रुचिपूर्वक पढ़ता है। दरअसल एक मध्यमवर्गीय परिवार और स्थान से निकलकर आने वाले प्रेमचंद और रेणु जैसे कथाकारों का साहित्य जीवन की प्रयोगशाला से निकलकर आने वाला उत्पाद था। वह अपने लोक/ समाज की नब्ज़ को बहुत अच्छी तरह से समझते थे। उनके लेखन की सबसे बड़ी सफलता तो इसी में है कि उसे पढ़ने पर आज भी वह पुराना नहीं लगता। इन लेखकों की भविष्यदृष्टि की भी सराहना करनी होगी जहाँ भौतिक विकास तो खूब हुआ लेकिन हमारी मूलभूत सामाजार्थिक संरचनाएँ ज्यों की त्यों ही रहीं। हम कितना भी प्रगतिशील होने का दिखावा कर लें लेकिन आज भी न जाने कितने रूपों में कितनी सामंतवादी सामाजिक बुराइयाँ हमारे मस्तिष्क के किसी कोने में अपनी पैठ बनाए हुए हैं। आज साहित्यिक-राजनीतिक मूल्यों के साथ साथ मानवीय व सामाजिक मूल्यों का भी क्षरण हुआ है। सब कुछ फ़ास्ट फ़ास्ट हो रहा है। यूज़ एंड थ्रो का ज़माना है। किसी के पास किसी के लिए समय नहीं बचा है, जिसका सीधा प्रभाव आज के साहित्यिक पठन-पाठन के माहौल पर देखा जा सकता है। पहले के लेखन के केंद्रबिंदु में पाठक होता था। समाज में साहित्यकार होना गौरव की बात माना जाता था। लेकिन आज के लेखक नैतिक रूप से कमज़ोर होते हैं। वे पद और पुरस्कार की आकाँक्षा में लिप्त हो जाते हैं। उनके लेखन में भाषा, विषय व शिल्प भले ही बदल गए हों लेकिन वे पाठक को अपनी ओर खींच नहीं पाते। आज के लेखक का लेखन मौलिक लेखन के बजाय फैशनेबल लेखन की तरह हो गया है। कालजई होने की बात तो छोड़ दीजिए यह फार्मूलाबद्ध लेखन पाठक को प्रभावित करने तक में सफ़ल नहीं हो पाता। संपादक भी अब उतने ज़िम्मेदार नहीं रह गए। पहले के लेखक अपनी सीमित आवश्यकताओं के साथ बहुत साधारण जीवन व्यतीत करते थे। लेकिन आज का लेखक महत्त्वाकांक्षी हो गया है, वह किसी चीज़ को लेकर प्रतिबद्ध नहीं होना चाहता है। ऐसा लगता है मानों साहित्य राजनीति के आगे आगे चलने की जगह उसकी अनुगामी मात्र हो गया है।

प्रेमचंद की गोदान, गबन, मानसरोवर हो, रेणु की 'मैला आँचल' हो या श्रीलाल शुक्ल की 'राग दरबारी'। लगभग हर दूसरे पढ़े-लिखे परिवार में आपको ये किताबें मिल जाएँगी जबकि आज के किसी नए लेखक की किताब का नाम लेने पर हो सकता है उसे उसके बारे में कुछ पता ही न हो। ऐसी किताबें सीधे छपकर पुस्तकालयों की भेंट चढ़ जाती हैं। आम पाठक को कुछ पता ही नहीं चल पाता। इस सम्बन्ध में शहरों की स्थितियाँ तो ठीक ठाक है लेकिन गाँवों-कस्बों की हालत तो बदतर है वहाँ आपको बहुत ढूँढ़े से भी कोई साधन

संपर्क: 9/48 साहित्य सदन, कोतवाली मार्ग, महमूदाबाद (अवध), सीतापुर, उ.प्र. 261203
ईमेल: rahuldev.bly@gmail.com
मोबाइल: 09454112975

नहीं मिलेगा जिससे आप नई-नई किताबों के बारे में जानकार उन्हें खरीदकर पढ़ सकें। अच्छा इधर के लेखकगण भी शायद अब पाठकों के लिए नहीं लिखते, वे तो प्रकाशक/ आलोचक के लिए लिखते हैं जिनकी कृपादृष्टि उन्हें एक दिन सातवें आसमान पर पहुँचाएगी फिर पाठकों की परवाह उन्हें क्यों करनी। उसे प्रेमचंद और रेणु ही पढ़ने का विकल्प छोड़ रखा है साहित्यिक सिस्टम के कर्ताधर्ताओं ने। लेकिन कुछ भी कह लें। समय बड़ा बलवान होता है। एक न एक दिन वह सबको आईना दिखा देता है। हमें समझना होगा कि तात्कालिक सफलता कालजई होने का मापदंड नहीं होती। साहित्यिक जगत् में इतनी राजनीति, उठापटक घुस गई है कि सामान्य पाठक ने लगभग उससे अपने आप को अलग कर लिया है उसे अपने उन्हीं पुराने रचनाकारों में अपनी पाठकीय क्षुधा की पूर्ति नज़र आती है। उसकी रुचि नए साहित्य में समाप्त प्राय ही है। यह स्थिति भविष्य को देखते हुए कतई अच्छी नहीं कही जा सकती। इस सिस्टम को बदलने/ रिफ्रेश करने की ज़रूरत है।

अब लेखक-प्रकाशक-पाठक के मध्य भी माहौल बदल रहा है। बाज़ार और उपभोक्तावादी संस्कृति से आज साहित्य अछूता नहीं है। जहाँ बड़े प्रकाशन गृहों की नज़र पुस्तकालयीय खरीद पर ज़्यादा रहती है जबकि इधर उभरे छोटे प्रकाशकों की नज़रें पाठक पर अधिक रहती है। लघु पत्र-पत्रिकाएँ अपने सीमित संसाधनों के बावजूद बहुत अच्छा काम कर रही हैं। कुछ लेखक हालाँकि बड़ी ईमानदारी से आज भी साहित्य साधना में लगे हुए हैं जिन्हें पाठक भी मिलते हैं और प्रसिद्धि भी। लेकिन उनकी संख्या गिनी-चुनी ही है। आज जब हम हर क्षेत्र में आगे जा रहे हैं तो इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में अपने पूर्ववर्ती लेखकों से पीछे क्यूँ ? आज के साहित्यिक लेखन में वह दम क्यूँ नहीं आ पाता जोकि पहले लिखे जा चुके कालजयी लेखन के समक्ष सीना तानकर खड़ा हो सके। यह सबसे बड़ा प्रश्न है जिसका उत्तर/ चिंतन हर उस व्यक्ति को करना चाहिए जो इस क्षेत्र से किसी भी तरह से जुड़ा हुआ है।

***

लघु कथा

वायरल वीडियो का सच

मार्टिन जॉन

रिमोट से टी.वी. के चैनलों को इधर-उधर घूमाते-घूमाते वह एक चैनल पर आकर ठहर गया। उस ख़बरिया चैनल में एक वायरल वीडियो का सच की पड़ताल की जा रही थी। वायरल वीडियो पति द्वारा पत्नी को प्रताड़ित करने वाला था। वह सँभल कर बैठ गया और अपना सारा ध्यान टी. वी. की स्क्रीन पर केन्द्रित कर लिया। वाल्यूम को तेज़ करते हुए वह शरीर की समस्त इन्द्रियों को एकत्रित कर देख रहा था - पति भद्दी -भद्दी गालियाँ देते हुए पत्नी को पीट रहा था - कभी डंडे से, कभी लात-घूँसों से। कभी सर के बाल खींचकर घसीटते हुए फर्श पर पटक रहा था, कभी बड़ी बेरहमी से पलंग पर आलू के बोरे की तरह फेंक रहा था। पत्नी रोते हुए हाथ जोड़कर प्रताड़ित न करने की गुहार लगा रही थी। उसके कपड़े अस्त -व्यस्त हो चुके थे। वह लगभग अर्द्धनग्न-सी हो गई थी। लेकिन पति पर हैवानियत सवार थी। औरत पर ज़ुल्मो-सितम और बहशियाना सलूक का मंज़र देखकर उसकी मुट्ठियाँ तन गईं। खून में उबाल आ गया। उस मर्द की क्रूरता उसे कतई बर्दाश्त नहीं हो रहा थी। क्रोध और आवेश में वह टी.वी.के क़रीब जा पहुँचा। उसका जी चाह रहा था कि स्क्रीन के अन्दर छलाँग लगाकर उसकी टोंटिया दबा दे। 'उफ़ ! औरत पर ऐसा ज़ुल्म ! ....जंगली ....जानवर ...स्साला सूअर की ...'

''अजी सुनते हो, चावल ख़त्म हो गया है। लाना होगा अभी !''

पत्नी का फरमान उसके कानों तक पहुँचा। लेकिन उसने अनसुना कर दिया। उस वक्त उसकी मसरूफ़ियत किसी प्रकार की रुकावट नहीं चाह रही थी। इसलिए खुद को उस मंज़र से हटाना मुश्किल था। आगे के घटनाक्रम से वाकिफ़ होने को बेताब था।

उसकी ओर से कोई प्रतिक्रिया न पाकर पत्नी उसके क़रीब आकर थोड़ी ऊँची आवाज़ में अपना फरमान दुहराया, ''जाओ भी ज़ल्दी, ले आओ चावल। बच्चों का स्कूल से आने का समय हो गया है।

''चोप, बेहूदा औरत !'' औरत पर ज़ुल्म से उपजा उसके भीतर का सारा क्रोध एक ज़ोरदार, असामान्य चीख में तब्दील होकर बिजली की मानिंद पत्नी पर जा गिरा।

पति की इस अप्रत्याशित प्रतिक्रिया पर वह हतप्रभ होकर उसके तमतमाए चेहरे को कुछ पल निहारती रही। दूसरे ही पल बगैर रिमोट का इस्तेमाल किए टी.वी. के कनेक्टिव स्विच को एक ही झटके में ऑफ़ कर रसोई की ओर बढ़ गई।

***

संपर्क: अपर बेनियासोल, पो. आद्रा, जि. पुरुलिया, पश्चिम बंगाल, 723121,
मोबाइल 09800940477
ईमेल : martin29john@gmail.com

पारसी थियेटर: बॉलीवुड के पूर्वज

डॉ . अफ़रोज़ ताज

(पारसी थियेटर का आख़िरी सितारा शन्नो देवी के साथ लेखक)

हुस्न आरा स्टेज पर गाती है:

किस तरह देखेंगी आँखें हाय इस बेदाद को
सामने माँ के ही जब फाँसी लगे औलाद को

कथावाचक का यह शेर मैं बचपन से पढ़ता आ रहा हूँ।

पंडित राधेश्याम कथावाचक का नाम कौन नहीं जानता, ये वही हैं जिन्होंने रामायण को राम लीला के लिए नाटक के रूप में लिखा। इस नाटक को इतनी सफलता मिली कि यह नाटक राम लीला के रूप में आज तक खेला जाता है। ये वही पंडित राधेश्याम जी हैं जिन्होंने अपनी ज़िन्दगी के ख़ास हिस्से में उर्दू का बहुत प्रसिद्ध ड्रामा ''मशरिक़ी हूर'' लिखा था। यह ऊपर वाला शेर उसी नाटक से है। हालाँकि पूरा नाटक ही रोमानी है, परन्तु इस नाटक में उस समय जगह-जगह देश पर हो रहे अत्याचार और ज़ंजीरों से आज़ाद होने के संघर्ष के इशारों के साथ-साथ रोमान्स की चाश्नी भी है।

ख़ुदा जाने कि आँखों ने मेरी कैसा समाँ देखा
न दुनिया में कहीं देखा था जो मैंने यहाँ देखा
निगाहों में तेरी नक़्शा नज़र आया ख़ुदाई का
लबों की मुस्कुराहट में ख़ुदा को महरबाँ देखा

वाह! क्या ग़ज़लें और कविताएँ थीं नाटक ''मशरिक़ी हूर'' में! विश्वास नहीं होता, कि यही है वह लेखक जिसने रामलीला नाटक लिखा। हालाँकि रामलीला भी उर्दू के शेरों से भरा हुआ था, इतना पसंद किया गया था कि इस नाटक ने रामलीला की परंपरा ही मज़बूत कर दी। इनकी ''मशरिक़ी हूर'' को पारसी थियेटर की एक मशहूर कम्पनी न्यू ऐल्फ्रैड नाटक कम्पनी आफ़ बम्बई ने मणिक शाह कोलाभाई बलसारा प्रकाशक के द्वारा 1935 में प्रकाशित करा दिया। यह वह दौर था जब अंग्रेज़ों के विरुद्ध खुलकर कहने का किसी को साहस न था। हर बात साहित्य के पर्दे में की जा रही थी। इस में पारसी थियेटर का अच्छा ख़ासा रोल रहा है। मगर यह पारसी थियेटर है क्या चीज़?

आइए, मैं आपको एक बहुत पुरानी कहानी सुनाता हूँ, जो न आपने नानियों की कहानियों में सुनी होगी, न दास्तानों में, न महाभारत में, न रामायण में, न दास्तान-ए अमीर हमज़ा में, न परिस्तान की कहानियों में, न अलौकिक कथाओं में, न फ़िल्मों में, न आल्हा ऊदल में, न अलिफ़ लैलाओं में। बल्कि वह जिसकी यह कहानी है, स्वयं अपने साथ दास्तानें, महाभारत से लेकर अलिफ़ लैला तथा अलौकिक कथाओं को लेकर चली है और वह है पारसी थियेटर। जो इतनी कहानियों को लेकर चला उसकी कहानी कोई नहीं जानता, उसकी दास्तान कोई नहीं सुनाता।

चलिए, मैं इसकी दास्तान आपको सुनाता हूँ। मैं यह बात अपने बचपन के एक क़िस्से से

संपर्क:101 Camille Court, Chapel Hill NC 27516, USA
ईमेल: taj@unc.edu
मोबाइल:919-999-8192

शुरू करता हूँ। यह वह दौर था जब मैं शायद आठवीं या नवीं कक्षा में पढ़ता था, ऊपर छत पर चान्दनी की ठंडी ठंडी रात में अपनी परीक्षाओं की तैयारी करने में हमें बड़ा मज़ा आता था। लेकिन अकसर दूर से आ रही ढोल ताशों की आवाज़ें हमारा ध्यान बटा देती थीं। ये आवाज़ें हवा की गति के घोड़े पर सवार हमारी छत के छज्जों से टकरा-टकराकर कभी तेज़ कभी हलकी हो जाती थीं, मानों हमें अपने पास बुलाने का न्योता दे रही हों। मेरे बड़े भाई और मेरी आँखों से आँखें मिलतीं और वे कह उठते, ''चलें?''

पलभर में हम बराबर की छत से लगी दूसरे घर की छत की सीढ़ियों से उनके खुले आँगन में उतरते, सोए हुए लोगों की चारपाइयों के बीच से बचते-बचाते, बिना किवाड़ लगे दरवाज़े को पार करते, गलियों को पीछे छोड़ते, कुत्तों को पीछे लगाते अपनी बस्ती के बाहर एक खेत के मैदान में अपने को पाते, जहाँ नौटंकी अपने ज़ोर-शोर पे होती। स्टेज पर लड़के-लड़कियों के रूप में जिनके चहरे सफ़ेद -सफ़ेद पुते हुए झिलमिल चमकियों से चमकते, परिस्तान की परियाँ बने हुए थे, और पतले-पतले लड़के शहज़ादे बने लड़कियों की तरह मटक-मटक के नाच रहे थे, जिनकी काली काली गर्दनों पर पसीनों की लकीरें उनकी मेहनत का सबूत दे रही थीं। नक़्क़ारे (नगाड़े) धुआँ धार बज रहे थे। बीड़ियों का धुआँ अपने ज़ोर पे था कि खुली हवा में साँस लेना कठिन था परन्तु वाह वाह! रसिये, ढोले, ग़ज़लें, होरियाँ गाई जा रही थीं। कहानी क्या थी? न उसका सर समझ में आ रहा था न पैर। हंडे की रोशनी में हम तो थिरकते हुए पैर और उनसे लिपटी हार्मोनियम, सारंगी की आवाज़ से मुग्ध हो रहे थे। मेरे बड़े भाई भी मेरी तरह कला के रसिया और खिलंदड़े थे। देखा, तो दो घंटे बीत चुके थे। घबराकर वापस भागे। जो चसक, रस और चाश्नी इन दो घण्टों में मिली हज़ारों फ़िल्में निछावर, मुझे फिर कहीं उम्र के किसी हिस्से में न मिली।

ओहो! कहना भूल गया... एक जगह और मुझे वही चसक, रस, और चाश्नी का अनुभव हुआ, 'वह था' कहने में डरता हूँ कि कहीं आप ग़लत न समझ लें, चलिए मैं कनफ़ैस किए देता हूँ। यह भी बचपन के

बापूलाल नायक और जयशंकर भोजक सुंदरी

उसी उम्र के दौर की बात है, हमारी गली से लगभग पाँच दस गलियाँ छोड़कर, बाज़ार से परे, सूत की मंडी को पार करने के बाद एक मोहल्ला शुरू होता था जिसका नाम था मनौटा मोहल्ला। दिन में अजीब अजीब-सा ख़ाली ख़ाली-सा सोता हुआ-सा, ख़ाक उड़ती सी ... परन्तु रात में, क्या कहने, जगर मगर पनवाड़ियों की दुकानें, महकते हुए चमकते हुए कमरे, भीनी-भीनी-सी मोगरे की सुगंध हवा में, मकानों से झाँझरें, घुँघरू, बिछुओं के झनकने की आवाज़ें तबले की थापों के साथ मेखला और पैंजनियों की रुनझुन सारे मोहल्ले को जगा के रख देती थीं। चोरी-छुपा मैं भी पहुँच जाता। केवल मैं... और कोई नहीं। यह उम्र पूरी बात समझने की नहीं थी लेकिन हाँ, सम्मोहन, जिज्ञासा, और सवालात करने की उम्र ज़रूर थी। मुझे केवल एक ही आवाज़ अपनी ओर खींच लेती थी। उसके घर के पिछवाड़े के कमरे के दरवाज़े की एक दरार से मुझे जो कुछ दिखता, मेरे लिए जन्नत समान था।

एक सुन्दर सी औरत हलके गुलाबी रंग के कसे हुए कपड़े पहने और ऊपर उस से भी कसी लाल रंग की सलमा सितारों से कढ़ी चोली, जो सीने के उभार को और उभार देती। फूलों के गहनों से लदी फंदी, बड़ी सुरीली आवाज़ से गाती। ''श्याम मोसे खेलो न होरी'' और कभी कभी गाती ''बाजूबंद खुल खुल जाए'' और कभी वह अपने शोख़ अंदाज़ में गाती

तेरा बड़ा बुरा हो ओ दर्जी, तूने सीने पे अंगिया तंग कर दी

क्या आवाज़ थी, क्या अदा थी। माइक्रोफ़ोन के बिना आवाज़ में वह शक्ति, वह गहरापन, वह भाव, और दिल को छूने वाली अदाएँ.. काश मैं भी सुनने वालों के साथ बैठ सकता। आठवीं नवीं कक्षा की उम्र ही क्या होती है, मुझे कान से लटकाके बाहर फैंक दिया होता। सवाल बार-बार मन में आता ये लोग कौन हैं, कितनी ज़िन्दगी है इस औरत में। कितनी जान है साज़िन्दों में। जीवन को जी भर के जीने का जोश तो कोई इन से सीखे।

एक बार मैं अपने सबसे बड़े भाई के साथ, रिक्श। में, वहीं से दिन में गुज़र रहा था। हिम्मत करके उसी मकान की तरफ़ इशारा करके पूछा, ''इस में कौन रहता है, भाई जी?'' उन्होंने मेरी ओर पूरा मुड़कर मुझे ताड़ने वाली नज़र से देखा और पूछा, ''मतलब?'' मैं सहम गया, फिर न पूछा।

लम्बे विराम के बाद वे स्वयं ही बोले, यह एक तवाइफ़ का घर है। यानि गाने-नाचने वाली का। यह मोहल्ला इन्हीं लोगों का है। परन्तु यह औरत इन सब से बहुत पुरानी है, तुम अभी बच्चे हो, छोटे हो, नहीं जानते, यह एक पारसी थियेटर की रक़्क़ासा और मुजरे वाली थी। कभी बम्बई में पारसी थियेटर हुआ करते थे। यह उन्हीं में अभिनय करती और गाती-नाचती थी। पुरानी बात है, यह यहाँ से किसी थियेटर वालों के साथ बम्बई भाग गई थी, लेकिन जब यह थियेटर कम्पनियाँ हलकी पड़ गईं, तो यह हमारे क़सबे में, कासगंज में वापस आ गई। इसका नाम है रईस जान।

मैं सुनता रहा..... सुनता रहा, और क्या करता। सवाल की हिम्मत न हुई कि पारसी थियेटर किस चिड़िया का नाम है? हाँ मगर मैंने इस सवाल को गाँठ बाँध कर रख लिया और बड़ा होने का इन्तज़ार करने लगा। मेरे मन में कई प्रश्न पंछी मंडरा रहे थे... यह पारसी थियेटर क्या है, ये पारसी लोग कौन हैं, यह थियेटर प्रथा क्यों समाप्त हुई, इसका महत्त्व क्या है, साहित्य में इसका क्या स्थान है, क्या इसका कोई पुनर्जन्म हुआ, क्या कोई अवतार होगा, इसका मुम्बई से क्या और क्यों सम्बंध है? इत्यादि।

शायद ये प्रश्न मेरे ज़हन से लुप्त हो जाते परन्तु चूँकि मैं आज भारतीय सिनेमा का

कोर्स पढ़ाता हूँ तो यह तमाम प्रश्न मेरे सम्मुख फिर वापस आ गए। सबसे बड़ा सवाल यह कि पारसी थियेटर से भारतीय सिनेमा का क्या रिश्ता है। मैंने इतिहास से लेकर साहित्य की किताबों में ढूँढ़ा, कुछ उत्तर मिले, कुछ निकाले, कुछ कड़ियाँ मिलीं, कुछ बनाईं।

सातवीं शताब्दी की बात है जब ईरान में इस्लाम आया। उस समय ईरान में अधिकतर लोग ज़ोरोआस्ट्रियन (ज़रथुष्ट्र) थे। लेकिन उन सब ने ही इस्लाम के उस फ़ैशन को नहीं अपनाया। इन ज़ोरोआस्ट्रियन लोगों में कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने अपना धर्म नहीं बदला। आज भी हज़ारों ज़ोरोआस्ट्रियन ईरान में रहते हैं, जिस तरह ईसाई, बहाई, और यहूदी। मगर हाँ, वहाँ मुस्लिम 99 प्रतिशत हैं।

इन्हीं ज़ोरोआस्ट्रियनों में कुछ एक आठवीं नवीं शताब्दी में भारत के पश्चिमी तट की ओर आए, जो आज यह इलाक़ा गुजरात और महाराष्ट्र कहलाता है। यहाँ भारत में आकर ये लोग पारसी कहलाए। पारस के ये लोग अर्थात् फ़ारस के रहने वाले, जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, ईरान के वासी थे। ईरान को फ़ारस भी कहा जाता था। जो पारसी भारत आए, उनकी भाषा फ़ारसी थी। यह भाषा कुछ सदियों में धीरे-धीरे गुजराती, मराठी तथा उर्दू-हिन्दी से मिश्रित होती चली गई और इसने एक अपना ही निराला रूप धारण कर लिया मगर हाँ उनकी भाषा और संस्कृति पर आज भी परशियन यानि कि फ़ारसी का अच्छा ख़ासा प्रभाव है। यही कारण है कि इनके नाम अभी भी अधिकतर फ़ारसी के होते हैं जैसे जमशेद, फ़ीरोज़, शाहीन,

आदम, ख़ुरशीद, फ़रदीन इत्यादि इनके धर्म का नाम ज़ोरोआस्ट्रियन है और जातीयता का नाम पारसी है।

ये लोग बहुत पढ़े-लिखे, आधुनिक विचार वाले तथा प्रगतिशील और मेहनती होते हैं। पढ़े-लिखे होने के कारण इन में परिवार नियोजन की बहुत जागरूकता है। उन्नीसवीं शताब्दी तक ये पारसी लोग भारत में बहुत सफल व्यापारिक समुदाय बन चुके थे, जैसा आप जानते हैं कि प्रवासियों में पैसा बनाने की चेतना ज़्यादा होती है। भारत में विशेष कर महाराष्ट्र तथा गुजरात के क्षेत्रों में

फ़ातिमा बेगम

उनके व्यापार का बड़ा बोल-बाला था। उनके ख़ास व्यापारों में एक व्यापार शराब का भी था जो अधिकतर महाराष्ट्र में था। यह दौर अंग्रेज़ों का दौर था। भारत अंग्रेज़ों के हाथ में जा चुका था। चूँकि हिन्दू और मुसलिम लोग शराब का व्यापार करने से हिचकिचाते थे, इसीलिए पारसियों को ही अंग्रेज़ों की पार्टियों में शराब का व्यापार करने को मिलता था। पारसियों ने देखा कि यह अंग्रेज़ लोग अपने मनोरंजन के लिए बड़ी-बड़ी पार्टियों में पश्चिमी डान्स, ओपेरा तथा संगीत के कार्यक्रम करते हैं तथा यूरोप से भी ओपेरा इत्यादि मंगवाते हैं। अत: पारसियों के मन में एक तरह का व्यापार और सूझा कि क्यों न इस तरह की चीज़ें हम भी करें। ईरानी शौक़ भी पूरा होगा तथा अपनी संस्कृति की सेवा भी होगी और पैसा बनेगा सो अलग।

पारसी थियेटर कहाँ से आया, इस प्रश्न का उत्तर न बंबई, न लाहौर, न कलकत्ता, न मद्रास में मिलेगा। इसका जवाब सिर्फ़ लखनऊ में मिलेगा। भारतीय तथा ईरानी कहानियों का मिश्रण, एक नाटक "इन्द्र सभा" 1853 में लखनऊ में लिखा गया। इस नाटक के लेखक आग़ा हसन अमानत लखनवी थे जिन्होंने वाजिद अली शाह के दरबारी नाच और ड्रामे, भरत मुणि के नाट्यशास्त्र, दास्तान-ए गुल बकावली, फ़साना-ए अजाइब, कालीदास के संस्कृत नाटक, गाँव की नौटंकी, स्वाँग, लखनऊ की तवाइफ़ों के मुजरे, तथा उत्तर प्रदेश की राम लीला को मिलाकर एक अनोखा, अछूता नाटक तैयार किया, जिसमें अमानत लखनवी ने ग़ज़ल, ठुमरी, होरी, दादरा, मनक़बत, नातें, भजन, रुबाइयाँ, तथा दोहे डाले और इन सब के साथ परिस्तान की परियाँ, लखनऊ का शहज़ादा गुलफ़ाम, तथा महाराजा इन्द्र, जोगन और देव इत्यादि मंच पर ला खड़े किए। अमानत का यह एक नया अनुभव था। पूरा का पूरा नाटक काव्य, संगीत और नृत्य का भरपूर मिश्रण था। सारे संवाद कविताओं या शेरों में थे। इस "इन्द्र सभा" की कहानी भरतमुणि के नाट्यशास्त्र से ली गई थी, जिसको अमानत ने उर्दू का रूप दे दिया या यह कहूँगा कि इसे फ़ारसी का रंग दे दिया।

भगवान् इन्द्र के सामने उस की मुख्य अप्सरा नर्तकी उर्वशी के नृत्य करते समय उसकी दृष्टि अपने प्रेमी जयंत पर पड़ गई और उसी समय ताल भंग हो गई। भगवान् इन्द्र भाँप गए। उन्होंने दण्ड के रूप में उर्वशी को इन्द्रलोक से बाहर निकाल दिया। अमानत ने भी अपने नाटक में "इन्द्र सभा" का दरबार सजाया; जिस में सब्ज़ परी राजा इन्द्र की मुख्य नर्तकी है जिसका प्रेमी गुलफ़ाम है। राजा इन्द्र भी गुलफ़ाम के बारे में सुनकार बहुत क्रोधित होता है। परिणाम स्वरूप सब्ज़ परी भी दर-दर भटकती है। गुलफ़ाम को कुएँ में क़ैद कर दिया जाता है। इस नाटक में एक के बाद एक सारी परियाँ मंच पर आती हैं, और अपने-अपने ढंग में नृत्य करती हैं तथा ग़ज़ल, गीत, भजन, होरी, नातें, दोहे गाती हैं।

अमानत समझ चुके थे कि अब भारत में एक ऐसा दर्शक गण है जो ख़ुद विविध होकर विविधता यानि रंगीन मसाला पसंद करेगा। इस नाटक में संदेश है कि एक ही नाट्यशाला में सब तरह के लोग कंधे से कंधा मिलाकर सब तरह की गायकी को पसंद क, चाहे ग़ज़ल हो, भजन, या होरी। जब एक कलाकार मंच पर एक ही समय में ये तमाम विभिन्न प्रकारों के काव्य तथा गायकी पेश कर सकता है तो एक सुनने वाला ये सारी चीज़ें क्यों नहीं समझ सकता। दूसरी बात यह कि अमानत की अपेक्षा थी कि विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों के लोग एक ही छत के नीचे बैठकर अपनी और दूसरों की पसंद का एक साथ मिलकर आनन्द लें। कलाएँ भिन्न हों तो क्या हुआ

पर ये कलाएँ एक दूसरे के साथ मिलकर एक दूसरे को और सुन्दर बनाती हैं। इसी कारण अमानत ने परियों के नाम भी अलग-अलग रंगों के नामों पर रखे जैसे सब्ज़ परी, नीलम परी, पुखराज परी इत्यादि। ये सारे रंग एक दूसरे के लिये परिपूरक हैं। अंत में सब्ज़ परी अपने गुलफ़ाम (देश) को आज़ाद करवा लेती है और सारी रंग बिरंगी परियाँ इसी मंच पर मिलकर जीत का गीत गाती हैं। याद रहे इन परियों में कोई सफ़ेद (गोरी) परी नहीं है। इसी संकेत ने नाटक ''इन्द्र सभा''में मेरी रुचि बढ़ाई थी। इस नाटक के बारे में लोग लिखे जा रहे हैं कि यह नाच रंग की महफ़िल है परन्तु मैं इस मनोरंजन की महफ़िल में छुपे हुए गंभीर संदेश भी महसूस कर रहा हूँ। याद रहे यह नाटक 1857 से पहले लिखा गया। ''इन्द्र सभा''पर विस्तार से फिर कभी बात होगी।

हाँ तो मैं कह रहा था कि हर तरफ़ ''इन्द्र सभा''के चर्चे थे। सब ने इसे पसंद किया। संदेश से भरी नाच और रंग की यह महफ़िल लोगों को ख़ूब पसंद आई। अमानत का अनुमान सही निकला। 1853 में जब ''इन्द्र सभा''लिखी गई भारत का समय बहुत संवेदनशील था। कहना पड़ेगा कि अमानत की क़िस्मत अच्छी न थी। चार साल बाद ही 1857 आ गया, और ग़दर शुरू हो गया। चारों ओर अंग्रेज़ों के अत्याचार और क़ब्ज़े होने लगे।

लखनऊ और दिल्ली मैदान-ए जंग बन गया। सारे कलाकार, कवि, शायर, नाचने-गानेवाले, संगीतकार, साहित्यकार, तथा साहित्यिक लोग एक दूसरे से बिछड़ गए। कलाकार लोग वहाँ पहुँचे जहाँ पैसा था, जहाँ अंग्रेज़ों के अड्डे थे, उनकी कोठियाँ थीं तथा उनके व्यापार केंद्र थे जैसे बंबई और कलकत्ता। ये वे जगहें थीं जहाँ समुद्र का तट था। इन स्थानों पर व्यापार के लिए अंग्रेज़ों को आसानी थी तथा इस से महत्त्वपूर्ण था कि यदि उन्हें भागना पड़े तो पानी के जहाज़ों पर कूदकर रफ़ू चक्कर हो सकते हैं।

अंग्रेज़ों ने भारत के बटुए को उल्टा कर दिया, लखनऊ और दिल्ली के चमकते सितारे हिन्दुस्तान के बीच से किनारों पर आ गए। इसीलिए ''इन्द्र सभा'' के दूसरे अवतार बम्बई में ही हुए। इस नाटक की नक़लें होने लगीं और तरह-तरह की इन्द्र

ज़ुबेदा ख़ातून

सभाओं के प्रदर्शन होने लगे, क्योंकि बम्बई में उस समय पारसी लोग पहले से जमे हुए। थे, 1860 के आस-पास वे पहचान चुके थे कि इस तरह के नाटकों से पैसे बनाने की कितनी क्षमता है। उन्होंने ''इन्द्र सभा''को हाथों-हाथ लिया तथा चुने हुए संगीतकारों तथा कलाकारों को लेकर भारत में झंडे गाढ़ दिए। इसके साथ-साथ पारसियों के थियेटरों ने ब्रिटिश, शेक्स्पीयर, हिन्दू धार्मिक कथाओं, फ़ारसी शाह नामों, दास्तानों, अलिफ़ लैलाओं, लैजंड कथाओं, और मौखिक कथाओं का अनुवाद करके उर्दू नाटक लिखे। गुजराती से उर्दू में कितने अनुवाद हुए उनका कोई शुमार नहीं। उसी दौर में एक पारसी रईस ने एक नाटक गुजराती में लिख कर ''राजा गोपीचंद और जलंधर'' के नाम से उर्दू में अनुवाद किया जिसको बहुत ख्याति मिली तथा इसी तरह एक और नाटक ''पठान सरफ़राज़ और गुल'' को भी वही ख्याति मिली। ''ख़ुदाबख़्श'' तथा ''अलीबाबा'' जैसे प्रसिद्ध नाटक भी गुजराती से अनुवाद किए गए हैं (''रंग प्रसंग'' जनवरी-मार्च 2004 नैशनल स्कूल आफ़ ड्रामा, नई दिल्ली)। इतिहास और वर्तमान व्यंग्य भी इन नाटकों के विषय रहे हैं। वे नाटक अत्यंत सफल रहे जिन में गंगा-जमनी संस्कृति का रंग था। यह फ़ार्मूला इतना कामयाब रहा कि वे उसी को बार-बार दोहराते रहे। ख़ूब साहित्यिक चोरियाँ होती थीं, नाच, गाने,ऐक्शन, तथा ''स्पैशल इफ़ैक्ट्स'' एक दूसरे से चुराए जा रहे थे।

बहुत सारी पारसी थियेटर कंपनियाँ बनने लगीं। सन 1861 तक लगभग उन्नीस थियैट्रिकल कंपनियाँ केवल बम्बई में ही उपस्थित थीं, जो अधिकतर सिर्फ़ उर्दू अर्थात् हिन्दुस्तानी के ड्रामे दिखाती थीं। इन कम्पनियों के सारे नाम गिनाना इस समय मुशकिल है परन्तु कुछ विशेष नाम लिए लेता हूँ। ऐल्बर्ट नाटक कम्पनी, ऐल्फ़िनस्टन ड्रामाटिक क्लब, ओरियंटल नाटक मण्डली, ओरिजनल विक्टोरिया क्लब, पारसी स्टेज प्लेयर्ज़, पारसी नाटक मण्डली, पारसी विक्टोरिया ओपेरा ट्रूप्स, शेकस्पियर नाटक मंडली तथा ज़ोरोआस्ट्रियन ड्रामाटिक सोसायटी इत्यादि।

बहुत सारी पारसी थियेटर कम्पनियाँ टूर भी करती थीं, दक्षिणी एशिया में ही नहीं बल्कि उस से आगे, दक्षिण पूर्व एशिया में जावा और मलयशिया तक भी जाती थीं। इन कम्पनियों के संरक्षक अधिकतर पारसी होते थे, पर कलाकार तथा संगीतकार और गायक इत्यादि मुस्लिम, हिन्दू, या ईसाई भी हो सकते थे। ये लोग स्थानीय भाषाओं में भी ड्रामे प्रस्तुत करते थे जैसे गुजराती, बंगाली, पंजाबी, तथा मराठी इत्यादि। परन्तु पहला महत्त्व हिन्दुस्तानी मिली जुली भाषा उर्दू को ही दिया जाता था, जिसे सामान्य भाषा (lingua franca) माना जाता था, और जो एक दूसरे से एक दूसरे को जोड़ती थी। इसे शहरी भाषा भी कहा जाता था क्योंकि अधिकतर यह भाषा शहरों में ही प्रचलित थी, गाँवों में या घरों में अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषाएँ बोली जाती थीं। मज़े की बात यह है कि पारसी थियेटर ने उर्दू को प्राथमिक भाषा चुना क्योंकि यह नाटकों के लिए दर्शकों की पसंदीदा भाषा थी और इसीलिए यह उर्दू भाषा मनोरंजन के क्षेत्र में और भी पसंदीदा बनके ज़्यादा फैल गई। इस भाषा का रिश्ता शो बिज़निस में, संगीत, संवाद, और शायरी से मज़बूत होता चला गया। इसी लिए संचालक अपने थियेटरों में अधिकतर उर्दू भाषी जिनका उर्दू पर नियंत्रण हो, और जिनका उर्दू उच्चारण दुरुस्त हो, उन्हीं को लेते थे या उनका उच्चारण दुरुस्त करवाते थे। उदाहरण के तौर पर मैं पारसी थियेटर के कुछ लेखकों और कलाकारों के नाम देता हूँ जो उर्दू के प्रकांड थे जैसे ख़ुरशीद, तालिब बनारसी (मुंशी विनायक प्रसाद), बेताब

(पंडित नारायण प्रसाद), आराम (नौशेरवानजी महरवानजी), हुबाब (अमानुल्लह ख़ाँ), ज़रीफ़ (हुसैनी मियाँ), और रौनक़ बनारसी (महमूद अली)। ये लेखक अधिकतर कलाकार भी थे तथा बड़े ही भावुक और नाज़ुक दिल। एक क़िस्सा उनकी भावुकता का सुनें।

एक दफ़ा की बात है। बहुत मशहूर लेखक तथा कलाकार रौनक़ बनारसी स्टेज पर अभिनय कर रहे थे। उनको एक दृश्य में आत्महत्या करनी थी, स्वयं को छुरा मारकर स्टेज पर गिरना था। यह दृश्य बहुत नैचुरल, स्वाभाविक हुआ, चारों ओर तालियाँ बजने लगीं लेकिन उस समय के यह मशहूर कलाकार स्टेज पर से फिर उठे ही नहीं। पता लगा सचमुच ही उन्होंने आत्महत्या की थी। यह रक्त, ये सिस्कियाँ, यह तड़पना सच्चा था। वे यह सब करने के लिए अपनी पत्नी से कहकर चले थे, जिसे उनकी पत्नी ने केवल धमकी जाना।

पारसी थियेटर के युग में औरतों का मंच पर आना अच्छा नहीं माना जाता था। जो औरतें प्रतिभाशाली थीं और जो थियेटर में भर्ती होना भी चाहती थीं, परिवार के दबाव या परम्परा की बंदिशों के कारण न जा पा रही थीं। हमारे दक्षिणी एशिया की परम्परा के तहत घर या ख़ानदान की मर्यादा और सम्मान का बोझा केवल नारी ही के काँधों पर होता है। नारी ही के अमल व व्यवहार से पूर्वजों का मान नापा जाता है। नारी ही अपने परिवार की मर्यादा की उत्तरदाई बना दी गई है। इसी कारण उस समय किसी औरत में अपने बल बूते पर आगे बढ़ने का साहस न था। औरतों के लिए स्टेज पर आना एक कलंक से कम न था। बरसों से नाटक की नायकाएँ मर्द ही बनते आ रहे थे। और सब को इस बात की आदत सी पड़ गई थी। कम्पनियों को भी अपनी बदनामी का डर था। बाद में तवाइफ़ों ने हिम्मत की और वे स्टेज पर आईं। सन् 1880 ई. में पारसी थियेटर की पहली कम्पनी जिस में औरत आई, उसका नाम था विक्टोरिया थियाट्रिकल कम्पनी, जिसका मालिक, अभिनेता, और हास्य कलाकार ख़ुरशीदजी बालीवाला था, जो पहली बार औरत को अपनी कम्पनी के द्वारा मंच पर लेकर आया। नैशनल स्कूल आफ़ ड्रामा के ''रंग प्रसंग''

जहाँआरा कज्जन बाई

पारसी थियेटर नंबर में लेखक सत्यदेव त्रिपाठी के अनुसार फ़ैंटन, एक यूरोपियन लड़की, पहली महिला है जो पारसी थियेटर के मंच पर आई। आगे जाकर वे कहते हैं कि मर्यादा के वज्र किवाड़ पर दूसरी दस्तक जमीला ने दी, जब ''इन्द्र सभा''में उसने सब्ज़ परी की भूमिका निभाई।

जहाँ तवाइफ़ों की बात होती है, वहाँ कहना पड़ेगा कि उस दौर की तवाइफ़ों का धर्म कुछ भी हो, परन्तु संस्कृति मुस्लिम ही रहती थी। वैसे तो अधिकतर ये शायद मुसलिम ही होती थीं; क्योंकि इनका वास्ता बड़े-बड़े नवाबों से पड़ता था। लेकिन जो औरतें हिम्मत करके मंच पर आईं उन्होंने कला की सेवा के लिए अपनी मर्यादा और सम्मान को दाव पर लगा दिया। आज उन औरतों का कला पर बहुत बड़ा अहसान है। उनका योगदान कला के प्रति भुलाया नहीं जा सकता। और दिलचस्प बात यह भी है कि कुछ भी हुआ, परन्तु कोठे और मंच का रिश्ता पक्का हो गया। यदि कोई भी नारी मंच पर कला का प्रदर्शन करती थी, उसे तवाइफ़ ही मान लिया जाता था, चाहे वह तवाइफ़ हो या न हो। तवाइफ़ों ने जो कला की सेवा की है, उसको नज़र-अंदाज़ कैसे किया जा सकता है? गायकी की अदाइगी, कथक के भाव, चेहरे और आँखों के अभिनय, यह सब तवाइफ़ों के ही अविष्कार हैं। लोग तवाइफ़ और रंडी का अंतर न जानते हुए तवाइफ़ों का अपमान करते रहे हैं। इस कलंक के डर के कारण, न जाने कितनी कलाकार नारियाँ पर्दे में या घर की दीवारों में घुटकर रह गईं, जिनका नाम हमारे सामने कभी न आ सका।

बीसवीं शताब्दी की शुरूआत में पारसी थियेटर की सफलता देखकर और भी लेखक सामने आये जिन का इरादा पारसी थियेटर को आधुनिक बनाने का था, जैसे मिर्ज़ा हादी रुसवा, जिन्होंने ''मुरक़्क़ा-ए लैला मजनूँ'' नामक नाटक लिखा (ये वही लेखक हैं जिन्होंने उर्दू का पहला उपन्यास ''उमराओ जान अदा'' लिखा था)। तथा इम्तियाज़ अली 'ताज' ने ''अनारकली'' लिखी, जिसके प्लाट में ''इन्द्र सभा'' तथा ''नाट्यशास्त्र'' की झलक दिखती है। इसी कहानी को लेकर 'ताज' ने आधुनिक ऐतिहासिक रंग दिया है। राधेश्याम कथावाचक राम लीला लिखते-लिखते ''मशरिक़ी हूर'' पर उतर आए ओर उन्होंने उर्दू की योग्यता के वह झंडे गाढ़े कि बाक़ी उर्दू वाले हक्का-बक्का रह गए। आग़ा हश्र काश्मीरी ने शेकस्पियर के काफ़ी ड्रामे उर्दू में अनुवाद किए। उनका नाटक ''असीर-ए हिर्स'' कैसे भुलाया जा सकता है, जिसमें फ़िदा हुसैन ने अभिनय किया है, जो बड़ी मुशकिल से मुझे संगीत नाटक अकैडमी से देखने को मिला।

नाटक ''राजा हरिश्चंद्र'' पहली बार पारसी थियेटर के द्वारा खेला गया था और बार-बार खेला जाता रहा। गाँधी जी ने भी इसे पहली बार पारसी थियेटर में देखा, और बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने सीखा, अपने बलिदान से ही अपना अधिकार लिया जा सकता है, दूसरे के बलिदान से नहीं, सत्यग्रह को कौन नहीं जानता? उस समय तब तक फ़िल्म तकनीक आ चुकी थी।

सन् 1896 के आस-पास ल्यूम्येर ब्रदर्स (Lumiere Brothers), जो फ्रान्सीसी थे, विश्व टूर के द्वारा भारत आए थे। यही हैं जिन्होंने वास्तव में फ़िल्म तकनीक की नींव डाली। यह सच है परन्तु इस तकनीक में भारत के पहले फ़िल्म बनाने वालों ने अपनी ही भारतीय विषय-वस्तु को डाला, जो पारसी थियेटर से ही ली गई थी। पारसी थियेटर कहाँ से आया, जैसे मैं पहले कह चुका हूँ कि इसका उत्तर लखनऊ की ''इन्द्र सभा'' से मिलेगा और ''इन्द्र सभा'' की शृँखला जुड़ी है ''नाट्यशास्त्र'' से। जो लोग यह कहते हैं कि पारसी थियेटर ने

ड्रामा पश्चिम से सीखा, वे भूल जाते हैं पुस्तकालयों में संस्कृत नाटकों से भरी उन अल्मारियों को और भरत मुनि के नाट्यशास्त्र को जो हज़ारों साल पहले लिखा जा चुका है।

दादा फालके ने ''Life of Christ'' देखी, कला के रसिया होते उनके मन में देश प्रेम की भावना जाग उठी और उन्होंने राजा हरिश्चंद्र सन् 1913 में बना डाली, परन्तु सन् 1913 की राजा हरिश्चंद्र खो गई। तब उन्होंने वही फ़िल्म फिर सन् 1917 में बनाई जिस के चन्द सीन आज भी यू ट्यूब पर उपलब्ध हैं। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में मादन थियेटर के द्वारा पारसी थियेटर के प्रदर्शनों की फ़िल्में बनाई जा रही थीं और उन में सीन ऐडिट किए जा रहे थे। यह वही मादन कम्पनी है जिस में मुन्नीबाई ने भी नाटक किए जैसे ''सीता-बनवास'', ''गणेश जन्म'', ''कृष्ण-सुदामा'', ''पारसी बालम'', ''दिल की प्यास'', ''आँख का नशा'' आदि। ''लैलोनिहार'' में मुन्नीबाई मासूमा के चरित्र निभाने के कारण मासूमा के नाम से ही जानी जाने लगीं। ये सब मूक फ़िल्में थीं।

मूक फ़िल्मों में गाना या संगीत हो नहीं सकता था, इस लिए मंच के आगे एक बड़े गड्ढे में दर्शकों के सामने बैठ कर संगीतकार सीन देख-देख कर संगीत देते थे। ये तमाम संगीतकार पारसी थियेटरों के मंच से उतर-उतरकर मूक फ़िल्मों के गड्ढों की ओर आ रहे थे। इन मूक फ़िल्मों में धार्मिक फ़िल्में ज़्यादा पसंद की जाती थीं; क्योंकि इन फ़िल्मों में स्पैशल इफ़ैक्ट्स, कास्ट्यूम और सैट पर काफ़ी ज़ोर डाला जाता था। उस समय की मूक फ़िल्मों में ''शीराज़'', ''थ्रो आफ़ डाइस'', ''लाइट आफ़ एशिया'', ''रामायण'', ''श्री कृष्ण जन्म'', ''मरदान'', ''गंगावतरण'', ''लंका दहन'', ''मोहिनि भस्मासुर'', इत्यादि भुलाई नहीं जा सकतीं। मूक फ़िल्मों के दौर में उनके साथ-साथ पारसी थियेटर भी चल रहा था। क्योंकि मूक फ़िल्मों में न केवल संगीत की कमी थी बल्कि उर्दू की मिठास, शेर-ओ-शायरी की नौक-झौंक तथा संवादों के उतार-चढ़ाव की भी कमी थी। दूसरी बात यह कि मूक फ़िल्मों की कहानियाँ सरल ही रखी जा सकती थीं,

राधेश्याम कथावाचक

वरना उलझी हुई कहानियों में परदे पर कैप्शन लिखना बहुत कठिन था।

जैसे ही 1931 में बोलती फ़िल्म यानि टाकीज़ ''आलम आरा'' बनी, पारसी थियेटर की नीचे से ईंटें निकलनी शुरू हो गईं। लेकिन दर्शक लोग मानने को तैयार न थे कि बोलती फ़िल्मों से पारसी थियेटर की लोकप्रियता पर कुछ असर पड़ेगा। ज़ुबैदा ख़ातून और मास्टर विट्ठल की ''आलम आरा'' इतनी मशहूर हो चुकी थी कि फ़िल्म तकनीक को न पसंद करने वाले दर्शक भी आलम आरा के टिकिट की लाइन में खड़े नज़र आए। अफ़सोस कि हमारी लापरवाही ने ''आलम आरा'' को इस दुनिया से खो दिया।

''आलम आरा'' की नायका ज़ुबैदा ख़ातून की माँ बेगम फ़ातिमा पारसी थियेटर तथा बॉलीवुड फ़िल्मों की पहली महिला निर्देशक थीं और उनकी बेटी ज़ुबैदा बोलती फ़िल्मों की पहली हीरोइनें पृथ्वीराज कपूर उस समय तक पिशावर से बम्बई आ चुके थे। इन्होंने भी ''आलम आरा'' में जनरल आदिल ख़ान का रोल किया था। इसके साथ-साथ वे अपनी थियेटर कम्पनी भी चला रहे थे। अरदेशीर ईरानी इस फ़िल्म के निर्देशक थे जो पारसी थियेटर की दुनिया से फ़िल्मी दुनिया में आए। इस पर याद आया कि जितने भी लास्ट नेम (last names) ''ईरानी'' हम फ़िल्मों में सुनते आ रहे हैं, ये सब पिछले दो सौ साल के दौरान आए हुए पारसियों की संतानें हैं, जैसे अरुणा ईरानी, फ़रीदूँ ईरानी, बोमन ईरानी, डेज़ी ईरानी, हनी ईरानी (जावेद अख़तर की पत्नी, ज़ोया तथा फ़रहान अख़तर की माँ)।

सन् 1938 में प्रकाशित ''फ़िल्म व ड्रामा'' नाम की एक उर्दू पुस्तक इस बात का प्रमाण है कि शब्द ''ड्रामे'' के साथ-साथ शब्द ''फ़िल्म'' का लगाना अनिवार्य हो गया था; क्योंकि ड्रामे का गमन हो रहा था और फ़िल्म का आगमने मज़े की बात है कि इसी किताब में बताया है कि ज़ुबैदा की माँ बेगम फ़ातिमा पारसी थियेटर से ही फ़िल्मों में आईं और ज़ुबैदा की बड़ी बहिन सुल्ताना भी एक मशहूर अभिनेत्री तथा नर्तकी थीं जो थियेटर से आईं। ज़ुबैदा ने ''आलम आरा'' से पहले 36 मूक फ़िल्मों में काम किया था।

कहा जाता है कि अधिकतर कलाकार पारसी थियेटर की टूरिंग कम्पनियों के साथ लग कर बम्बई आते रहे और बाद में फ़िल्मों में काम करने लगे। बहुत से नाम हैं जो थियेटर से फ़िल्मों में आए जैसे राम प्यारी, सधोना बोस, मुमताज़ अली (हास्य कलाकार महमूद के पिता जो लखनऊ के मंच के प्रसिद्ध डान्सर तथा गायक थे), ग़ुलाम मुहम्मद, मास्टर ग़ुलाम हैदर (जो लता मंगेशकर को फ़िल्मों में लाए), शरीफ़ा बाई, जहाँ आरा कज्जन, सय्यद अहमद, याक़ूब, ज़िल्लो बाई, पेशन्स कूपर, जद्दन बाई, गौहर जान, इत्यादि। ये वे नाम हैं जो हमारे सामने अब मुश्किल से आते हैं, लेकिन कुछ नाम ऐसे हैं जो बॉलीवुड में हमारे ही सामने से गुज़रे और गुज़र रहे हैं, जिन की शृंखला किसी न किसी रूप से पारसी थियेटर से जुड़ी हुई है। वे नाम हैं: नर्गिस, सायरा बानो, नूतन, काजल, राज कपूर, करीना कपूर, निम्मी, गोविंदा, महमूद, संजय दत्त, नासिर हुसैन, सोहराब मोदी, रनबीर कपूर, इत्यादि। यह सारे मंच के कलाकार तथा उनके बच्चों के बच्चे फ़िल्मों में एक रात में नहीं आए। युग बदलने में युग लगता है पर हाँ युग कब बदल जाता है, पता नहीं लगता। ऐसा लगता है कि यह सब एक दिन में हो गया। इसमें इनका क्या दोष? कमज़ोर दीवार से सब हट कर चलते हैं।

पारसी थियेटर की कमर टूटती सी देख कर एक भगदड़ सी मच गई और पारसी थियेटर के कलाकार मजबूर होकर ख़ुशी

ख़ुशी फ़िल्मों में काम करने लगे तथा निर्माता और निर्देशक बनने लगे। तभी मेरे ज़हन में कुछ और प्रश्न उभरने शुरू हुए कि जब पारसी थियेटर पिघलकर फ़िल्मों में घुल गया, तो पारसी थियेटर के अवशेष कहाँ गए ? क्या वे अभी भी बॉलीवुड में मौजूद हैं, या नहीं? जब ध्यान से सोचा तो जब से लेकर आज तक बॉलीवुड में चारों ओर पारसी थियेटर के अवशेष ही अवशेष नज़र आते हैं जो निम्न लिखित हैं।

* एक ही कहानी को बदल बदल कर बार-बार बनाने की प्रथा पारसी थियेटर की ही देन है, और कहानियाँ भी वही जैसे लैला मजनूँ, हीर राँझा, रामायाण, अल्लादीन का चिराग़, अली बाबा, अनारकली, नल दम्यंती, राजा हरिश्चन्द्र, इत्यादि।

* हीरो-हीरोइन का टकराना और प्रेम में उलझ जाना, खलनायक का आना, हीरो-हीरोइन का बिछड़ जाना, फिर गुत्थी का सुलझ जाना, और फिर खलनायक का हार जाना, और ''दी ऐण्ड'' पर बिछड़ों का मिल जाना, यह सब कहाँ से आया? (माफ़ कीजिए, मैंने लगभग सारी बॉलीवुड की फ़िल्मों की कहानी तथा पारसी थियेटर के प्लाट बता दिए)।

* फ़िल्मों में उर्दू का रंग, और शेर-ओ-शायरी तथा नाच रंग की बहारें अब तक पारसी थियेटर के पुराने दिनों की याद दिलाती दिखती हैं। कौन भूल सकता है फ़िल्म ''फ़ना'' में आमिर ख़ान के वे शेर जिन पर हाल तालियाँ बजा उठता है?

* एक ही फ़िल्म में भजन, ग़ज़ल, क़व्वाली, भरतनाट्यम, कथक, इत्यादि क्या हमें ''इन्द्र सभा'' के रंग बिरंगे इन्द्रधनुष की याद नहीं दिलाते? फ़िल्मों में अब भी यही गंगा जमनी संस्कृति का प्रदर्शन हो रहा है जो कभी पारसी थियेटर में हुआ करता था।

* पारसी थियेटर की तरह, बॉलीवुड की फ़िल्में भी लगभग 99 प्रतिशत संगीतात्मक होती हैं।

* ''इन्द्र सभा'' से चलें और ''अनारकली'' से ''मुग़ल-ए-आज़म'' की ओर होते हुए, ''देवदास'' की कहानी को छूते हुए, यदि ''बौबी'' पर रुक जाएँ और शाह रुख़ ख़ान की ''देवदास'' को देखें, सभी एक ही प्लाट नज़र आते हैं। बाप और बेटे का एक प्रेमिका को लेकर संवाद और

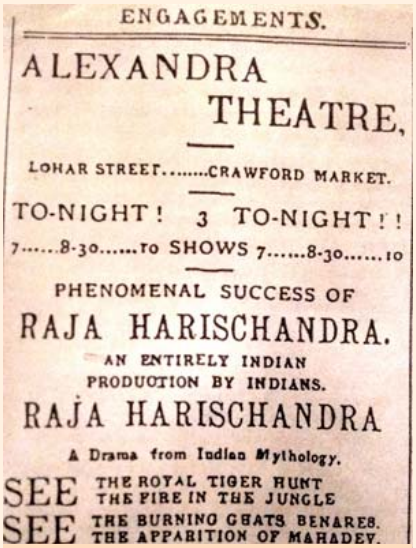
ENGAGEMENTS.

ALEXANDRA THEATRE,

LOHAR STREET.....CRAWFORD MARKET.

TO-NIGHT! 3 TO-NIGHT!!

7.....8-30.....TO SHOWS 7.....8-30.....10

PHENOMENAL SUCCESS OF

RAJA HARISCHANDRA.

AN ENTIRELY INDIAN PRODUCTION BY INDIANS.

RAJA HARISCHANDRA

A Drama from Indian Mythology.

SEE THE ROYAL TIGER HUNT THE FIRE IN THE JUNGLE

SEE THE BURNING GHATS BENARES. THE APPARITION OF MAHADEV.

राजा हरिश्चंदर का पोस्टर

तकरार, क्योंकि वह निचले स्तर से आ रही है।

* पारसी थियेटर की तरह बॉलीवुड में भी पहले अभिनेता, अभिनेत्रियाँ गायक भी होते थे जैसे के. ऐल. सहगल, अशोक कुमार, स्वर्णलता, सुरैया, श्याम कुमार, देविका रानी (जो यूसुफ़ ख़ान को दिलीप कुमार के नाम से फ़िल्मों में लाईं), सुरेन्द्र इत्यादि। (किशोर कुमार, सुलक्षणा पंडित और सलमा आग़ा तो कल की बात है।) क्या आप को मालूम है कि शुरू की बोलती फ़िल्मों में गाने के अभिनय के साथ गाने भी उसी समय फ़िल्मिंग होती थी, अर्थात् संगीतकार कैमरे के पीछे या किसी पेड़ के पीछे तबला हार्मोनियम इत्यादि लेकर बैठता था और कभी-कभी कैमरे के साथ उसको चलना भी पड़ता था?

* श्याम और दिलीप कुमार का उर्दू अंदाज़ अमिताभ बच्चन की ज़ुबान पर नज़र आया और वहाँ से फिसलता हुआ शाह रुख़ ख़ान तक ''कल हो न हो'' में पहुँचा। दिलीप कुमार और पृथ्वीराज कपूर ने कहाँ से लिया यह अंदाज़? उसका उत्तर अब आपको मालूम है।

* संक्षिप्त में यह और कहा जा सकता है कि यूट्यूब पर तीस और चालीस के दशक की ब्लैक ऐण्ड व्हाइट फ़िल्मों में पारसी थियेटर के छुपे हुए सारे रंग आसानी से देखे जा सकते हैं।

''धूम'', ''राज़ी'', ''हिन्दोस्तान के ठग'', ''ज़ीरो'', और ''मंटो'' जैसी फ़िल्में बनाकर, अब बॉलीवुड कहाँ जा रहा है? कौन जानता है? फ़िल्में कौन सा रूप धारण करेंगी, क्या पता? पुनर्जन्म में किसको क्या रूप मिले, कौन जाने? मैं तो कहूँगा कि पारसी थियेटर का अवतार ही तो है यह ''बॉलीवुड''।

परन्तु इधर थियेटर का रंग भी बदल चुका है आज। प्रयत्न जारी है पर वातावरण अब वह कहाँ? आज से पंद्रह साल पहले मैं दिल्ली में शन्नो खुराना तथा शीला भाटिया से मिला, जिन्होंने पारसी थियेटर की कटी हुई डोर कसके थामी हुई थी। परन्तु डोर ही कटी हुई थी तो कितनी दूर जाती पतंग? उन्होंने अपने इण्टरव्यू में मुझे बताया कि ''हम अपने बच्चों को अपने थियेटरों में दर्शक के रूप में नहीं ला पा रहे हैं। इतना धैर्य कहाँ आज की पीढ़ी में कि वे संवाद की ओर ध्यान दें जबकि फ़िल्मों में पल-पल में सीन बदलते हैं।'' शीला भाटिया ने कहा, ''मेरे घर के और मेरे थियेटर के रास्ते में कई फ़िल्म थियेटर आ जाते हैं और यह पीढ़ी हमारी उँगली छोड़ जाती है।''

मैं चुपचाप उनको सुनता रहा और सोचता रहा, मैं तो फ़िल्मों के दौर में भी भाई के साथ नौटंकी की आवाज़ से खिंचता चला जाता था और उधर किवाड़ों की दरार से पचास साल की औरत के गजरे भरे हाथों के इशारों से फिसलते हुए शब्दों में खो जाता था, सायरा बानो और रेखा उसके सामने फीकी पड़ जाती थीं।

पारसी थियेटर गए, मूक फ़िल्में गईं, ''आलम आरा'' गई, ब्लैक ऐण्ड व्हाइट फ़िल्में गईं, यूट्यूब मुँह खोले आ रहा है। अब किसकी बारी है? कौन जाने, कल हो न हो? पारसी थियेटर का ''दी ऐण्ड'' हो गया मगर पंडित राधेश्याम कथावाचक के गंगा-जमनी शेर रोशनारा की आवाज़ में ''मशरिक़ी हूर'' के पन्नों में आज भी गूँज रहे हैं:

फ़िदा है जिस पे दिल, क़ुर्बान उसपे मेरी हस्ती है
मिले जिससे मुहब्बत, जान देकर भी वो सस्ती है
ब्रह्मन बुत को पूजे, शेख़ काबे को करे सजदा
मैं उसकी हूँ पुजारन, जिसकी सूरत दिल में बस्ती है

***

ग़ज़लें

गौतम राजऋषि की ग़ज़लें

संपर्क : पूरब बाजार सहरसा बिहार
पिन 852201
मोबाइल : 9759479500
ईमेल : gautam_rajrishi@yahoo.co.in

चलो, ज़िद है तुम्हारी फिर, तो लो मेरा पता लिक्खो
गली दीवाने की औ' नाम..वो..हाँ! सरफिरा लिक्खो

उदासी के ही क़िस्सों को रक़म करने से क्या हासिल
अब आँखों बाज़ भी आओ न सब दिल का कहा लिक्खो

मैं आऊँगा! बदन पर आँधियाँ ओढ़े भी आऊँगा!
सुनो मंज़िल मेरी तुम तो हवा पर रास्ता लिक्खो

मुहब्बत बोर करती है, तो आओ गेम इक खेलें
इधर मैं अक्स लिखता हूँ, उधर तुम आईना लिक्खो

दहकता है, सुलगता है, ये सूरज रोज़ जलता है
अबे ओ आस्माँ! इसको कभी तो चाँद सा लिक्खो

ये मोबाइल के संदेशों से मेरा जी नहीं भरता
मेरी जानाँ! कभी एक-आध ख़त ख़ुशबू भरा लिक्खो

वही चलना हवाओं का, वही बुझना चराग़ों का
बराये मेहबानी, शायरो! कुछ तो नया लिक्खो

***

रात फिसली ज़रा जो छप्पर से
चाँद उतरा तड़प के अम्बर से

दिन बिछड़ने का ज्यों क़रीब आया
चीख़ उठने लगी कलेंडर से

शाम फिर रह गई अधूरी सी
फ़ोन फिर आ गया था दफ़्तर से

चंद तारें गिरे थे फूलों पर
इक लपट उठ रही है पत्थर से

रतजगों के सितम से उकता कर
सिलवटें लड़ पड़ी हैं बिस्तर से

जिस्म ने रूह छोड़ दी है वहीं
कल निकलते हुए तेरे घर से

चल सिखायें सबक उदासी को
हम हँसें खुल के....और ये तरसे

***

ज़ियादा, तो कभी कम-कम हुआ हूँ
हमेशा ख़ुद से ही बरहम हुआ हूँ

तेरे गालों की सुर्खी से खिला जो
वही, हाँ मैं वही मौसम हुआ हूँ

ख़ुशी की बेलिबासी इस क़दर थी
कि उकता कर लिबासे-ग़म हुआ हूँ

कुरेदा टीस ने ज़ख़्मों को इतना
सरापा ख़ुद ही अब मरहम हुआ हूँ

हवा फ़ुरकत की ऐसी चल रही है
उदासी का बड़ा परचम हुआ हूँ

सुलगती धूप ले कर हुस्न आया
संभाले इश्क़ मैं शबनम हुआ हूँ

नहीं, घर तो नहीं छोड़ा है मैंने
कहो तुम ही कि क्यों 'गौतम' हुआ हूँ

***

इसका...उसका, तुमने लिक्खा है जाने किस-किस का नाम
कभी कहीं इक बार लिखो तो साथ में अपने मेरा नाम

कौन थे दानिश जो कहते थे...क्या रक्खा है नामों में
हमसे पूछो...एक नाम पर भूल गये हम सबका नाम

उजली-उजली किरणें निकलीं काली-काली स्याही से
कॉपी के सादे पन्ने पर जब-जब लिक्खा तेरा नाम

इक बार पुकारो तो जैसे बन जाए कोलाज कोई
चाँद, समन्दर, बारिश, ख़ुश्बू, नग्मा, क़िस्सा, दरिया नाम

इतरा कर उसने पूछा जब. 'नाम तो अपना बतलाओ'
दिल धड़का था, ज़ुबाँ सिली थी और था हक्का-बक्का नाम

एक नाम के हर्फ़ों का है जादू-टोना ऐसा कुछ
भूले से भी याद न आए दिल को कोई दूजा नाम

नाम-पहेली उसकी तो फिर खुलते-खुलते खुलती है
नाम मुहब्बत, नाम इबादत, नाम क़यामत...कैसा नाम

***

दिन कुछ सिहरा-सिहरा रहता...रात सुलगती रहती है
चाँद से लड़के की बाँहों में धूप सी लड़की रहती है

ख़्वाब टपकता रहता है यूँ आँख के रेशे-रेशे से
नींद बिचारी करवट-करवट भीगी-भीगी रहती है

कोई तो ख़ुशबू सी उठने लगती है शायद मुझसे
तुझको जब भी सोचूँ....मुझ पर तितली बैठी रहती है

कितना अर्सा बीत गया है तुमको गले लगाये... उफ़
तुमको भी क्या, सच-सच कहना, एक तड़प सी रहती है...?

मोबाइल के संदेशों से बात नहीं बनती जानाँ
ख़त लिक्खो या आ जाओ ख़ुद...धड़कन कहती रहती है

अच्छा है...हाँ, सच में कितना तो अच्छा है सब कुछ ही
दिल के अंदर लेकिन जाने कैसी उदासी रहती है

लफ़्ज़-लफ़्ज़ हैं कितने क़िस्से...कितने ही अफ़साने हैं
हर मिसरे में ग़ौर से देखो...कोई कहानी रहती है

***

कविताएँ

प्रियंका भारद्वाज की कविताएँ

भट्टे पर बच्चा

मैंने गौर से देखा
उस तपती लू में
बैठे उस बच्चे की
आँखों में!
दिखाई दी मुझे गुथती मिट्टी
भट्टे की जलती
चिमनी
और
जेठ की तपती दोपहर में उठता धुआँ
मैं करती रही कोशिशें खोजने की,
और गहरे /और गहरे
पर पानी कहाँ था?
उसकी आँखों में जो मैं डूब जाती
या खोज लाती कुछ
जीवंत सपने !
मैं लौट रही हूँ अपने तपते
पैरों पर पानी डालती
एक तपता गोला
सूरज सा मेरी
आँखों में जल
गया मैं चाह कर भी नहीं,
खोज पाई एक
सपना!
झिलमिलाता उसकी आँखों में!!
***

एक पीपल

एक पीपल जिसे मैं सालों से
देखती रही अकेला !
चुप, शांत और दु:ख से तड़फते हुए
कंपकपातें होंठ
बोलना चाहते हो
अपनी हज़ारों ख्वाहिशें
कभी- कभी वो विद्रोह पर उतरता है
और हिला देता है अपनी शाख -शाख,
पत्ते मचल उठते हैं, मचा देते हैं शोर
डालियों से दूर होते हुए!
पेड़ शांत हो जाता है,
करने लगता पछतावा
अपने उतेजित होने पर
बहुत देर तक!
चुप खड़ा काटता रहता है
अपने ही होंठ!
एक दिन अपनी उदासियों को ओढ़े
मैं बैठी थी उसके पास जाकर!
पर देखा मैंने उस दिन
पेड़ बतिया रहा था
किसी से!
कभी धीरे तो कभी तेज़ बातों का दौर
ना खत्म होने तक!
पिछली शाम कोई रख गया था
कुछ तस्वीरें
जिन पर कोरे गए थे देवता
पर तड़क चुके थे काँच उनके
एक आधी टूटी मूर्ति थी!
जो कल तक भोग लगाती थी
सबसे पहले
किसी के घर
आज औंधी पड़ी
बतिया रही थी पीपल से
अपने अच्छे दिनों की बातें
कोई बाँध गया था
कुछ धागे मौली के
पेड़ झूम रहा था
हिलोरे खाते हुए!
जैसे बाँध दिए हो मंखी
बच्चे के गले में
और बच्चा खेलता रहता है
दिन भर उनसे!
अकेले और उदास पीपल की दुआएँ
सुन ली थी देवता ने!
अब हर रोज़ मूर्ति के देवता
पीपल से बतलाते हैं
इंसानों की बातें!
***

संपर्क:वीपीओ मुंडा, हनुमानगढ़, राजस्थान 335526
ईमेल: bpriyanka.munda95@gmail.com
मोबाइल:7357474289

मुकेश पोपली की लम्बी कविता

अचानक

अचानक कम होने लगी है
संख्या आदमियों की
औरतों की
बच्चों की
शहर की सड़कों पर

देखो
कुछ देर पहले
घूम रहे थे
इस जगह पर
बहुत से लोग
हँसते-मुस्कराते
बातें भी कर रहे थे
आजकल के हालात की
शिक्षा आर्थिक समाज
राजनीति की
अचानक
उन्होंने उठा लिए
अपने यातायात के साधन
और कूच कर गए
अपने-अपने
घर की ओर

और वो देखो
नौजवानों की टोली
मौज मस्ती करने
इधर ही तो आ रही थी
कुछ खाने-पीने
कुछ बेल्ट, चश्मा और
नए डिज़ाइन की जींस लेने
अचानक
किसी एक के मोबाइल पर
आया संदेश
उन्हें विचलित कर गया है

जा रहे हैं
ऑटो से वापस
अपने-अपने
कमरे की ओर
हॉस्टल का दरवाज़ा
बंद हो जाने के
भय से

कुछ नवयौवनाएँ
आज छुट्टी मनाने निकली थी
बहुत दिनों से लगातार
पढ़ाई में डूबी थी
गोल गप्पे खाने,
कानों के बूँदे चाहिए थे
किसी को चप्पल
तो किसी को चाहत थी
'ब्यूटी टिप्स' किताब की
उनमें से एक को चाहिए था
कुर्ता खादी का
क्योंकि गर्मी बहुत तेज़ है
आजकल शहर में
बेहाल हैं
उमस और पसीने से सब
हैरान हो कर जा रही हैं
वापस घरों में

शहर का वातावरण
सर्द हो चला है
अचानक
बिना बर्फ के जैसे
ठंडा हो जाता है शरीर
साँस थम जाने पर

बाज़ार बंद होता देख
अपने ठेले-रिक्शे
सँभालने लग गए हैं
खाने-पीने का सामान
बेचने वालों ने
इख्तियार कर लिया है
अपने-अपने
घर का रास्ता
बेपरवाह हो रहे हैं
गिरते हुए सामान
की ओर से
पहुँचना चाहते हैं
जल्दी और जल्दी
अपनों के बीच

जानते हैं
फस जाने पर भीड़ में
नहीं मिलेगा रास्ता
और अचानक डंडे की मार
भी सहनी पड़ सकती है
उनको और
सिर्फ उनको
धारा 144 लगा दी गई है
यहाँ पर

बच्चे जो अभी तक
खेल रहे थे फुटबाल
क्रोएशिया और फ्रांस की
टीमों में बंटकर
कुछ क्रिकेट वर्ल्ड कप की
बात कर रहे थे
अचानक
सवार हो गए अपनी-अपनी
साइकिल पर और बन गया
गिरीराज रंगा तो कोई
शंकर जैसे अंतरराष्ट्रीय साइकिल-धावक

बहुत से बच्चे
निकलना चाहते हैं
घर के बाहर
लुका-छिपी का खेल खेलने
अचानक
छुपा लिया गया है
उन्हें ममता के आँचल में
टाफी और आइसक्रीम का
लालच देकर
दो मिनट में मैगी
हो जाएगी तैयार
तब तक ड्यू सिप करो
कुछ डूब गए हैं
कम्प्यूटर पर चल रहे
समुद्रीय तूफान के
खेल में

अचानक
बड़े घूम चक्कर की एक दिशा में
टी.वी. पर छिड़ गई है बहस
कौन सा चैनल अच्छा है
कौन न्यूज़ सही दिखाता है
किस के संवाददाता देते हैं
पूरी जानकारी
कौन सा रीडर पढ़ता है

एक ही लाईन को
पचास-पचास बार
और कौन दिखाता है
घटनाक्रम की ताज़ा तस्वीरें
क्या रखा है इन समाचारों में
देखो यह डांसिंग बच्चे का नृत्य
और इस चैनल पर देखो
आ रही है बहस नेताओं की
बिग बी अभी भी विज्ञापन कर रहे हैं
चलो देखो इस चैनल पर
आ रहा है
'संजू' फ़िल्म.....का मेकओवर
मगर यह हिंदी फ़िल्म बनाने वाले
और इसमें काम करने वाले
परदे पर अनपढ़ गंवार का
अभिनय करने वाले
अचानक छोटे परदे पर
अंग्रेज़ी में
बोलने लग जाते हैं

अचानक
एक चैनल पर
दिखने लगी है
ब्रेकिंग न्यूज
'शहर में एक और गैंगरेप'
कुछ काल्पनिक तस्वीर भी
दिखा रहा है यह चैनल
'हमारे संवाददाता के अनुसार
अब से ठीक बीस मिनट पहले
शहर में एक के बाद एक
दो लड़कियों से गैंगरेप का समाचार मिला है
चारों तरफ अफरा-तफरी का
माहौल पैदा हो गया है
लोग बदहवास से इधर-उधर
भाग रहे हैं
दुकानों के शटर गिरा दिए गए हैं
पुलिस की गाड़ियाँ
शहर में भागती हुई
दिखाई देने लगी हैं
आप कहीं जाइएगा नहीं
अभी विस्तृत समाचारों और
ताज़ा तस्वीरों के साथ
हम हाज़िर होते हैं
एक छोटे से ब्रेक के बाद

'बड़ा बबली चैनल है'
'ये अंदर की बात है'

'केविटी के लिए कॉलगेट'
'जब देसी है तो विदेशी क्यों लेना'
आज़ादी के इतने बरसों बाद
लगने लगा है
अचानक
हम अभी भी
स्वतंत्र नहीं है
शरीर से दिल से दिमाग से
दरअसल
हमने
बन्द कर दिया है
सोचना और समझना
वैसे भी समझाने का
अध्याय रट रखा है
बारहखड़ी की तरह
उन लोगों ने
जिनके मुरीदों की संख्या
बढ़ती ही जा रही है
आश्रम में जाने के लिए
प्रतीक्षा सूची लंबी है
जिसका जितना चढ़ावा
उतनी ही जल्दी
मिल सकता है
अपने भगवान् से
और पा सकता है
मन की शांति

अचानक
हैरान हो जाता हूँ मैं
अपने मोबाइल पर एक
अलर्ट देखकर
गैंगरेप की शिकार
दो लड़कियों के शव
एक बाबा के आश्रम से
दो किलोमीटर की दूरी पर
बरामद हुए हैं
शवों को कुत्तों के
कब्ज़े से छुड़ा लिया गया है
अपराधियों की खोज
जारी है।

अचानक
मुड़ जाते हैं मेरे कदम
अपने घर की ओर
अपनी बिटिया की सुरक्षा
के बारे में चिंतित होता हुआ
सोचता-सोचता
धीरे-धीरे चलता जा रहा हूँ
मिलाने लगता हूँ
घर पर पत्नी को फ़ोन
एक अंजाने भय में डूबते हुए।
***

संपर्क: सी-41, दूसरा तल, विकासपुरी, नई दिल्ली-110018
ईमेल: mukesh11popli@gmail.com
मोबाइल: 7073888126

डॉ. शुभदर्शन की कविताएँ

मरी मछलियाँ

छटपटा रही हैं चिड़ियाँ
कट रहे हैं वृक्ष
राजा का आदेश है
चिडियों का कत्ल कर दो

धड़ाधड़ गिर रहे हैं
छोटे-छोटे चिथड़े
और
दबाए जा रहे हैं
-रेत में

भूतिया माहौल है
एक दूसरे को
शक की नज़र से देखते हुए
कहीं कट न जाए जुबाँ
या
बंद कर दिया जाए
झूठे केसों में
राजा के खलाफ
बोलने की सज़ा बन

इशारों में ही
कुछ करने को
बेताब हैं लोग

निर्विघ्न जारी हैं
राजा की यात्राएँ
खरीद कर लोकतंत्र का
चौथा स्तम्भ
कर दी है
कलम की नसबंदी
खुले नाड़े हाथ में लिए
घूम रहे हैं
बेसिर पहरेदार
सत्ता के गलियारे में
और
बगुले सूखे पोखर की गार पर
खा रहे हैं
मरी मछलियाँ
***

तिलिस्म का जंगल

बहुत भयानक सपना है
डर से खुली आँख में
दिखता है-एक विशाल रेगिस्तान

तिलिस्म का जंगल है
जिसमें दबा है
-लोकतंत्र
नारों, प्रति नारों, वाद प्रतिवादों में
उलझी है जनता
और
संसदीय मज़ार के चारों ओर
हंसुए, तलवारें, नेज़े लिए
खड़े हैं बलमबाज़

नहीं, ये सब अय्यार हैं
अपने काम में दक्ष
कोई भी साँस लेते
ग्रुप, जाति, पार्टी को
अपनी कला से
कर सकते हैं नेस्तनाबूद

सपने में ही
घुट रही है साँस
सूख रहे हैं गले
पास ही रेत का चश्मा है
आश्वासनों की पाइप है

प्यास कैसे बुझेगी

सूखी योजनाओं के
ठूँठ खड़े हैं
पंछी बिलबिला रहे हैं
बढ़ रहे विवशताओं के
साए की जद में
टपक रहा है मवाद
किसी अय्यार के इंतज़ार में

दब जाएँगे यहीं-कहीं
तूफानी हवाओं में
मिट चुके हैं
सस्सी के पाँवों के निशान
पर बाहर निकलने का
कोई रास्ता तो ढूँढ़ना होगा
तोडक़र राजा का तिलिस्म।
***

घायल आत्मा की काया

अपनी हरकत, अपने वादे भूल
मासूम संस्कारों को मसलते हुए
बेखौफ हवाओं पर मढ़ने लगे
बेगैरत धूप का दोष
यह जानकर भी अनजान बने
कि हवाओं में नहीं
दिमागों में घुस आई है
कड़वाहट

संपर्क भी
एक दस्तावेज़ हो गया है
जिसके पन्ने खोलते ही
ढलान से उतरते हुए आदमी की
छटपटाती हुई आकृति है
तिलिस्म की वादी है
और
हर दरवाज़े पर
निरंकुश स्वार्थ के पहरेदार
शब्दों के तीखे
नेज़ानुमा हथियारों से
लगातार कर रहे हैं प्रहार

फंस गई है घायल आत्मा की काया
निरंतर बच निकलने में प्रयासरत
उधर मुक्ति के द्वार पर
खड़े हैं मुँह बाँधे
संगीनें लिए वे दोस्त
जिन्होंने त्राहि-माम त्राहि-माम
की दुहाई देकर बुलाया था
हसरत भरी निगाहों से देखते हुए
***

संपर्क : 7-फ्रेंडस कॉलोनी, पीछे सेक्रेड हार्ट स्कूल, मजीठा रोड, अमृतसर 143001 मोबाइल:183-2421544, 94172-90544

अर्चना गौतम मीरा की कविताएँ

हर बार...

हर बार सिफ़र से,
शुरू किया
सफ़र उसने।
सनी - गुन्धी मिट्टी सा
तन - मन से...
पाथी ईंटें ख़ुद की,
ख़ुद ही
जलाया आवाँ
तपी... सुलगी... दहकी
तन से मन तक
चुन ली दीवारें
तन पे, मन पे
जोड़ा घर...
टाँगे सपनों के
कैलेंडर
तन... और मन से
हर बार...
उसने बरता उसे
बरतनों सा
तन भर ; मन भर...
माँजती रही वह
अपना तन - मन
उसके लिए
हर बार ; बार - बार
खींचकर रेखा
स्वामित्व की,
उसके
तन - मन पर...
वह बस फाड़ता रहा कैलेंडरों से पन्ने ...
तोड़ता -चटकाता रहा उसका
तन भी, मन भी...
जब तक न ढ़ह गई
उसके घर की दीवारें ...
***

इच्छा की डिबिया

इच्छा की डिबिया से
निकली डोर
बंधी कन्नी
उड़ा एक ख़्वाब फिर
गिर पड़ा था
अभी...
ज़रा देर पहले -
बर्फ़ के गोले संग
लथ - पथ हुआ पड़ा है
मिट्टी में उधर...
कभी ताज्जुब की
कॉमिक्स में खुले मुँह
कभी जीतने की ज़िद
किसी गेम को
और
हारकर बदलना पैंतरा
तमतमाकर दौड़ पड़ना
कि याद आ गए हों
बिल्ली के नन्हे बच्चे
सोचना ख़ुद ही ख़ुद में
सारा जहाँ है मुझसे
मान लेना कि
मेरी ही चलती है
हुकूमत
कितना कुछ
भरा - धरा
नहीं हुआ खाली...
कितना कुछ अभी
बचा है डिबिया में
वो रूठता है
आप मान जाता है
रोते हुए हँस पड़ता है
और
हँसते - हँसते रो पड़ता है

अभी तो जलाने हैं
कितने ही जुगनू
उड़ानी हैं
कितनी ही पतंगें
काटने हैं
कितने ही बादल
उगाना है सूरज
रोज़ - रोज़
दिल मे डिबिया है
एक घर है उसका
जहाँ रहता है
बचपन
टेढ़ी - मेढ़ी सी लगी है
नेमप्लेट
लिखा है नाम जिसपर
'ज़िन्दगी'।
***

औरत का बाग फुलवार

बीज अंकुरते...
भूल जाती ख़ुद को
समा जाती बूटे-बूटे में
पराई ख़ुद से हो जाती
पत्तियों की हरियाली में
डाल - डाल जीवंत होकर
लगा लेती बाड़
अपने इर्द - गिर्द
एकटक
श्वास - श्वास ताकती
ढोर - डंगर हाँकती
दिवस, मास और ऋतुएँ
अनगिन बदलती रहती
करती रखवाली
दिन गुज़रते
फल आते ही
आता स्वामी
फल ले जाता
उत्कृष्टता पर पाता ईनाम
वह नहीं हारती
फिर थामती
हिम्मत की श्वास
सींचती...
गोड़ती...
सोहती...
निरोहती...
खरपतवार
छाँव में
सुस्ताती...
एकटक मुग्ध भाव से
देखती...
खुद ही अपनी नज़र को
थुकथुकाती...
मिट्टी-धूल
लाल-मिरचाई
उच्छारती - पच्छारती
नज़रे गुज़र, बद नज़र
लेती बलइयाँ...
ऐसे ही पार कर लेती
कितनी ही ऋतुओं को
दूर जाते देखती
और सो रहती किसी दिवस
थक - हार
सुग्गे चिड़ियों के
टपकाए फलों से घिरी
भरा होता उसका आँचल।
***

संपर्क: 102, सोमेश्वर ब्लॉक - ए, लेन नं. - 3, आरपीएस मोड़, दानापुर, पटना - 801503
ईमेल: archana.gautam64@gmail.com
मोबाइल: 8051348669

प्रणव प्रियदर्शी की कविताएँ

जीवन और युद्ध

जब कहीं गिरती थी
ओस की कोई बूँद
वह नदी की तरह दौड़ पड़ता था
उसे अपने में समेटने के लिए
दुनिया की नज़र में वह बूँद
केवल पानी का निर्थक अंश थी
लेकिन उसके लिए
वह उसकी आत्मा की पुकार थी।
जब कोई छाया
कहीं टिक जाती थी
वह उसे पकड़ने के लिए
सूरज की किरण की तरह भागता था
दुनिया की नज़र में
छायाएँ सिर्फ धोखा भर थीं
लेकिन उसके लिए
वे प्रेम से भी ज़्यादा कीमती थीं।

जब कोई जानी-पहचानी गंध
वह कहीं महसूस करता
खुद को भूल कर
घंटों वहीं टिका रह जाता
ऐसी चीज़ों को खोजने
और उसमें विसर्जित हो जाने में
उसे क्या सुख मिलता था
वह बताने में असमर्थ था।

इधर पूरी दुनिया
उपयोगिता के छेद से
हर चीज़ को देख कर
परिभाषित करती रही
और सुख की तलाश करते-करते
युद्ध तक पहुँच गई
और इस दौरान
जब छूट रही थी एक-एक कर
सूरमाओं की साँसें
बाँसूरी के छेदों में टूटने लगे थे शब्द

निर्जन में बैठा वह
स्वर की तरह
भाषा की दीवार लाँघना चाहता था
लेकिन ऐसा हो न सका
और एक यद्ध के भीतर
दूसरे युद्ध का बीज छिपा रह गया।
***

युद्ध और आदमी

अपने भीतर किससे लड़ूँ
और क्यों लड़ूँ
अपने-आप से अगर लड़ूँ भी
तो कहाँ पहुँच जाऊँगा
लेकिन युद्ध जारी है

हमें बचपन से ही
समझा दिया जाता है

कि तुम जो हो
वैसा तुम्हें नहीं होना चाहिए
इसलिए कुछ और होने की कोशिश में
तब से ही खुद से युद्ध शुरू हो जाता है

संपूर्ण ब्रह्मांड में
सिर्फ आदमी को छोड़ कर
प्रकृति के किसी भी अवयव
या जीव को खुद से लड़ते
आजतक किसी ने नहीं देखा है

हर कोई अस्तित्व के प्रेम में है
लेकिन हम सिर्फ प्रेम की बातें करते हैं
जहाँ लड़ाई हो वहाँ प्रेम हो भी कैसे सकता है
बावजूद इसके हमें
खुद से प्रेम करने का संदेश दिया जाता है
इसके बाद फिर
शुरू हो जाता है
खुद से एक नया युद्ध

यह युद्ध ही शायद
हमें देता है
स्वयं के होने की प्रतीती
फिर युद्ध, युद्ध जैसा लगता भी नहीं

नदी युद्ध नहीं करती
इसलिए किनारे
बन जाते हैं सहारे
हम जिससे युद्ध करते हैं
अंततः उसी से बंध जाते हैं
और वहीं अटक जाते हैं

सारे युद्ध हमारे भीतर हैं
जब आदमी यहाँ हार जाता है
तब बाहर युद्ध जीतने का प्रयास करता है

हालाँकि अपने भीतर
हारना भी एक झूठ है
और जीतना भी एक झूठ
हम अपने हाथ-पैर
आँख-नाक से कभी
लड़ने के लिए सोच नहीं सकते
लेकिन खुद से युद्ध करते हैं

मुझे आजतक
ऐसा कोई आदमी नहीं मिला
जो सहजता से कह सके-
''मेरे भीतर हज़ारों पाप हैं
लेकिन वे मेरे हैं
मेरे भीतर हज़ारों पुण्य हैं
वे भी मेरे हैं
मुझे किसी से बैर नहीं है
मैं किसी युद्ध का पक्षपाती नहीं हूँ''

इधर मेरे भीतर
बहुत दिनों तक
यह सोच पलती रही
कि युद्ध आदमी को मिटाता है
अगर यह सच होता
तो एक युद्ध के भीतर
दूसरे युद्ध का बीज
छिपा नहीं रह जाता
सच यह है कि
अगर भीतर और बाहर युद्ध नहीं हो
तो आदमी स्वयं मिटने लगता है

आदमी मिटने से डरता है
इसलिए युद्ध खोजता है
मैं एक ऐसे आदमी
और दुनिया की तलाश में हूँ
जो युद्ध की तलाश में न हो।
***

संपर्क: 51, न्यू एजी को-ऑपरेटिव कॉलोनी, कडरू, राँची- 834002 (झारखण्ड) ईमेल : pranav.priyadarshi.pp@gmail.com
मोबाइल : 9905576828, 7903009545

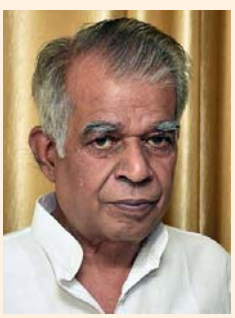

प्रभात सरसिज की कविताएँ

नगर में औरतें

नगर में एक अवसर पर औरतें जमा हैं
उनमें कुछ लड़कियाँ भी हैं
उनके मधुर बोल थम नहीं रहे हैं
जैसे अल्लसुबह चिड़िया-चुनमुन
अनवरत चहचहाते हैं

नहीं बता सकता कि वे
एक पहर भी साथ रहेंगी या नहीं
अपने-अपने ठिकाने पर सभी को लौटना है
कुछ के ठिकाने सुनिश्चित होंगे
कुछ के अनिश्चित भी हो सकते हैं
हिदायतों के हिसाब से उन्हें लौट जाना है

बताना मुश्किल है कि जहाँ भी जाएँगी वे
वहाँ उनकी चाहत भरी शेष हँसी
खनखनाएगी या नहीं

जो भी हो
नगर में एक अवसर पर
औरतों और लड़कियों के समवेत मधुर बोल
मुक्त होकर अभी हवा में मिश्री घोल रहे हैं
पृथ्वी का यह टुकड़ा
उनकी हँसी से निहाल हो रहा है।
***

प्रतिकार

दुष्टों के महान् उदय का
अर्थ है कि हमारी शक्ति का
अकल्पनीय क्षय हो रहा है

दुष्टों की प्रभुता के समक्ष
अनुत्साहित होना
अपने प्रतिकार की ताकत को
निष्प्रभावी बनाना है

शत्रुशक्ति जब राज्यशक्ति पर
काबिज़ होती है तो
उसके इर्द-गिर्द निन्दित - जनों का
जमावड़ा लग जाता है
ऐसे ही बुरे समय की
वर्षा हो रही है इन दिनों

हमारा धीरोदात्त होना ही इस समय
लोक-अनुराग को दीप्त करेगा
यही अनुराग हमारी ऊर्जा का स्रोत है
यह गाँठ बाँध लीजिए कि
उसकी प्रभुता नाशवान है
इसी प्रभुता के इरादों के अवधि-विस्तार को
तेज़ी से रोकना ही हमारा युगधर्म है

अस्थिर है उसका यश
लक्ष्मी की चमक से वे
रतौंधिया से पीड़ित हो रहे हैं

हमारे शब्द-समूह
व्यंजना से समृद्ध होते हुए भी
सीधा अर्थ छोड़ें
हमारे वाक्यों में लोक-आकांक्षा की
तीव्रता हो
हमारी वाग्मिता हताश जनों में
परिवर्तन की प्यास जगाए

शब्द की शक्तियाँ ही हमारे
पराक्रम की स्रोतस्विनी बनें
कोटिजनों के हृदय को
प्रतिकार के लिए तैय्यार करेंगी
यही शक्तियाँ
इसी के विक्षेप से शत्रुदल घुटने टेक देगा।
***

संपर्क: सत्य गंगा अपार्टमेंट, शिवपुरी,
पटना - 800023
ईमेल: prabhatsarsij@gmail.com
मोबाइल:8709296755

आरती तिवारी की कविताएँ

खेड़ों में बसी औरतें

एक मकान की नींव की तरह होती है
इनकी बसाहट बड़ी सघन
पुख़्ता और लाजवाब होती है
बचपन से गुइँयों के बीच
खेलती हैं संझा और भुजरिया के खेल
सीख लेती हैं हुनर सासरे पीहर में
निभने निभाने का
तीज त्यौहारों में सँजोए रहती हैं
अखण्ड भारत की झाँकी
इनकी हर अदा है बाँकी

ननद बन जताती हैं हक़ अपना
तो भावज बन भर देती हैं झोलियाँ

हमारे आपके स्त्री विमर्श
इनके जीवन में नहीं रखते कोई दख़ल
इनकी बॉन्डिंग बड़ी स्ट्राँग होती है
कर आती हैं मेले-ठेले टोलियों में
मज़ाल है जो हड़काए धमकाए
कोई मनचला
ऐसी-ऐसी गालियों से नवाज़ती हैं
हो जाता है रफूचक्कर।
अखिल ब्रह्माण्ड का भरोसा
काजल-सा आँज आँखों में
जिन्नगी भर की पूँजी
किए रहती हैं एक-दूसरे के हवाले
बखत-ज़रूरत रात-बिरात
छाती ताने खड़ी हो जाती हैं
गुइँए गुइँयों के लिए
नहीं लातीं बीच में तेरा आदमी मेरा आदमी
कुम्भ में नहा लेती हैं उघाड़ी पीठ किए
बदल लेती हैं धोतियाँ एक दूसरे की ओट में
होते हैं मनमुटाव भी
पीठ पीछे चुगलियाँ और बुराइयाँ
पर नहीं बँधती गाँठे
जी भर खर्चती हैं
जमा किए रोकड़े
एक दूजी के बेटा-बेटी के ब्याह में
और भरे रहते हैं इनके भण्डार
संतोष के धन से
तेरी साड़ी मेरी साड़ी से उजली कैसे
इस कुंठा और भ्रम से निकल
जीती हैं जी भर के
शादी ब्याह की रंगीनियाँ
बनती हैं गोरनी, माँडती हैं माँडणे
पूरती हैं चौक
इन्हें पता भी नहीं होता
कि बचा रखी हैं इन्ही निगोड़ियों ने
संस्कृतियों की विरासतें
सोहर, गाली, बन्ने बन्नी, भियाने
इनके कण्ठों से निकल
सदियों से तृप्त कर रहे हैं,
आँगन गली मोहल्लों की प्यास
पनघट, चौबारे, हँसुली, गुरिया
शब्दकोष में हरियाते हैं
इन्हीं की बदौलत
ये न आदिवासी हैं न दलित और न ही
पीड़ित स्त्री जात में शामिल

मारपीट, खेत खलिहान बासी कूसी
अधपेट रोटी ये सब
दिनचर्या है इनके लिए
इससे ऊबी अघाई
तो निकल लेती हैं झुंडों में
तीरथ तपस्या के बहाने
मरदों को ऐसे छकाना इन्हें ख़ूब आता है
इनकी कविताएँ शामिल नहीं किसी कविता
कोश में
पर ये हर रोज़ लिख रहीं
अपनी जी हुई कविता
सदियों की डायरी में
इतिहास में दफ़्न होने को
***

वक्र रेखा/तिर्यक रेखा

समानान्तर रेखाओं के एक छोर से
दूसरे छोर की दूरी तय करते वक़्त
बिलकुल सही लग रही थी
हाँ उन्हें मिलाने वाली सी ही
एक सेतु की तरह

सरल रेखाओं ने नहीं जताई कोई प्रतिस्पर्धी
इच्छा
कि तिरछी अटपटी चाल से भी
कभी चलकर दिखाएँ
मनवाएँ लोहा वक्रता का

ज़रूरत ही नहीं थी
वक्र होने अथवा दिखने की भी
समनान्तर चलते भी
जुड़ा ही हुआ था बहुत कुछ
अनबन और विचारधारा के टकराव के
बावज़ूद

हवा पानी मिट्टी और आकाश सी
सहज रही आईं
पारदर्शी तरल सरल रेखाएँ
मुग्ध करती रहीं अन्तस को

बिना शर्मसार किए तिर्यक रेखा को
***

संपर्क : 36, मंगलम विहार, किटीयानी,
मंदसौर-458001 (मध्य प्रदेश)
मोबाइल : 9407451563
ईमेल : atti.twr@gmail.com

नवगीत

जयप्रकाश श्रीवास्तव के नवगीत

सोचा न था

क्या सही है क्या ग़लत है
यह कभी सोचा न था

उँगलियों से
फिसलती है
जब रेत की मुट्ठी
माँ पिलाती
है शिला पर
घिस जन्म की घुट्टी
क्या ज़हर है
क्या है अमृत
इस क़दर धोखा न था।

अतीतों के
झरोखों से
झाँकती ज़िन्दगी
एक क़तरा
फिर दुबारा
माँगती ज़िन्दगी
क्या उचित है
क्या है अनुचित
यूँ कभी भोगा न था।

कठिन राहें
पड़े छाले
बीहड़ों में पाँव
मिला फिर भी
नहीं अब तक
वह पुराना गाँव
क्या नियम है
क्या धरम है
ऐसा तो देखा न था।
***

पहचान

क्या थे क्या हो गए आज हम
भूल गए अपनी पहचान

भाषा के
जंगल उग आए
खोई सारी
परिभाषाएँ
पूरब से
पश्चिम तक आकर
सभी डुबोईं
मर्यादाएँ

गढ़े शब्द से शब्द निरर्थक
अर्थहीन जीवन के गान।

लाँघ सभ्यता
की दहलीज़।
संस्कार की
धरा पुरातन
जड़ें खोदकर
विश्वासों की
बोए बीज
सभी अधुनातन

पसर गया है मृग तृष्णा का
मरुथल साँसों में बेजान।

धर्म धुरंधर
जपते माला
बिछा व्यवस्था
ऊँच नीच की
बज्र नहीं
बनते हैं पाँसे
गला हड्डियाँ
अब दधीच की

भोग तपस्या के काँधे पर
बैठा माँग रहा वरदान।
***

संपर्क:आई.सी.5 सैनिक सोसायटी, शक्ति नगर, जबलपुर(म.प्र.) 482001
ईमेल:
jaiprakash09.shrivastava@gmail.com
मोबाइल:7869193927

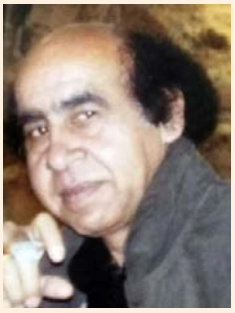

कृष्ण भारतीय के नवगीत

अपना कुछ भी नहीं.....।

अपना है देस मगर अपना –
कुछ भी नहीं।

तलुओं में गर्म रेत, सिर पर –
तपता विहान:
मरुथल के ठूँठों पे गूँगा सुर –
का विधान:
सूने में भीड़- भाड़, मेले में
सूनापन,
जख्म भरे पैरों के, केवल
हल्के निशान;

भीगी सी धुँधली इस –
दिव्य दृष्टि सरहद में,
कोहरा है घना, मगर सपना –
कुछ भी नहीं।

रंगीले ख्वाबों के, बाग हैं –
बगीच। हैं,
और सब समाधि, एक लीन –
लिए बैठे हैं,
बारिश है, धूप घनी, आग के –
थपेड़े हैं,
सदियों से हम दधीचि से सूखे –
ऐंठे हैं:

भूख नहीं, प्यास नहीं,
तप फल की आस नहीं
मंत्रोच्चारण में, जपना –
कुछ भी नहीं।

यज्ञ सफल हो कैसे, असुरों के –
शासन में,
देवशक्ति पुंजों पर, वक्रदृष्टि –

हावी है,
कपट, छल, छलावे हैं, भ्रमित हैं –
भुलावे हैं,
हर माया, एक सुन्दरी, मगर –
छलावी है:

आहुति, डाले रहना,
फल भ्रम पाले रहना,
मिलना है महज रोज, तपना –
कुछ भी नहीं।

यज्ञों के आयोजक, जो भी –
सिरमौर रहे,
भीतर कर घात, चुप्प असुरों से –
जा मिले :
एक हाथ आहुति, इक माँस भरे –
छिछले हैं,
सदा फेल ही होंगे, यज्ञों के –
सिलसिले :

अपने इस तपवन में,
मित्रों में, दुश्मन में,
जनता को इक मरना है खपना –
कुछ भी नहीं।
***

बता कहाँ गुम हुआ....?

बहुत दिनों के बाद मिले हैं,
चल दोनों –
चाय वाय पीकर कुछ गपशप करते हैं।

कुछ दिन पहले ढेरों कामों –
में उलझे,
फिर भी सुबह शाम कैसे –
मिलते थे हम :
आज निठल्ले होकर भी –
इन्सानों में,
आपस में मिलने का वक्त –
बचा है कम :

हैं दिमाग में आँधी अंधड़ –
के मौसम,
आँख मूँद कर, मंत्रों का –
जप करते हैं।
रिश्तों की, हरियाली वाली –
फसलों पर,
जैसे ओले ढेर टूट के –
पड़े हुए :
नामों केरिश्ते, लटके –
दीवारों पर,
एक फ्रेम में कुछ कीलों से –
जड़े हुए :

ईष्ट देव की नहीं, वरन–
धन देवी को,
खुश करने को हवन यज्ञ- तप करते हैं।

जज्बातों के, मौसम सब –
बर्फीले हैं,
और नसों में, पिघला लावा–
बहता है :
बता कहाँ गुम हुआ जो दुनिया–
कहती है,
दिल में इक, प्यारा बच्चा भी –
रहता है :

ऊब गया मेरी बातों से –
छोड़ परे,
दकियानूसी सोच खत्म ठप करते हैं।
***

इन अँधेरों में सबर कर..।

एक चुल्लू से, कुँए ये –
भर नहीं पाएँगे हम।
इन अँधेरों में सबर कर –
मर नहीं जाएँगे हम।

अब अँधेरे हैं तो हैं कुछ वार –
कर बेबस तो कर :
क्या मुनासिब है कहीं संवाद –
कुछ कोशिश तो कर :

कोई घुड़के या करे हमले –
किसी हथियार से,
इन कमीनी हरकतों से –
डर नहीं जाएँगे हम।

अन्त तो होगा कथा का –
जो बची किस्से की है :
धूप तो हर हाल में छीनेंगे –
जो हिस्से की है :
गर कमर कस ली तो सबकुछ –
आर है या पार है,
फिर लिए बिन धूप अपनी –
घर नहीं जाएँगे हम।

देख फिर रंगीन गुब्बारों का –
मौसम आ गया :
फिर न कहना, सोच में –
कैसे अँधेरा छा गया :

अब अगर चूका तो समझो –
हाथ से बाज़ी गई,
एक लम्बे वक्त फिर कुछ –
कर नहीं पाएँगे हम।
***

संपर्क: पार्क व्यू रेजीडेन्सी, टी – 2/503,
पालम विहार, सेक्टर – 3, गुरूग्राम –
122017 (हरियाणा)
ईमेल: kbhasin15@gmail.com
मोबाइल : 09650010441

ग़ज़ल
गौतम राजऋषि

जो कहा...जो भी कहा, आधा-अधूरा रह गया
बात आधी रह गयी, क़िस्सा अधूरा रह गया

कहने को तो कह दिया था कहना था जो कहने को
कहने को फिर भी मगर कहना अधूरा रह गया

देखना देखा जो उनका, आईने में एक रोज़
अक्स यूँ बिछड़ा कि आईना अधूरा रह गया

सोचे थे...उनको न सोचेंगे, लिखेंगे जब ग़ज़ल
याद फिर वो आ गये...मिसरा अधूरा रह गया

मंज़िलों की ख़्वाहिशों के पूछ मत जुल्मो-सितम
हर सफ़र आधा रहा, रस्ता अधूरा रह गया

क़ायदे से तो मुकम्मल होनी थी दीवानगी
लम्स था ऐसा कि दीवाना अधूरा रह गया

ऐ सुनो, ऐसे न जाओ...बात पूरी कर तो लो !
सो न पाओगे, अगर झगड़ा अधूरा रह गया
***

संपर्क : पूरब बाजार सहरसा बिहार, 852201
मोबाइल : 9759479500
ईमेल : gautam_rajrishi@yahoo.co.in

नव पल्लव

यूथिका चौहान

यायावर क्यों मुँह मोड़ चला।

यायावर क्यों मुँह मोड़ चला ?
नाता स्वारथ का तोड़ चला ॥

तट के हलकोरों से लेकर,
मंझधार तलक जो साथ रही;
दुर्बल किश्ती तूफ़ानों में,
थी तेरी संगी याद नहीं ?
पैरों के साहिल छूते ही,
बस तन्हा उसको छोड़ चला !
यायावर क्यों मुँह मोड़ चला ?

जब किसी बुलंदी को छूने,
तू सैलानी बनकर निकला;
लाठी का सिर्फ़ सहारा था,
तू चीर शिलाओं को निकला।
चोटी चढ़ते ही संबल को,
क्यूँ बोझ समझकर छोड़ चला ?
यायावर क्यों मुँह मोड़ चला ?

गंतव्य मार्ग पर सोच ज़रा,
जिस जर्जर पुल ने साथ दिया;
जब तू डोला तब रस्सों ने,
जिसके था तुझको बाँध लिया !
कर उसे हवाले नियति के,
रिश्ता मंज़िल से जोड़ चला।
यायावर क्यों मुँह मोड़ चला ?

है अश्वमेध का घोड़ा तू,
कह तुझ पर कोई सवार कहाँ;
चेतक ख़ुद को कह ले लेकिन,
तुझसा कोई लाचार कहाँ !
बलिदान सुनिश्चित है जिसमें,
तू उसी दिशा में दौड़ चला।
यायावर क्यों मुँह मोड़ चला ?

* * *

संपर्क: 1501 Mason Farm Road,
Apt. #214, Chapel Hill, NC27514, SA,
मोबाइल : +1-919-638-4175

लघु कथा

एक नई आशा

मुकेश कुमार ऋषि वर्मा

मैं गृहनिर्माण से सम्बन्धित कुछ सामान खरीदने फतेहाबाद गया था। सामान खरीदने के बाद, दुकान पर लोडिंग वाहन के आने का इंतज़ार करने लगा। समय करीब आधा घंटा बीत गया तो टहलते-टहलते बाहर सड़क किनारे एक पेड़ के नीचे आ कर खड़ा हो गया। तभी एक जादूगर अपने छः - सात वर्षीय मासूम के साथ वहाँ आ गया और मुझसे बोला 'ए बाबू ! हम इस पेड़ के नीचे छाया में बैठकर खेल दिखा सकता हूँ क्या...?'

'हाँ-हाँ... क्यों नहीं ज़रूर दिखाओ...' मैंने उसे यह सोचकर बोल दिया कि कुछ टाइम पास हो जाएगा।

उसने अपने जादूगरी के खिलौने शेर, डायनासोर, नेवला, साँप आदि थैले से निकाले और अपनी दुकान जमाने लगा। मैं उसका डमरू बजाने लगा पर मुझसे सही तरीके से बजा नहीं तो जादूगर का छोटा बच्चा हँसने लगा, उसकी हँसी देख मुझे भी हँसी आ गई। वैसे मैं देख रहा था वो शुरू से ही कुछ निराश सा था।

तभी डमरु की आवाज़ सुनकर दुकानदार बाहर आ गया और बेचारे जादूगर पर लाल-पीला हो गया। तमाम उल्टी-सीधी गालियाँ बक गया पर बेचारा जादूगर हाथ जोड़े बिनती करता रहा - 'साब जी! गरीब हूँ, दिवाली का त्यौहार नज़दीक है। दो पैसे यहाँ पेड़ की छाँव में आ जाएँगे। बस आधे घंटे की बात है।'

'अबे! यहाँ से अपने टाट-कमंडल उठा रहा है कि अभी मैं ही उठाके फैंकू... निकल यहाँ से सुबह-सुबह आ जाते हैं मूड खराब करने।'

'ठीक है - ठीक है माईबाप जाता हूँ...'

बेचारे जादूगर ने कुहनी तक हाथ जोड़े और अपना सामान समेटने लगा। मैंने उसकी सामान समेटने में मदद की और उसे समझाया 'ईश्वर पर भरोसा रखो। हो सकता है यहाँ खेल देखने दर्शक न आते और तुम्हारी मेहनत बेकार चली जाती, इसीलिए शायद इस दुकानदार ने तुम्हारा खेल शुरू होने से पहले ही खत्म करा दिया। अभी शाम दूर है। कोई और जगह तुम्हारा इंतज़ार कर रही है।'

इतना सुनते ही उसका मायूस - दुःखी चेहरा एक नई आशा के साथ चमक उठा और वो मुस्कराता हुआ चला गया...।

* * *

संपर्क: ग्राम रिहावली, डाक तारौली गुर्जर,
फतेहाबाद, आगरा, 283111
ईमेल: mukesh123idea@gmail.com

समाचार-सार

ज्योति जैन की दो पुस्तकों का विमोचन

''बचपन में खेतों और बगीचों में मिट्टी, पेड़, पौधे, तितली, फूल, हवा, पानी और बीज अंकुरण से जो जीवन के गहरे पाठ पढ़े वही आज मेरी रचनाओं में लौट लौट कर आते हैं। घुमक्कड़ी और बिंदास जीवन का फलसफा मुझे निरंतर सीखने और सीखे हुए को सुव्यक्त करने की प्रेरणा देता है, बस यही मेरी रचनाधर्मिता है'' उक्त विचार शहर की संवेदनशील और चिंतनशील लेखिका ज्योति जैन ने व्यक्त किए। वे शिवना प्रकाशन से प्रकाशित अपनी दो पुस्तकों जीवन दृष्टि और यात्राओं का इंद्रधनुष के विमोचन के अवसर पर बोल रही थीं।

रविवार 16 दिसंबर को हुए वामा साहित्य मंच के बैनर तले एक गरिमामयी कार्यक्रम में उनकी इन पुस्तकों ने साहित्य संसार में दस्तक दी। इस अवसर पर लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार और शिवना प्रकाशन के निदेशक पंकज सुबीर, अहिल्या बाई होलकर एयरपोर्ट की निदेशक आर्यमा सान्याल तथा पद्मश्री से सम्मानित भालू मोंढे मुख्य अतिथि और चर्चाकार के रूप में मौजूद थे।

आर्यमा सान्याल ने लेखिका ज्योति जैन की सक्रियता, रचनात्मकता और संवेदनशीलता की प्रशंसा की और कहा कि बदलते वक्त में जबकि इतना कुछ लिखा जा रहा है जमीनी और ज़रूरी लेखन सिमट रहा है, ऐसे में ज्योति जी की रचनाएँ आश्वस्त करती हैं, उनकी सभी कृतियों की खास बात है कि वे सकारात्मकता से भरपूर हैं। वे उजालों की समर्थक हैं पर अंधेरों से डरती नहीं हैं, डट कर सामना करती हैं। व्यक्तिगत जीवन में भी वे ऐसी ही हैं। अपनी जिम्मेदारियों से विमुख नहीं होती हैं और अपने स्व की भी रक्षा करती है। इस बीच वे लेखन की निरंतरता का क्रम टूटने नहीं देती और मुस्कुराते हुए आगे निकल जाती है।

मुख्य अतिथि भालू मोंढे ने पुस्तक यात्राओं का इंद्रधनुष में उनके यात्रा संस्मरण इतने मासूम और जीवंत हैं कि पाठक को अपने साथ दुनिया घूम कर आने का अहसास देते हैं। प्रकृति उन्हें चकित भी करती है और वे उसके सौंदर्य को पूर्णता से अभिव्यक्त करने में भी सफल होती हैं। पुस्तक जीवन दृष्टि में उनके विविध अवसर पर प्रकाशित विचार और आलेख हैं जो हमारे आसपास ही बिखरे ओस कण की तरह हैं जो लुभाते हैं प्रभावित करते हैं और जीवन जीने की कला सिखाते हैं।

साहित्यकार पंकज सुबीर ने कहा कि इन दिनों कथा से इतर गद्य या साहित्य खूब लिखा जा रहा है, और साहित्य के लिए शुभ संकेत है कि इस कथेतर साहित्य से युवा पाठक पूरी दिलचस्पी से जुड़ रहे हैं। ज्योति जी की दोनों किताबें कथेतर गद्य का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमें कहानी से अलग वास्तविकता का रस है। पंकज सुबीर ने ज्योति जैन की निबंध संग्रह की चर्चा करते हुए कहा कि बहुत साहस चाहिए होता है निबंध लिखने के लिए; क्योंकि उसमें लेखक को अपने विचार सामने रखते होते हैं, जिनसे वह बाद में बच नहीं सकता है। ज्योति जैन ने यह साहस किया है इसके लिए उन्हें बधाई दी जानी चाहिए।

कार्यक्रम के आरंभ में वामा साहित्य मंच की ओर से वीना नागपाल, मंजु व्यास, शारदा मंडलोई और परिवार की तरफ से चानी जैन कुसुमाकर, पुरुषार्थ और स्वामी ने अतिथियों का स्वागत किया। गरिमा संजय दुबे ने सरस्वती वंदना प्रस्तुत की, स्वागत उद्बोधन वामा साहित्य मंच की अध्यक्ष पद्मा राजेन्द्र ने दिया। स्मृति चिन्ह शरद जैन, राजेन्द्र तिवारी और कोणार्क जैन ने दिए। संचालन स्मृति आदित्य ने किया और अंत में आभार माना कहानीकार डॉ. किसलय पंचोली ने। इस अवसर पर शहर के जाने माने साहित्यकार उपस्थित थे।

***

ममता कालिया ने प्रदान किया आर्य स्मृति साहित्य सम्मान

16 दिसंबर को हिन्दी भवन में आयोजित सम्मान समारोह में 25वें आर्य स्मृति साहित्य सम्मान से भगवान वैद्य 'प्रखर' और हरीश कुमार 'अमित' को उनकी लघुकथाओं के लिए सम्मानित किया गया। सम्मान स्वरूप उन्हें ग्यारह- ग्यारह हज़ार रुपए और उनकी पुस्तकों की पचास-पचास प्रतियाँ भी भेंट की गईं। यह सम्मान उन्हें वरिष्ठ कथाकार ममता कालिया द्वारा प्रदान किया गया।

इस अवसर पर ममता जी ने कहा कि लघुकथा एक रिलीफ का काम करती है। मैं पत्रिकाओं में सबसे पहले लघुकथा और कविता ही पढ़ती हूँ। लेकिन लघुकथा को फिलर न बनाया जाए। किताबघर प्रकाशन ने अपने रजत जयंती वर्ष में इस विधा को समर्पित यह आयोजन कर एक बड़ा काम किया है। मुझे लगता है कि लघुकथा लिखते समय, किसी लोकोक्ति या सुनी हुई रचना की झलक न मिले। लघुकथा की शक्ति है उसकी तीक्ष्णता। उसमें अपूर्णता नहीं नज़र आनी चहिए। लघुकथा कहानी की हाइकू है।

प्रारंभ में किताबघर के संस्थापक श्री जगतराम आर्य के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित कर उनके प्रति सम्मान व्यक्त किया गया। स्वागत भाषण में किताबघर प्रकाशन के निदेशक श्री सत्यव्रत ने कहा कि प्रति वर्ष 16 दिसंबर को हम यह आयोजन किताबघर के संस्थापक श्री जगतराम आर्य जी की स्मृति में करते हैं। सम्मान अर्पण के बाद 'लघुकथा की प्रासंगिकता' पर एक परिसंवाद भी हुआ जिसकी शुरुआत की गोष्ठी के संचालक कथाकार महेश दर्पण ने।

***

विक्रम सिंह गोहिल को अज़ीज़ इन्दौरी सृजन सम्मान

जनवादी लेखक संघ इन्दौर द्वारा आयोजित कार्यक्रम में जनवादी लेखक संघ के पूर्व अध्यक्ष की स्मृति में अज़ीज़ इन्दौरी सृजन सम्मान देवास के विख्यात ग़ज़लकार विक्रम सिंह गोहिल को प्रदान किया गया। उर्दू के जाने माने साहित्यकार रशीद शादनानी ने अज़ीज़ इन्दौरी के व्यक्तित्व व कृतित्व पर विस्तार से बातचीत की। कथाकार प्रकाश कान्त ने विक्रम सिंह गोहिल के व्यक्तित्व व कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए रेखांकित किया कि वे अपने सपनों में एक वैज्ञानिक भारत देखते हैं।

***

गाँधी जयंती पर संगोष्ठी का आयोजन

गाँधी जयंती के अवसर पर केंद्रीय हिंदी निदेशालय एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग और हिंदुस्तानी भाषा अकादमी के तत्वावधान में 'गाँधी के भाषा चिंतन में हिंदी' विषय पर विचार संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें दिल्ली, एन सी आर के विभिन्न विद्यालयों के लगभग 125 हिंदी शिक्षक भी आमंत्रित थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रो. अवनीश कुमार, अध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मुख्य अतिथि भाषाविद् और केंद्रीय हिंदी समिति के सदस्य प्रो. कृष्णकुमार गोस्वामी थे।

***

क्षितिज साहित्य मंच द्वारा रचना पाठ संगोष्ठी

क्षितिज साहित्य मंच इंदौर द्वारा रचना पाठ संगोष्ठी का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि डॉ. ओम ठाकुर ने कहा कि प्रत्येक रचना पर गंभीर और सूक्ष्म चर्चा होनी चाहिए। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ साहित्यकार कांतिलाल ठाकरे ने की। उन्होंने काव्य सृजन को श्रेष्ठ विधा निरूपित करते हुए यह कहा कि जो लोग काव्य का सृजन कर लेते हैं वह साहित्य की किसी भी विधा में सृजन कर सकते हैं। संचालन डॉ. पुरुषोत्तम दुबे ने तथा आभार प्रदर्शन सतीश राठी ने किया।

***

आरती तिवारी के काव्य संग्रह का विमोचन

कवयित्री आरती तिवारी के कविता संग्रह तब तुम कहाँ थे ईश्वर का विमोचन हिन्दी साहित्य सम्मेलन मंदसौर द्वारा आयोजित एक गरिमामय समारोह में प्रोफ़ेसर रतन चौहान तथा सुप्रसिद्ध कवि बहादुर पटेल ने किया। साहित्य सम्मेलन की अध्यक्ष ज्योति देशमुख ने इस अवसर पर पुस्तक पर अपनी समीक्षा प्रस्तुत की। कार्यक्रम का संचालन वेद मिश्रा ने किया।

***

साहित्यकार ज्योति जैन को कर्मभूमि सम्मान

साहित्यकार ज्योति जैन को प्रेमचंद सृजन पीठ मध्यप्रदेश का कर्मभूमि सम्मान उज्जैन की कालीदास अकादमी में आयोजित एक गरिमामय समारोह में प्रदान किया गया। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में कथाकार पंकज सुबीर उपस्थित थे, कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. मनोहर सिंह राणावत ने की। अंत में आभार संस्थान के निदेशक जीवन सिंह ठाकुर ने व्यक्त किया।

***

हिंदी विश्वकोश का गणित खंड उपाध्यक्ष को भेंट

केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली में आयोजित एक कार्यक्रम में केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा के उपाध्यक्ष डॉ. कमल किशोर गोयनका को हिंदी विश्वकोश के 'गणित खंड' की प्रथम प्रति हिंदी विश्वकोश के प्रधान संपादक प्रो. इन्द्र नाथ चौधरी ने भेंट की। 'गणित खंड' को वैज्ञानिक परिशुद्धता के साथ प्रकाशित किया गया है।

***

डॉ. अनिल प्रभा कुमार को हिन्दी विदेश प्रसार सम्मान

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की ओर से अमेरिका की डॉ. अनिल प्रभा कुमार को इस वर्ष के ''हिन्दी विदेश प्रसार सम्मान'' से सम्मानित किया गया। शॉल, ताम्रपत्र और दो लाख रुपये की राशि का यह पुरस्कार उन्हें लखनऊ में आयोजित एक विशेष समारोह के अवसर पर दिया गया। उल्लेखनीय है कि यह सम्मान विदेश में रहते हुए मातृभाषा हिन्दी की विशिष्ट सेवा के लिए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रति वर्ष किसी एक प्रवासी लेखक को प्रदान किया जाता है।

***

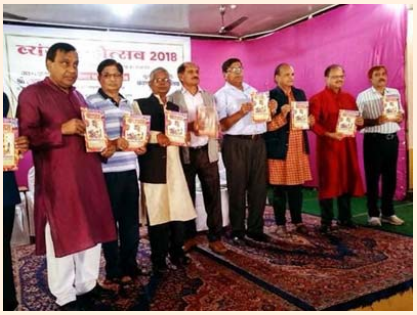

रायपुर में व्यंग्य महोत्सव 2018 का आयोजन

माध्यम संस्थान, लखनऊ और संजीवनी फ़ाउण्डेशन, रायपुर के तत्वावधान में 18 नवम्बर को रायपुर के विप्र भवन, समता कॉलोनी के सभागार व्यंग्य महोत्सव 2018 का आयोजन किया गया। माता कौशल्या ज्योतिष साहित्य संस्कृति शोधपीठ छत्तीसगढ़ एवम संजीवनी फाउंडेशन रायपुर द्वारा प्रख्यात व्यंग्यकार, उपन्यासकार व आलोचक सुभाष चन्दर को व्यंग्य सम्राट का मानद अलंकरण तथा अनूप श्रीवास्तव, को लाइफ टाइम अचीवमेंट अवार्ड प्रदान किया गया।

***

बालकविता संग्रह ''बापू से सीखें'' का विमोचन

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान द्वारा त्रिदिवसीय सांस्कृतिक महोत्सव का आयोजन संस्थान के अखिल भारतीय केंद्रीय भवन के सभागार में 23 से 25 नव. तक आयोजित किया गया। महोत्सव में तीसरे दिन हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल आचार्य देवव्रत मुख्यअतिथि के रूप में उपस्थित रहे। इस अवसर पर राज्यपाल द्वारा महात्मा गाँधी जी के जन्म के 150 वें वर्ष पर संस्थान से प्रकाशित बाल साहित्यकार डॉ. वेद मित्र शुक्ल का बाल कविता-संग्रह ''बापू से सीखें'' का विमोचन किया गया।

***

सदाशिव कौतुक को संत ब्रह्मगीर सम्मान

हिंदी परिवार के उपाध्यक्ष साहित्य संगम के अध्यक्ष एवं पत्रिका समावर्तन के प्रबंध संपादक साहित्यकार सदाशिव कौतुक को निमाड़ी एवं हिंदी साहित्य की सतत साधना के लिए अखिल निमाड़ी लोक परिषद संस्था द्वारा निमाड़ी गीतकार स्वर्गीय राजा बाबू डोंगरे की स्मृति में संत ब्रह्मगीर सम्मान प्रतीक चिह्न, सम्मान पत्र, राशि एवं अंग वस्त्र प्रदान कर किया गया।

***

लहरों पर कविता का भोपाल में आयोजन

आरंभ इंटरनेशनल एवं विश्व हिंदी संस्थान कनाडा, मध्य प्रदेश शाखा के तत्वावधान में ''लहरों पर कविता'' साहित्य नौका विहार क्रूज, वोट क्लब, भोपाल में कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस अभिनव प्रयोग में मुख्य अतिथि संस्थापक / अध्यक्ष विश्व हिंदी संस्थान कनाडा के प्रोफ़ेसर सरन घई, विशिष्ट अतिथि श्री महेश सक्सेना, डॉ. मालती बसंत थे।

***

विनोद बब्बर को सौहार्द सम्मान प्रदान किया गया

गत दिवस लखनऊ में आयोजित समारोह में उ.प्र. विधानसभा के अध्यक्ष श्री हृदय नारायण दीक्षित और उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष डा. सदानंद गुप्त ने वरिष्ठ साहित्यकार, पत्रकार श्री विनोद बब्बर को सौहार्द सम्मान प्रदान किया। इस सम्मान में उन्हें ताम्रपत्र, अंगवस्त्रम् और दो लाख रुपये की राशि भेंट की गई।

***

अज्ञात सूत्र और लिटरेचर फेस्टिवल

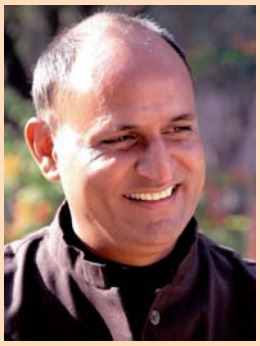

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के
सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल : 9977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

पिछले दिनों किसी सोशल मीडिया प्लेटफार्म पर एक पोस्ट को पढ़ रहा था। उसमें इन दिनों देश भर में आयोजित हो रहे लिटरेचर फेस्टिवल्स की पोल किसी 'अज्ञात सूत्र' के माध्यम से खोली गई थी। मैं चूँकि पत्रकारिता से आया हूँ, इसलिए मुझे पता है कि जब भी बात किसी 'अज्ञात सूत्र' के माध्यम से की जा रही होती है, तो वास्तव में 'अज्ञात सूत्र' कुछ भी नहीं होता है, हम अपनी ही बात कह रहे होते हैं। 'अज्ञात सूत्र' वास्तव में हमारे ही अंदर का अज्ञात कोना होता है। तो बात चल रही थी कि लिटरेचर फेस्टिवल्स को लेकर बहुत कुछ पोल-खोल टाइप का सनसनीख़ेज़ अंदाज़ में लिखा गया था। मैं स्वयं पिछले दो माह में तीन फेस्टिवल्स में शामिल हुआ, और 'अज्ञात सूत्र' द्वारा दी गई जानकारी जैसा कुछ भी मुझे महसूस नहीं हुआ। हाँ यह ज़रूर महसूस हुआ कि फ़िल्म और टीवी से जुड़े हुए लोगों को लेकर दर्शकों में अतिरिक्त उत्साह होता है, साहित्य को लेकर उतना नहीं होता। मगर जैसा कि 'अज्ञात सूत्र' ने कहा कि वहाँ साहित्यकार को कोई नहीं पूछता, वो अपने जेब का पैसा लगा कर जाता है, जैसा कुछ भी नहीं था। 'साहित्य आज तक' में आयोजकों की मेहमाननवाज़ी का मैं क़ायल होकर लौटा हूँ और लगभग यही स्थिति 'देहरादून लिट फेस्टिवल' की रही। मुझे हैरत है कि 'अज्ञात सूत्र' ने जो कुछ जानकारी प्रदान की है, वह किसी लिट फेस्ट की है ? उस पोस्ट को पढ़कर मैं दुखी भी था, दुखी इसलिए कि केवल इसलिए क्योंकि आपको कहीं बुलाया नहीं जा रहा है, आप पूरे आयोजन पर ही प्रश्नचिह्न उठाने से भी नहीं चूक रहे हैं। आप यह भी नहीं सोच रहे हैं कि आप 'अज्ञात सूत्र' के माध्यम से जो भ्रामक बातें कह रहे हैं, उनका कितना विपरीत असर आपके ही साथियों पर हो रहा है। हिन्दी साहित्य इन दिनों एक अजीब सी असुरक्षा के दौर से गुज़र रहा है। असुरक्षा यह कि हर जगह मैं उपस्थित रहूँ। हर किताब में मेरी रचना हो। हर विशेषांक में मेरी रचना हो। हर पुरस्कार, सम्मान में मेरा नाम हो। हर आयोजन में मैं मंच पर रहूँ। यह असुरक्षा सभी को नुकसान पहुँचा रही है। आप एक साथ कितनी जगहों पर हो सकते हैं भला ? मगर नहीं... आप चाहते हैं कि ऐसा ही हो। लिटरेचर फेस्टिवल्स में हिन्दी के लेखकों की उपस्थिति इन दिनों बहुत प्रभावी होकर दिखाई दे रही है। और इसके लिए उन लेखकों का पाठक वर्ग है। कुछ वर्षों पूर्व तक हम इस बात पर अफ़सोस जताते थे कि लिटरेचर फेस्टिवल्स में हिन्दी का लेखक क्यों दिखाई नहीं देता, अब जब लेखक वहाँ पहुँचने लगा है, तो हमें अब यह अफ़सोस होने लगा है कि हम वो लेखक क्यों नहीं हैं ? लिटरेचर फेस्टिवल्स की अपनी दुनिया है, वह दुनिया गंभीर नहीं है, वह वैसी ही है, जैसे हमारे यहाँ लगने वाले मेले-ठेले होते हैं। 'अज्ञात सूत्र' ने जो कुछ जानकारी दी, वह कहाँ की थी, किस लिटरेचर फेस्टिवल की थी, यह सूचनाएँ भी उनकी पोस्ट में नहीं थी। शायद वह जानकारी भी 'अज्ञात सूत्र' की ही तरह किसी अज्ञात लिटरेचर फेस्टिवल की ही थी। हम पत्रकार अक्सर इस वाक्य का उपयोग करते हैं -'नाम न छापने की शर्त पर हमें अज्ञात सूत्र ने यह जानकारी प्रदान की।' प्रश्न यह उठता है कि 'अज्ञात सूत्र' का उपयोग कर क्या आप किसी सफ़ेद झूठ को भी सच की तरह लोगों के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं ? और इस प्रकार कर सकते हैं कि अपने ही लोगों को, अपने ही समाज को, अपनी ही बिरादरी को प्रश्नचिह्न के दायरे में ले आएँ। कारण केवल यह कि हाय हम ही क्यों न हुए वहाँ पर ? जो वहाँ थे, वो ही वहाँ क्यों थे ? हम यह नहीं सोचते कि जहाँ हम थे, वहाँ वो नहीं थे, वहाँ तो हम ही थे। आसमान में हर तारे के लिए जगह होती है, आसमान कभी छोटा नहीं पड़ता। इस बारे में सोचिए.. यह सोचना ज़रूरी है..।

सादर आपका ही,

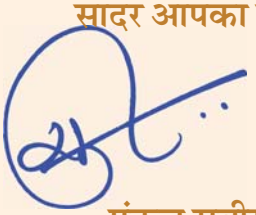

पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें

शोध दृष्टि - सुधा ओम ढींगरा का साहित्य
(शोध-आलेख संग्रह)
बलबीर सिंह, प्रकाश चंद बैरवा

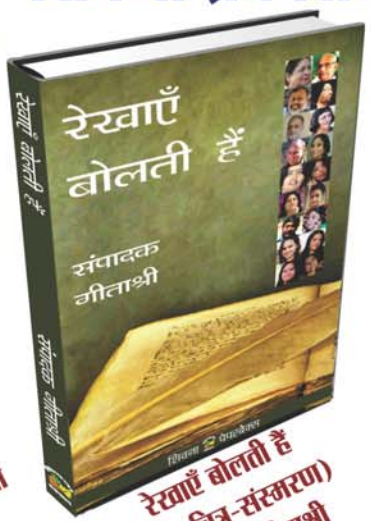

रेखाएँ बोलती हैं
(रेखाचित्र-संस्मरण)
संपादक गीताश्री

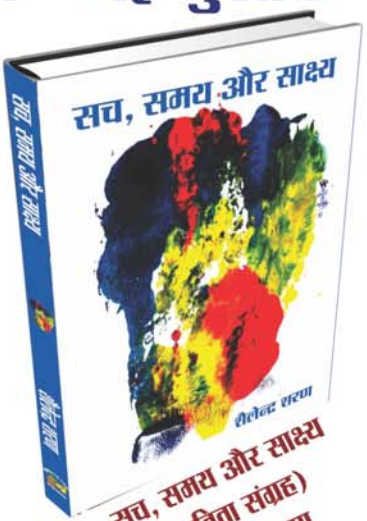

सच, समय और साक्ष्य
(कविता संग्रह)
शैलेन्द्र शरण

ख़ामोश आवाज़ें
(उर्दू कहानी संग्रह)
सैयद असद मेहदी

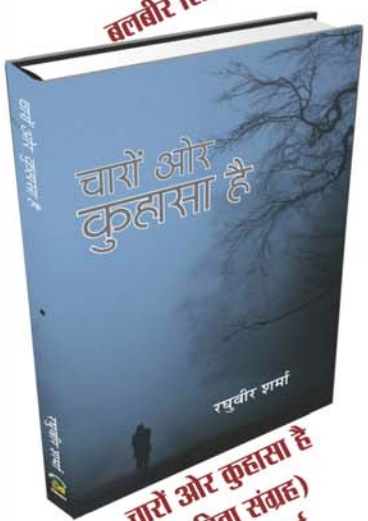

चारों ओर कुहासा है
(कविता संग्रह)
रघुवीर शर्मा

संकल्प और सपने
(लघुकथा संग्रह)
सदाशिव कौतुक

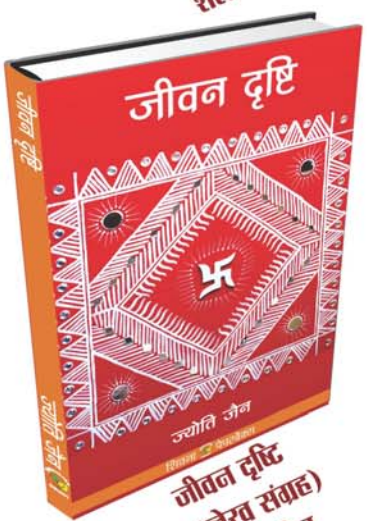

जीवन दृष्टि
(आलेख संग्रह)
ज्योति जैन

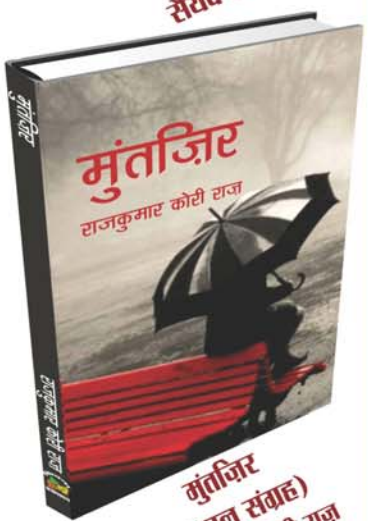

मुंतज़िर
(ग़ज़ल संग्रह)
राजकुमार कोरी राज

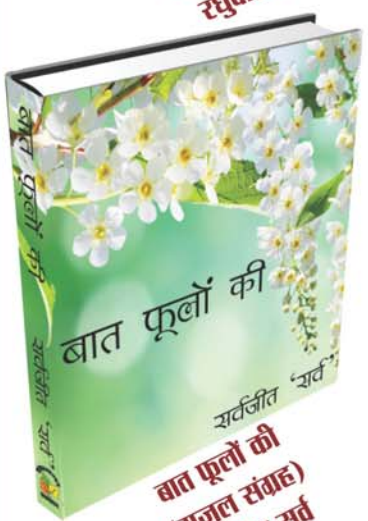

बात फूलों की
(ग़ज़ल संग्रह)
सर्वजीत सर्व

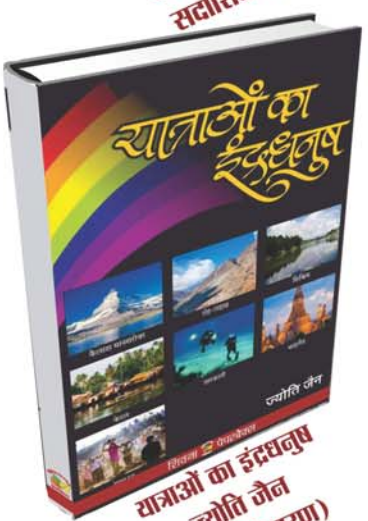

यात्राओं का इंद्रधनुष
ज्योति जैन
(यात्रा संस्मरण)

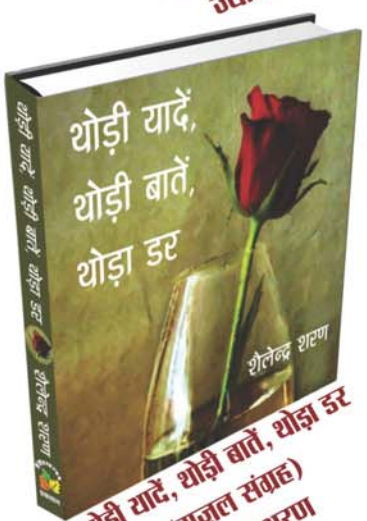

थोड़ी यादें, थोड़ी बातें, थोड़ा डर
(ग़ज़ल संग्रह)
शैलेन्द्र शरण

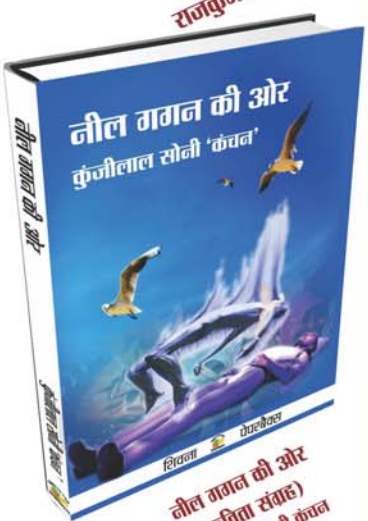

नील गगन की ओर
(कविता संग्रह)
कुंजीलाल सोनी कंचन

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Vibhom Swar ● Quarterly ● January-March 2019 ● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रुप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे 310 बच्चियों हेतु निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम सत्र 2018-19 का शुभारंभ करते कलेक्टर श्री तरुण कुमार पिथोड़े, अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव। इस अवसर पर श्री तरुण पिथोड़े ने अपनी ओर से एक कम्प्यूटर भी प्रशिक्षण केन्द्र को प्रदान किया।

सीहोर में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बच्चियों को स्थानीय टीवीएस शोरुम द्वारा दीपावली के शुभ अवसर पर शोरुम के संचालक श्री राजेश चांडक तथा समाजसेवी श्री अनिल पालीवाल ने एक-एक हज़ार रुपये के गिफ़्ट वाउचर प्रदान किए गए।

मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले के आष्टा में ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन द्वारा चलाए जा रहे 90 बच्चियों हेतु निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम सत्र 2018-19 का शुभारंभ करते फ़ाउण्डेशन संयोजक श्री पंकज सुबीर, श्री धर्मेंद्र कौशल, श्री अब्दुल कादिर तथा केन्द्र संचालक श्री सुरेंद्र सिंह ठाकुर।

सीहोर में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बच्चियों को मध्यप्रदेश विधानसभा चुनाव 2018 में मतदान हेतु प्रेरित तथा जागरुक करते सीहोर के अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा अनुविभागीय पुलिस अधिकारी सुश्री प्रतिमा सिंह चौहान।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।